पी० एल० ज्योगरफी

अर्थात्

भूभ्रमण भ्रान्ति

प्रथमभाग

भूगोल भ्रमण मत वादियों के
लिखित ग्रन्थों के प्रमाणों का संग्रह

संग्राहक

पं० प्यारेलाल जैन

मंत्री भूज्योतिष चक्र विवेचिनीसभा
खिरनीकी सराय अलीगढ़

श्री ज्योतिः स्वरूप शर्मा के सारस्वत प्रेस
अलीगढ़ में मुद्रित

प्रथमबार	सम्वत	सभासदों को
५००	१९७७ वि०	बिना मूल्य

भूगोलभ्रमण भ्रांति

प्रथम भाग ।

NO.1

ARDEN WOOD'S GEOGRAPHY PAGE 10.

The earth, though not a perfect sphere, is approximately spherical or globular. It is very slightly flattened at the points where the speed of rotation is least and slightly enlarged where the speed of rotation is greatest.

नं.१ आर्डन वुड जोगरफी सफा १०

यद्यपि पृथ्वी बिल्कुल गोल नहीं है तथापि वह क़रीब २ गोल है। यह उन स्थानों पर जहां पर कि घूमने की चाल बहुत ही मंद है थोड़ी सी चपटी है और जहां पर कि घूमने

की रफतार सब से अधिक है कुछ बढ़ गई है।

भावार्थ — ध्रुवों की तरफ़ चपटी नारंगी के आकार की है।

NO.2

MATRICULATION GEOGRAPHY PAGE 8.

As a ship sails away from harbour, the spector on the coast loses sightof the hull first, and than of the masts. Similarly in the case of an approaching ship, he catches sight of the masts first, and then the hull. Now, if the Earth were flat, the big hull would be visible longer and sooner than the slender masts. Hence it is the curved surface of the Earth which obstructs our view.

नं.२ मैट्रीक्युलेशन जौगरफी सफा ८

जबकि जहाज बन्दरगाह से चलता है तो किनारे पर के देखने वाले की दृष्टि से प्रथम जहाज का पैंदा ओट में होजाता है

और फिर मस्तूल । इसी प्रकार से वह आते हुए जहाज का प्रथम मस्तूल देखता है और फिर तख्ती ।

अब यदि पृथ्वी चपटी होती तो उस को पतले मस्तूलों की अपेक्षा जहाज का बड़ा पैंदा अधिक देर तक और अधिक शीघ्र दिखाई देता इसलिये यह पृथ्वी ही का ऊंचापन है जो हमारी दृष्टि को रोकता है ।

भावार्थ — पृथ्वी की गुलाई की ऊंचाई की आड़ से ऐसा होता है इस कारण पृथिवी गोल है

NO.3

Arden Wood's Geography Page 11.

The Horizon at sea or on a level plain, is always circular. If the earth were not a globe this would not be so.

नं.३ आर्डन वुड जौगरफी सफा ११

समुद्र व सम मैदान पर क्षितिज हमेशा गोल होता है यदि पृथ्वी गोल न होती तो ऐसा न होता।

भावार्थ—क्षितिज सब तरफ गोल दीखता है इस से पृथवी गोल है।

NO.4

Manual of Geography Page 3.

Ships continuing to sail east or west come at last to the point from which they started, just as an ant might crawl round an orange.

नं. ४ मेन्युअल जौगरफी सफा ३

जहाज बराबर पूर्व या पश्चिम को चला जाय तो आखिर कार वहीं पर आजाता है जहां से कि वह रवाना हुआ था जैसे कि एक चिंउँटा नारंगी के गिर्द घूम जाती है।

भावार्थ-पूर्व या पश्चिम को बराबर चले जाओ तो आखिरको वहीं ही आजाओगे । इससे पृथ्वी गोल है ।

NO.5

ARDEN WOOD'S GEOGRAPHY PAGE 11.

In an eclipse of the moon the shadow of the Earth that is thrown upon it is always circular in outline. This could not be so if the Earth were not round.

नं.५ आर्डन वुड जौगरफी सफा ११

चन्द्र ग्रहण में पृथवी का प्रतिबिम्ब जोकि चन्द्रमा पर पड़ता है आकार में गोल होता है यदि पृथवी गोल न होती तो ऐसा न होता ।

भावार्थ-पृथवी की छाया चन्द्रमापर गोलाकार पड़ती है इसलिये पृथवी गोल है ।

NO.6

MATRICULATION GEOGRAPHY PAGE 8,

A larger portion of the Earth's surface is visible from a height than from a plain.

नं.६ मेट्रिक्युलशन जौगरफी सफा ८

वनिस्वत मैदान के ऊंचे स्थान से जमीन की सतह का अधिकतर हिस्सा दीखता है। इससे पृथवी गोल है।

NO.7

ARDEN WOODS GEOGRAPHY PAGE 10.

AND

LONG MAN'S GEOGRAPHY PAGE 3,

Since the earth is a star it is natural to suppose it like the sun, moon, and other stars in shape.

नं.७ आर्डनवुडस जौगरफी सफा १०

और लोंग मेन्स सफा ३

क्योंकि पृथवी एक तारा है इस लिये स्वाभाविक प्रकार से यह अनुमान किया

जा सकता है कि वह भी सूर्य्य, चन्द्रमा और अन्य तारों के आकार की सी है।

भावार्थ- पृथिवीभी तारों की तरह गोल है

NO.8

MATRICULATION GEOGRAPHY PAGE 9.

In travelling to considerable distance, north or south, new stars come to view in the directon in which the traveller is advancing, while others disappear in the dire- tion from which he is receding.

नं.८ मेट्रीक्युलेशन जोगरफी सफा ६

यदि उत्तर या दक्षिणको अधिक सफर किया जाय तो नये नये तारे देखने में आते हैं और उसी वक्त पहिले दीखते हुये तारे गाइब होते जाते हैं

भावार्थ-इससे पृथिवी गोल है।

NO.9

MATRICULATION GEOGRAPHY PAGE 9.

The fact that it is day at some parts of the earth when it is night

at other parts, proves that the Earth is round.

नं. ९ मेट्रीकयुलशन जौगरफ़ी सफ़ा ९

यह बात कि जब पृथिवीके कुछ भागों पर दिन होता है तो दूसरे भागों पर रात होती है इस बात का प्रमाण है कि पृथिवी गोल है।

NO·10

MATRICULATION GEOGRAPHY PAGE 9.

In cutting for a canal, or constructing a railway line, it is found that allowance must be made for a dip of about eight inches per mile, in order to attain a uniform level.

नं.१० मेट्रिक्युलेशन जौगरफ़ी सफ़ा ९

नहर काटने वा रेलकी लाइन बनाने में यह पाया जाता है कि एक मील में आठ इञ्च की गहराई का लिहाज रखना चाहिये जिस से कि एक सी सतह होजावे।

इस कारण पृथिवी गोल है।

NO 11.

भूगोल की पहली किताब सफ़ा ६

एस० ए० हिल० साहब बी० एस० सी० ने जो म्योर सेन्ट्रल कालेज इलाहाबाद के फिजिकल साइन्स के प्रोफेसर थे बनाई थी और जी. आर. के. साहब ने शोधी ।

नं० ११

जो बड़ी चार दिशये हैं उनके नाम । उत्तर, दक्षिण, पूरब, और पश्चिम हैं अगर तुम निकलते हुए सूरज की तरफ मुंह कर के खड़े हो तो तुम्हारा मुंह पूरब की तरफ पीठ पश्चिम की तरफ़ दाहिना हाथ दक्षिण को और बायां हाथ उत्तर की तरफ होगा ।

NO 12.

Matriculation Geography Page 67-68.

The Atmosphere is a name given to the entire mass of air which surrounds the earth and

moves whith it. We do not see the air, but can know that it exists

(I) By swinging our arms quickly backwards and forwards;

(II) by moving a fan in front of our face.

(III) by the natural movement of air which causes a wind.

(IV) by the changes of heat and cold.

—: Nature of air :—

It is a fluid. i. e, it flows freely and easily from one place to another, so that if air is drawn up from one spot more air will flow in to take its place.

(II) It is exceedingly elastic, i, e. easily expanded by heat and contracted by cold. In an expanded form it is said to be rarefied; in its compressed form it is said to be dense. In an expanded form it is lighter and occupies more space, in a contracted form it is heaveir

and occupies less space. Air contracts also when subjected to pressure, and expands again when the pressure is whith drawn.

—: Component parts of air :—

Air is composed of the following elements.

(१) Oxygen, which exists in the proportion of about 23 per. cent.

(2) Nitrogen; which exists in the proportion of about 76 per. cent.

(3) Corbonic Aeid gas, which exists in a very small proportion.

[4] Watery Vapour, which also exists in a very minute proportion

Oxygen is a gas that supports combustion and animal life. Nitroegen is destructive of both, but contributes to the growth ot vegetable life.

Carbonic Acid gas is the chief support of plant, but poisonous to animals in large quantity. Watery vapöur is the source of clouds and rain, and is indispensable to both animal and vegetable life.

नं० १२

मेट्रीक्युलेशन जौगरफी सफा ६७-६८

वायु मण्डल हवा के उस घेरे को कहते हैं जोकि पृथ्वी को चारों तरफ से घेरे हुए है और उसके साथ साथ घूमता है हम हवा को देख नहीं सकते परन्तु यह जान सकते हैं कि वह है।

(१) अपने हाथों को आगे पीछे जल्दी जल्दी घुमाने से।

(२) अपने मुंह के सामने पंखा झलने से।

(३) हवा को प्राकृतिक गति से जिसे आंधी कहते हैं अथवा जब हवा जोर से चल रही हो।

वायु की प्रकृति

(१) यह एक द्रव वस्तु है यानी यह एक जगह से दूसरी जगह आसानी और आजादी से जासकती है यहां तक कि यदि किसी जगह से हवा खींच ली जाय तो अधिक हवा उस की जगह को घेर लेती है ।

(२) यह गर्मीसे फैल और ठण्डक से सिकुड़ सकती है। जब हवा फैली हुई होती है तो इसको (Rarefied) रेअरीफाइड और जब सिमिटी हुई यानी घनी होतीहै तो (Dense) डेन्स बोलते है। जब हवा फैली हुई होती है तो अधिक जगह घेरती है और हलकी होती है। हवापर जब बोझ पड़ता है तो सिकुड़ जाती है और

जब बोझ हटा लिया जाता है तो फैल जाती है ।

हवा किस से बनी हुई है !

हवा में निम्न लिखित वस्तुएं मिली रहती हैं ।

(१) Oxygen ओक्सीजन इसका वजन २३ फीसदी होता है और यह चीजों के जलाने व स्वांस लेने के काम में आती है ।

(२) Nitrogen नाइट्रोजिन इसका वजन ७६ फी सदी होता है और इससे न चीजें जल सकती हैं और न जीव जिन्दा रहता है मगर पौधे जीवित रह सकते हैं ।

(३) Carbonic Acid Gas, कारबोनिक एसिड गेस इसकी मिकदार हवा में बहुत ही कम है यह पौधों को ताकती

है लेकिन जीव को बहुत नुकसान पहुचाती है।

(४) Watery Vaper वाटरी वेपर इसकी भी मिकदार हवा में बहुत कम है इससे ही बादल और मेह बनते और बरसते हैं और यह पौदे और जीव को बहुत फाइदेमन्द है।

NO 13.

ARDEN WOOD'S GEOGRAPHY PAGE 6-7.

The Earth, as one of the eight principal planets in the solar system is moving round the sun in a nearly circular path or orbit.

This movement of the Earth round the sun is called its revolution. The average speed of the Earth along its orbit is 18½ miles a second, and the time of a complete revolution is one year or 365¼ days

Besides its movement of revolution the Earth has a spinning motion like that of a top called rotetion.

The time of a complete rota tion is 24 hours or one day.

नं. १३ आर्डन वुड जौगरफी सफा ६–७

पृथ्वी उन आठ मुख्य ग्रहों में से एक ग्रह है जिन्हें सूर्य्य मण्डल कहते हैं और यह सूर्य्य के चारों तरफ करीब २ एक वृत्ताकार मार्ग में घूमती है जिसे कक्षा कहते हैं।

पृथिवी का सूर्य के चारों तरफ इस तरह से घूमना उसकी प्रदक्षिणा कहलाती है।

पृथिवी की अपनी कक्षा में घूमने की औसत चाल १८½ मील फी (प्रति) सैकण्ड है और एक पूरा चक्कर करने का समय ३६५। दिन का १ वर्ष होता है।

पृथिवी सूर्य्यकी प्रदक्षिणा के अतिरिक्त अपने अक्ष पर भी मानिन्द एक लेटू (भौंरा) के घूमती है जोकि (रोटेशन Rotation) कहलाता है।

एक ऐसे पूरे घुमाव में २४ घंटे या १ दिन लगता है।

भावार्थ—पृथिवी सूर्य्य की प्रदक्षणा में अपनी कीली पर भी घूमती है।

NO. 14

MANUAL GEOGRAPHY PAGE. 8.

The earth makes one complete rotation in 24 hours.

नं० १४ मेन्युअल जौगरफी सफा ८

पृथिवी अपने अक्ष पर २४ घंटे में एक बार घूम जाती है।

भावार्थ—पृथिवी की परिधि२४९०० मील २४ घंटे में घूमती हैं फी घंटे१०३७ मील और फी मिनट १७ मील फी सैकिंड १४६६ फीट के करीब।

NO. 15

MATRICULATION GEOG. (1910) PAGE 42.

„ „ (1911) „ 47.

The whole of the water surfacce of the earth forms a true natural level.

नं० १५ मेट्रीकुलेशन जोगरफी सन् १९१० सफा ४२ और सन् १९११ सफा ४७

समस्त पृथिवी के जल की सतह एक प्राकृतिक समान सतह में है।

भावार्थ—सब जगह पर स्वाभाविक समुद्र के जल की सतह बराबर है।

NO. 16

ELEMENTARY PHYSICAL GEOG. PAGE 63.

All water seeks the lowest level.

नं० १६ एलीमेएटरी प्राकृतिक जोगरफी सफा ६३

पानी सबसे नीची सतह की ओर को बहता है।

भावार्थ—पानी स्वभाव से नीची सतह की ओर बहता है।

NO. 17

MATRICULATION GEOG. (1910) PAGE 14.

See diagram to illustrate the seasons.

नं० १७ मेट्रीक्युलेशन जौगरफी सन् १९१०
सफा १४

मौसम बतलाने वाले नक्शे से साफ़ जाहिर होता है कि पृथ्वी सूर्य की प्रदक्षिणा में वृत्ताकार नहीं किन्तु अण्डाकार मार्ग में घूमती है।

भावार्थ=पृथ्वी सूर्य की प्रदक्षिणा गोलाकार नहीं किन्तु अण्डाकार देती है।

NO. 18

MANUAL GEOGRAPHY PAGE 7.

The zenith at the antipodes is our Nadir, and our zenith is their Nadir.

---

१८ नं० मेन्युअल जोगरफी सफा ७

गोल पृथिवी के दूसरी ओर के निवासियों का नीचा वह इस ओर वालोंका ऊँचा और जो इस ओर वालों का नीचा वह उन का ऊँचा है।

भावार्थ–हिन्दुस्तानियों का नीचा अमरीकेन का ऊँचा है। और अमरीकेन का नीचा वह हिन्दुस्तानियों का ऊँचा है।

NO. 19

MANUAL GEOG. PAGE 3.

And.

LONG MAN'S GEOGRAPHY PAGE 2.

The diameter of the earth from east to west is 7926 miles and its circumference 24,900 miles; the diameter from north to south is about 26 miles less than the dia-

meter from east to west on account of the flattening

नं० १९ मेन्युअल जौगरफी सफा ३ और लोंगमेन्स जौगरफी सफा २

पृथिवी का व्यास पूरव से पश्चिम तक ७९२६ मील है और इसकी परिधि २४९०० मील है; उत्तर से दक्षिण तक का व्यास पूरव से पश्चिम के व्यास की अपेक्षा, पृथिवी के ध्रुवों पर चपटी होने के कारण, २६ मील कम है।

भावार्थ—पृथिवी का व्यास पूर्व पश्चिम ७९२६ मील और उत्तर दक्षिण ७९०० मील है।

NO. 20

Manual Geography P. 30.

Every particle of matter attracts every other particle with a force which is directly proportionate to the product ot their masses and inversely to the square of their distance.

नं० २० मेन्युअल जोगरफी सफा ३०

प्रत्येक परमाणु आपस में एक दूसरे को ऐसी शक्ति से खींचते हैं जोकि उनके बोझ के गुणनफल का उनके अन्तर के वर्ग का हिस्सा समझना चाहिये ।

भावार्थ=पदार्थ जितने परस्पर निकट होते हैं आकर्षण शक्ति इतनी ही अधिक होती है और दूर होने पर कम होजाती है ।

NO. 21

ELEMENTARY PHYSICAL GEOG.

M. B. HILL PAGE 9.

The earth and sun are bound together by a wonderfull unse en

force of gravitation. This force prevents the earth from getting more than a certain distance away from the sun and so, as it rushes onward it is forced to move round the sun.

नं० २१ ऐलीमेंट्री फिजीकल एम. बी. हिल जोगरफी सफा ६

पृथिवी और सूर्य्य एक अजीब बगैर दिखाई देने वाली शक्ति से बंधे हुए हैं जिसको हम आकर्षण शक्ति (कशिश) कहते हैं। यही शक्ति पृथिवी को सूरज से दूर और पास होने से रोकती है और सूरज के गिर्द घूमने को मजबूर करती है।

भावार्थ—पृथिवी आकर्षण शक्ति से ही सूर्य्य के गिर्द बराबर उस से एक ही फासले पर घूमती है।

NO. 22

MANUAL GEOGRAPHY PAGE 30.

It is this great principles of Universal gravitation which keeps every thing on the surface of the earth from flying off into space and which holds all the heavenly bodies in their orbits.

नं० २२ मेन्युअल जौगरफी सफा ३०

आकर्षण शक्तिका यही बडा मुख्य नियम (उसूल) है जोकि प्रत्येक वस्तु को पृथिवी के धरातल (सतह) पर और सब आसमानी सितारे इत्यादि को उनके पथ में काइम रखता है।

भावार्थ—आकर्षण शक्ति पदार्थोंको इधर उधर नहीं जाने देती स्थान पर काइम रखती है।

NO·23

SCIENCE PRIMER BOOK P.42

The force of gravity is different for big stones and for little stones, as you can see by lifting, or trying to lift them, for big stones the force of gravity is large, for little stones it is small or the weight of big stones is greater than the weight of little stones.

नं० २३ साइन्स प्राइमर बुक सफा ४२

बड़े और छोटे पत्थरों में आकर्षण शक्ति भिन्न भिन्न होती है। जैसाकि उनके उठाने वा उठाने की कोशिश करने से मालूम हो सकता है। बड़े पत्थरों में अधिक और छोटों में कम होती है या यों कहिये कि बड़े पत्थरों का बोझ छोटों की अपेक्षा अधिक होता है।

भावार्थ–आकर्षण बड़े पत्थर में अधिक, छोटे में कम होती है ।

NO.24

SCIENCE PRIMER BOOK I. P. 43

The weight of body is not the same at all places on the surface of the earth, at the places which bulge out it is less than at other places and it isa very impartant experiment of physics to find the force of gravity in different places, India is placed more on the bulging part of the Earth than England hence the force of gravity is less in India than it is in England. Therefore it is easier to lift stones and jump high in India than it is in Enland, but only so little easier that you would never notice the difference.

नं॰ २४ साइन्स प्राइमर पहिली किताब सफ़ा ४३

चीज़ों का वज़न ज़मीन की सतह पर हर एक जगह बराबर नहीं होता है। जो जगह ऊंची है वहां दूसरी जगहों की अपेक्षा बोझ कम होता है भिन्न भिन्न जगहों में बोझ का मुक़ाबला करना एक ख़ास जांच पदार्थ विद्या की है।

हिन्दुस्तान, इंगलेण्ड की अपेक्षा ऊंची जगह पर है इस लिए हिन्दुस्तान में कशिश का खिंचाव इंगलेण्ड की अपेक्षा कम है।

इस लिए हिन्दुस्तान में भारी चीज़ें इंगलेण्ड की अपेक्षा आसानी से उठाई और फेंकी जासकती हैं

लेकिन फ़र्क़ (अन्तर) इतना कम है कि मालूम नहीं होता ।

भावार्थ-आकर्षण शक्ति सब जगह एक सी नहीं। जो केन्द्र से लम्बी रेखा पर हैं वहां कम और केन्द्र से कम लम्बी रेखा पर अधिक वजन होता है।

NO.25

THE STURY OF THE HEAVENS P.123, 124

If the observer were in a gallery when trying these experiments and *if* the cushion were sixteen (16) feet below his hands, then the time the marble would take to fall through the sixteen feet would be one second. The time occupied by the cork or by the lead would be the same; [illegible]

the feather [illegible] would fall thr-ough sixteen feet in one second if it could be screened from the interference of the air. Try this experiment where we like, in Lon-don, or in any other city, in any island or continent, on board a ship at see, at the north pole or the south pole, or the equator, it will always be found that any body of any size or of any mat-erial will fall about sixteen feet in one second of time.

नं० २५ हिस्टोरी आफ दी हैविन्स

सफा १२३-१२४

हर एक वस्तु चाहे वह हलकी हो या भारी (यानी चाहे मनोटा हो या हलकी लकड़ीका छोटा टुकड़ा (cork) और पृथ्वी के किसी स्थान पर क्यों न हो

angle at all times. It follows that in each complete revolution there is a time when the north pole is inclined towards the Sun, and a time when the south pole is so inclined. The maximum of inclination in each case is 23½°

नं० २७ मेन्युअल जौगरफी सफा ६

पृथ्वी का अक्ष क्रान्तिमण्डल से ६६॥अंश का कोण बनाता है और यही कोण हर वक्त क़ाइम रहता है। यह नतीजा निकलता है कि प्रत्येक प्रदक्षिणा में एक ऐसा समय आता है कि उत्तरी ध्रुव सूरज की ओर झुका होता है और एक समय ऐसा भी आता है जब कि दक्षिणी पोल सूरज की ओर झुका होता है। अधिक से अधिक झुकाव २३॥अंश का रहता है।

भावार्थ-पृथ्वी की घूम की सतह ६६॥ डिगरी का कोण बनाती है। उत्तरायन दक्षिणायन २३॥ डिगरी से अधिक नहीं झुकती।

NO. 28

MANUAL GEOGRAPHY PAGE 10-11.

At each pole there is six months continuous daylight and six months continuous darkness.

नं० २८

मेन्युअल जौगरफी सफा १०-११

दक्षिणी उत्तरी पोलों में (हरएक में) ६ महीने का दिन व ६ महीने की रात्रि होती है।

NO. 29

THE STORY OF THE HEAVENS PAGE 6.

Ptolemy, following Pythagoras, Plato and Aristotle, acknowledged that the Earth's figure was globular and he demonstrated it by the same arguments that we employ at the present day. He also discerned how this mighty globe was isolated in space. He admitted that the diwonal movements of the heavens could be acco[illegible] for by the revolution of [illegible] earth upon its axis, but unfortunately he assigned reasons for the deliberate rejection of this view. The Earth, according to him was a fixed body ; it possessed neither rotation round an axis nor translation through space, but remained constantly at rest at what he supposed to be Although the Ptolemaic doctrine is now known to be framed on quite an extrawagant estimate of the importance of

the earth in the scheme of the heavens, yet it must be admitted that the apparent movements of the celestial bodies can be thus accounted for with considerable accuracy. This theory is described in the great work known as the "Almagest" which was written in the second century of our era, and was regarded for fourteen centuries as the final authority on all questions of astronomy, the centre of the universe. According to Ptolemy's theory the sun and the moon moved in circular orbits around the earh in the centre. The explanation of the movements of the planets he found to be more complicated, because it was necessary to account for the fact that a planet sometimes advanced and that it sometimes retrograded. The ancient geometers refused to believe that any movement, except revolution in a circle, was possible for a celestial body: accordingly a contrivance was devised by which each planet was supposed to revolve in a circle, of which the

centre described another circle around the earth.

नं० २६ स्टोरी सफा ६

टॉलमी ने पिथेगारस, प्लेटो और एरिस्टोटिल के अनुसार इस बात को स्वीकार कर लिया कि पृथ्वी की शक्ल गोलाकार है और उसने उन्हीं तर्कनाओं से जिन को कि आजकल हम प्रयोग में लाते हैं इस को साबित भी कर दिया। उसने यह भी विचारा कि यह भारी पृथ्वी का गोला किस प्रकार से अलहदा रक्खा हुआ है। उसने यह भी स्वीकार कर लिया कि आकाश की दैनिक गति (चंद्र,-सूर्य) पृथ्वी के अपनी कीली पर घूमने पर ही निर्भर है लेकिन अभाग्यवश उसने इस मत को अन्य तर्कनाओं से झूठा कर दिया। उसके

मतानुसार पृथ्वी स्थिर थी, यह न तो अपनी कीली पर घूमती थी और न आकाश में लेकिन सर्वदा दुनियां के केन्द्र पर स्थिर रहती थी। जैसा कि उसने माना था। टोलमिक सिद्धान्त के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा वृत्ताकार मार्ग में पृथ्वी के चारों तरफ़ घूमते थे। परन्तु उपग्रहों की गति का समझाना उस को बहुत कठिन था क्यों कि यह बहुत ही आवश्यक था कि किस तरह से उपग्रह कभी आगे बढ़जाते हैं और कभी पीछे हट जाते हैं। पूर्व काल क रेखागणितिज्ञों का यह विश्वास था कि एक आकाशी पिण्ड केवल घूम ही सकता है। इसके अनुसार एक यंत्र बनाया गया जिस में कि प्रत्येक उपग्रह एक वृत्ताकार मार्ग में घूमता हुआ माना गया और जिस का कि केन्द्र पृथिवी की परिक्रमा करता माना गया।

हालांकि टोलमिक सिद्धान्त पृथिवी और आकाश के विषय में पूर्णरूप से लिखा हुआ है तथापि इस प्रकार से आकाशी पिण्डों की गति बहुत ही शुद्धता से समझाई जासकती है। इस सिद्धान्त का वर्णन अलमगस्ट (Almagast) नामी किताब में है जो कि दूसरी सदी में लिखी गई थी और १४ सदी तक ज्योतिष के सब प्रश्नों की एक मुख्य किताब मानी जाती थी।

भावार्थ-पश्चिमी विद्वान पहले पृथिवी को स्थिर मानते थे।

NO. 30

ELEMENTARY HILL'S GEOGRAPHY PAGE 64.

The moving force of water is gravitation acting upon the part of the water raised above the general level.

नं० ३० ऐलीमेंट्री हिल्स जौगरफी सफा ६४

जल के सामान्य समस्थल पर ऊंच नीचा पानी होने का कारण आकर्षण शक्ति है।

भावार्थ—पानी तो समस्थल पर ही ठहरता है किन्तु उस में ऊंचा नीचा होना आकर्षण के कारण है।

NO. 31

GENERAL GEOGRAPHY P.

ELEMENTARY PHYSICAL GEOGRAPHY P. 39

The Atmosphere round the Earth extends to a height of at least 50 miles till 200 miles, and probably considerable higher, but it can't support life at a height of more than about five miles from the surface of the ground.

नं० ३१ जनरल जौगरफी सफा एलीमेण्टरी प्राकृतिक जौगरफी सफा ३६

वायु मण्डल पृथिवी के चारों तरफ़ कम से कम ५० मील से लेकर अधिक से अधिक २०० मील तक ऊंचा फैला हुआ है। परन्तु पृथिवी की सतह से ५ मील से ऊपर कोई भी जानदार वस्तु जीवित नहीं रह सकती।

NO. 32

THE STORY OF THE HEAVENS PAGE 127-128.

If a weight of four pounds be hung on such a contrivance, at the earth's surface, the index of course shows a weight of founds; but conceive this balance still bearing the weight appeuded the-rets, were to be carried up and up, the indicated strain would become less, until by the time the balance reached 4000 miles high,

where it was twice as far away from the Earth's centre as at first, the indicated strain would be reduced to the fourth part, and the balance would only show one pound. If we could imagine the instrument to be carried still further into the depths of space the indication of the scale would steadily continue to decline by the time the apparatus had reached a distance of 8000 miles high, being then three times as far from the Earths centre as at first, the law of gravitation tells us that the attraction must have decreased to one-ninth part. The strain thus shown on the balance would be only the ninth part of four pounds, or less than half a pound, But let voyage be once again resumed, and let not a halt be made this time until the balance and its four-pound weight have retreated to that orbit which the moon traverses in its monthly course around the Earth. The distance thus attained is about sixty times the radius of the Earh and consequently the attraction of gravitation is diminished in the pro-

portion of one to the square of sixty the spring will then only be strained, by the inappreciable fraction of 13,600 part of four pounds it therefore appears that a body which on the Earth weighed a ton and a half would, if raised 239000 miles, weigh less than a pound.

नं० ३९. स्टोरी-पृष्ठ १२७

अगर ४ पौण्ड का वज़न स्प्रिंग (कमानीदार तराज़ू) से लटका दियाजाय तो वह ४ पौन्ड का, उसी तराज़ू को ऊपर आसमान मायार्थ पहाड़ पर भी लेजाओ तो ४००० मील ऊपर लेजाने से १ पौन्ड रहजायगा। यदि ८००० मील लेजांय तो $\frac{१}{२}$ रह जायगा और चंद्रमा के पास लेजांय तो $\frac{१}{३६००}$ वज़न रह जायगा। यदि कितना ही ऊंचा लेजायँ तो वज़न कुछ न कुछ रह जायगा, वज़न रहित न होगा।

इस मत के अनुसार केन्द्र की तरफ़ जायंगे तो वज़न बहुत बढ़ जायगा।

NO. 33

MANUAL GEOGRAPHY PAGE 245.

Holland is the flattest country in Europe. Large tracts are below the level of the sea and are protected by artificial dykes or embankments.

नं० ३३. मेन्युअल जोगरफी सफा २४५

यूरुप में होलेण्ड सब से अधिक चपटा मुल्क है। बड़े बड़े ज़मीन के टुकड़े समुद्र की सतह से भी नीचे हैं। और उनकी रक्षा के लिये बांध बंधे हुए हैं।

भावार्थ-समुद्र की सतह से नीचे होने के कारण बन्ध बँधे हुए हैं ताकि पानी से डूब न जाय। क्यों कि जलकी सतह से पृथ्वी ऊंची ही होती है।

नं० ३४

भूगोल की तीसरी पुस्तक (प्राकृतिक भूगोल) सफा ६७

बर्फ पानी से हलकी होती है इस लिये सर्वदा सतह पर तैरा करती है। इसी तरह नदी और झील के ऊपर एक तह बर्फ की जो कहीं कम और कहीं अधिक घनी होती है जम जाती है परन्तु उनके नीचे पानी द्रव अवस्था में उपस्थित रहता है।

भावार्थ—जल बर्फ से नीचे रहता है जलसे बर्फ ऊपर रहती है।

NO· 35

ARDEN WOODS GEOGRAPHY PAGE 9·

The moon revolves round it just as the Earth revolves round the sun.

नं० ३५. आर्डन वुड जौगरफी सफ़ा ६

चन्द्रमा पृथ्वी के चारों तरफ़ ठीक इसी तरह पर घूमता है जैसे कि पृथ्वी सूर्य के गिर्द घूमती है।

NO· 36

ARDEN WOODS GEOGRPHY PAGE 9.

The moon's distance from the Earth is 240,000 miles.

नं० ३६. आर्डन वुड जौगरफी सफ़ा ९

चंद्रमा की दूरी पृथ्वी से २४०००० मील है।

NO. 37

THE STORY OF THE HEAVENS PAGE 549.

Can the moon ever escape from the thraldom of the tides ? This is not very easy to answer, but it seems

perhaps not impossible that the moon may, at some future time, be freed from tidal control It is, indeed, obvious that the tides, even at present, have not the extremely stringent control over the moon which they once exercised. We now see no ocean on the moon. nor do the volcanoes show any trace of the molten lava. There can hardly be tides on the moon but there may be tides in the moon. It may be that the interior of the moon is still hot enough to retain an appreciable degree of fluidity, and if so, the tidal control would still retain the moon in its grip. but the time will probably come, if it had not come already when the moon will be cold to the centre cold as the temperature of space. If the materials of the moon were what a mathematician would call absolutely rigid, there can be no doubt that the tides could no longer exist, and the moon would be emancipated from tidal control. It seems impossible to predicate how for the moon can ever conform to the circumstances of an actual rigid body, but it may be conceivable

that at some future time the tidal control shall have practically ceased.

नं० ३७. स्टोरी सफ़ा ५४६

क्या चन्द्रमा ज्वारभाटों की जामिनी से कभी पृथक हो सकता है ? इस का उत्तर देना कुछ आसान नहीं है लेकिन वह बात सम्भव मालूम होती है कि भविष्य काल में चन्द्रमा से ज्वारभाटे का भार दूर हो सकता है। यह बात वास्तविक में प्रत्यक्ष है कि आजकल भी चन्द्रमा पर ज्वारभाटे का भार इतना अधिक नहीं है जितना कि पहिले। अब हम चन्द्रमा की सतह पर कोई समुद्र नहीं देखते और न कोई ज्वालामुखी पर्वत ही पिघले हुए पत्थरों का परिचय देते हैं। चन्द्रमा के ऊपर ज्वारभाटों का होना मुश्किल है परन्तु चन्द्रमा के अन्दर सम्भव है। चन्द्रमा का अन्दरूनी हिस्सा काफ़ी गर्म होना सम्भव होता है इस लिए यदि ऐसा है तो ज्वारभाटे का भार उसपर अवश्य रहेगा। लेकिन एक वक्त अवश्य आवेगा यदि यह अबतक न आगया हो कि चन्द्रमा बिलकुल केन्द्र तक ठण्डा हो जायगा। वह इतना जितना कि उसके गिर्द के आकाश का टेमपरेचर (Temperature) अगर चन्द्रमा में की वस्तुएं सख्त होतीं तो चन्द्रमा कभी का ज्वार भाटे के भार से अलग होगया होता।

चन्द्रमा सख्त चीज़ों में तब्दील होने के लिये कितना समय लगावेगा यह पहिले से ही कह देना असम्भव मालूम होता है परन्तु यह सोचने के क़ाबिल बात है कि जब ऐसा होजायगा तो चन्द्रमा से ज्वार भाटे का भारभी दूर हो जायगा।

भावार्थ-चन्द्रमा पहले अग्निरूप था तब उसम बड़े २ ज्वार भाटे होते थे अब ठण्डा होगया अब भी भीतर होते होंगे ।

NO 38.

THE STORY OF THE

HEAVENS PAGE 548.

We now find the moon has a rugged surfase, which testigies to the existence of intense volcanic activity in former times. Those volcanoes are now silent the internal fires in the moon seem to have become exhausted ;but there was a time when the moon must have been a heated and semi-molten mass. There was a time when the materials of the moon were so hot as to be soft and yielding, and in that soft and yielding mass the attraction of our earth excited great tides. We have no historical record of these tides (They were long anterior to the existence of the telescopes, they were probably long anterior to the existence of the human race), but we know that these tides once existed by the work they have

NO. 35

ARDEN WOODS GEOGRAPHY PAGE 9.

The moon revolves round it just as the Earth revolves round the sun.

नं० ३५. आर्डन वुड जौगरफी सफ़ा ६

चन्द्रमा पृथ्वी के चारों तरफ ठीक इसी तरह पर घूमता है जैसे कि पृथ्वी सूर्य के गिर्द घूमती है।

NO. 36

ARDEN WOODS GEOGRPHY PAGE 9.

The moon's distance from the Earth is 240,000 miles

नं० ३६. आर्डन वुड जौगरफी सफ़ा ६

चंद्रमा की दूरी पृथ्वी से २४०००० मील है।

NO. 37

THE STORY OF THE HEAVENS PAGE 549.

Can the moon ever escape from the thraldom of the tides? This is not very easy to answer, but it seems

perhaps not impossible that the moon may, at some future time, be freed from tidal control It is, indeed, obvious that the tides, even at present, have not the extremely stringent control over the moon which they once exercised. We now see no ocean on the moon, nor do the volcanoes show any trace of the molten lava. There can hardly be tides on the moon but there may be tides in the moon. It may be that the interior of the moon is still hot enough to retain an appreciable degree of fluidity. and if so, the tidal control would still retain the moon in its grip. but the time will probably come, if it had not come already when the moon will be cold to the centre cold as the temperature of space. If the materials of the moon were what a mathematician would call absolutely rigid, there can be no doubt that the tides could no longer exist, and the moon would be emancipated from tidal control. It seems impossible to predicate how for the moon can ever conform to the circumstances of an actual rigid body, but it may be conceivable

that at some future time the tidal control shall have practically ceased.

नं० ३७. स्टोरी सफ़ा ५४६

क्या चन्द्रमा ज्वारभाटों की जामिनी से कभी पृथक हो सकता है ? इस का उत्तर देना कुछ आसान नहीं है लेकिन वह बात सम्भव मालूम होती है कि भविष्य काल में चन्द्रमा से ज्वारभाटे का भार दूर हो सकता है। यह बात वास्तविक में प्रत्यक्ष है कि आजकल भी चन्द्रमा पर ज्वारभाटे का भार इतना अधिक नहीं है जितना कि पहिले। अब हम चन्द्रमा की सतह पर कोई समुद्र नहीं देखते और न कोई ज्वालामुखी पर्वत ही पिघले हुए पत्थरों का परिचय देते हैं। चन्द्रमा के ऊपर ज्वारभाटों का होना मुश्किल है परन्तु चन्द्रमा के अन्दर सम्भव है। चन्द्रमा का अन्दरूनी हिस्सा काफ़ी गर्म होना सम्भव होता है इस लिए यदि ऐसा है तो ज्वारभाटे का भार उसपर अवश्य रहेगा। लेकिन एक वक्त अवश्य आवेगा यदि यह अबतक न आगया हो कि चन्द्रमा बिलकुल केन्द्र तक ठण्डा हो जायगा। वह इतना जितना कि उसके गिर्द के आकाश का टेम्परेचर (Temperature) अगर चन्द्रमा में की वस्तुएं सख्त होतीं तो चन्द्रमा कभी का ज्वार भाटे के भार से अलग होगया होता।

चन्द्रमा सख्त चीज़ों में तब्दील होने के लिये कितना समय लगावेगा यह पहिले से ही कह देना असम्भव मालूम होता है परन्तु यह सोचने के क़ाबिल बात है कि जब ऐसा होजायगा तो चन्द्रमा से ज्वार भाटे का भारभी दूर हो जायगा।

भावार्थ-चन्द्रमा पहले अग्निरूप था तब उसम बड़े २ ज्वार भाटे होते थे अब ठण्डा होगया अब भी भीतर होते होंगे ।

NO 38.

THE STORY OF THE

HEAVENS PAGE 548.

We now find the moon has a rugged surfase, which testigies to the existence of irtense volcanic activity in former times. Those volcanoes are now silent the internal fires in the moon seem to have become exhausted ;but there was a time when the moon must have been a heated and semi-molten mass. There was a time when the materials of the moon were so hot as to be soft and yielding, and in that soft and yielding mass the attraction of our earth excited great tides. We have no historical record of these tides (They were long anterior to the existence of the telescopes, they were probably long anterior to the existence of the human race), but we know that these tides once existed by the work they have

accomplished, and that work is seen today in the constant face which the moon turns towards the earth, The gentle rise and fall of the oceans which form our tides present a picture widely defferent from the tides by which the moon was once agitated. The tides on the moon were vastly greater than those of the earth. They were greater because the weight of the earth is greater than that of the moon, so that the earth was able to produce much more powerful tides in the moon than the moon has ever been able to raise on the earth.

नं० ३८ स्टोरी सफ़ा ५.४८

रोबर्ट एस. बाल साहब कहते है : —

हम अब देखते हैं कि चंद्रमा का धरातल नाहमवार है जिससे प्रगट होता है कि चन्द्रमा में पहिले ज्वाला मुखी पहाड़ प्रज्वलित दशा में थे। वे ज्वाला मुखी पहाड़ अब शान्त हैं। चंद्रमा की आन्तरिक गर्मी अब खतम हो गई मालूम होती है। पहिले एक समय ऐसा था जब कि चंद्रमा एक गर्म, आधा पिघला हुआ अवश्य था। पहिले ऐसा समय था जब कि चंद्रमा की जसामत इतनी गर्म थी कि यह बहुत ही नर्म और द्रव दशा में था और उस द्रव और नर्म वस्तुमें पृथ्वी की आकर्षण शक्तिसे बड़े बड़े ज्वार भाटे उठते थे।

हमारे पास इन ज्वारभाटों के कोई ऐतिहासिक लेख नहीं हैं(क्योंकि अबतक न दूरबीन थीं और न मनुष्य) लेकिन हम जानते हैं कि यह ज्वारभाटे अवश्य होते थे जैसे कि हमको चन्द्रमा के उस हिस्से से जोकि पृथ्वी के सन्मुख हो जाता है देखने से मालूम होता है।

समुद्र के पानीका धीरे २ उठाव और चढ़ाव चंद्रमा में के ज्वारभाटों से कहीं भिन्न (मुख्तलिफ) है। चंद्रमा के ज्वारभाटे पृथ्वी पर के ज्वारभाटो से कहीं बड़े होते थे। वे इस कारण से बड़े थे क्यों कि पृथ्वी चंद्रमा की अपेक्षा कहीं बड़ी है, इसलिए पृथ्वी चन्द्रमा में बड़े २ ज्वार भाटे पैदा करने को समर्थ थी न कि चंद्रमा पृथ्वी में इतने बड़े ज्वारभाटे पैदा करने को समर्थ है।

भावार्थ—पृथ्वी में ज्वारभाटे चंद्रमा से होते है चंद्रमा अग्नि रूप था उसमें बड़े २ ज्वारभाटे पृथ्वी से होते थे और होते हैं।

NO. 39

ASTRONOMY OF TODAY PAGE 20-21-22.

The sun, the most important of the celestial bodies so far as we are concerned, occuies the central position; not, however, in the whole universe, but only in that limited portion which is known as the solar system. a Around it, in the following order outwards, circle the planets mercury, venus, Earth mars, Jupiter, Saturn,

uranus, and neptune (*See fig. 2, Page 21*). At an immense distance beyond the solar system and scattered irregularly through the depth of space, lie the stars The two first mentioned members of the solar system, mercury and venus, are known as the inferior planets; and in their courses about the sun, they always keep well inside the path along which our Earth moves. The remaining members (exclusive of the Earth) are called superior planets, and their paths lie all out side that of the Earth.

नं० ३६. एस्ट्रोनोमी आफ़ टूडे सफ़ा २०-२१-२२

सूर्य्य जोकि आकाशी पिण्डों में हमारे तात्पर्य्यानुसार सब से अधिक काम का है बीच में स्थित है, वह, तमाम संसार के मध्य में नहीं किन्तु उस परिमित जगह के बीच में जिसको कि हम सूर्य्यमण्डल कहते हैं। इसके चारों तरफ़ निम्न लिखित श्रेणी में बाहर की ओर को बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनिश्चर, यूरेनस और नेपच्यून गृह हैं (जैसा कि शक्ल नं० २ सफ़ा २१ से प्रगट होता है) और सूर्य्यमण्डल से एक बहुत ही दूरी पर, आकाश में सितारे फैले हुए हैं। सूर्य्य मण्डल के दो प्रथम के गृह जिनका कि नाम बुध और शुक्र है इनफ़ीरियर यानी छोटे गृह कहलाते है और ये गृह सूर्य्य की परिक्रमा में उस मार्ग के सदैव अन्दर रहते हैं जिस में कि पृथ्वी

घूमती हैं बाकी गृह (पृथ्वी को छोड़ कर) सुपीरिअर यानी बड़े गृह कहलाते हैं और उन सबके मार्ग पृथ्वी के सदैव बाहर रहते हैं।

भावार्थ—वर्तमान में भू० भ्र० वादी सूर्य को एक स्थान में केन्द्र मानकर पृथ्वी आदि को घूमती मानते हैं।

NO. 40

THE STORY OF THE HEAVENS PAGE 543.

At the beginning of the history we found the earth and the moon close together We found that the rate of rotation of the earth was only a few hours, instead of twenty four hours. We found that the moon completed its journey round the primitive earth in exactly the same time as the primitive earth rotated on its axis, so that the two bodies were then constantly face to face. Such a state of things formed what a mathematician would describe as a case of unstable dynamical equilibrium. It could not last. It may be compared to the case of a needle balanced on its point; the needle must fall to one side or the other. In the same way, the moon

could not continue to preserve its position. There were two courses open: the moon must either have fallen back on the earth or been reabsorbed into the mass of the earth, or, its must have commenced its outword journey. Which of these courses was the moon to adopt? We have no means, perhaps of knowing exactly what it was which Determined the moon to one course rather than to another but as to the coursewhich was actually taken therecan be no doubt. The fact that the moon exists shows that it did not return to the earth, but commenced its outword journey. As the moon recedes from the earth it must, in conformity with kepler's law require a longer time to complete its revolution. It has thus happened that, from the original peried of only a few hours, the duration has increased until it has reached the Present number of 656 hours.

नं० ४०   स्टोरी सफ़ा ५४३

शुरू में पृथ्वी चंद्रमा पास थे और पृथ्वी २४ घंटों के बजाय चन्द घंटों में अपने ध्रुव पर घूमती थी और यह भी पाया जाता है कि उस प्राचीन कालमें चांद ज़मीन के गिर्द उतनी ही देर में घूमता था जितने में कि पृथ्वी अपनी कीलों पर घूमती थी। इसलिये दोनों हर वक्त सामने सामने रहते थे। गणितज्ञ ऐसी हालतको unstable dynamical equilibrium यह दशा हमेशा क़ायम नहीं रह सकती थी॥ इसकी मिसाल ऐसी है जैसी सुई की जोकि नोक पर खड़ी की गई है वह एक तरफ़ अवश्य गिरेगी ऐसे ही चांदकी भी ऐसी हालत कभी नहीं रह सकती थी। इसकी दो ही हालत हो सकती थीं या तो पृथ्वी पर गिर कर उसमें मिल जाता या उससे दूर होने लगता। हम नहीं कह सकते कि चांद में यह बात हटने की कैसे शुरू हुई। चांद जितना दूर पृथ्वी से हटता गया उतनी ही अधिक देर घूम में लगती गई। इसलिए यह बात वर्तमान है कि चांद को ६५५ घंटे लगते हैं।

भावार्थ–पहले चन्द्रमा पृथ्वी से संलग्नथा और चन्द समय घूम जाता था परन्तु अब घूमने में ६५६ घंटे लगते हैं और पृथ्वी से दूर होगया है।

NO. 41

THE STORY OF THE

HEAVENS PAGE 75.

The average value of that distance is 239,000 miles. In rare circumstances it may approach to a distance but little more than 221,000 miles, or recede to a distance hardly less than 253,000 miles, but the ordinary fluctua-

tions do not exceed more than about 13,000 miles on either side of its mean value.

नं० ४१ स्टोरी सफ़ा ७५

चंद्रमा का औसत फ़ासला २३८००० मील है लेकिन बाज़ वक्त चन्द्रमा पृथ्वी से २२१००० मील के फ़ासले पर आजाता है और कभी उससे २५,३००० मील दूर हो जाता है लेकिन इन दोनों फ़ासलों का फ़र्क़ कभी उसके औसत फ़ासले से १३००० मील से अधिक नहीं होता।

भावार्थ—पृथ्वीसे चंद्रमा कभी २३८००० कभी २२१००० कभी २५३००० मील दूरी पर घूमता है इसके घूमने का नियत स्थान नहीं है।

NO. 42
MANUAL GEOGRAPHY
PAGE 14.

The moon performs its revolution in a little more than 27¼ days.

नं० ४२. मेन्युअल जोगराफ़ी सफ़ा १४

चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा २७¼ दिन से कुछ अधिक समय में करता है।

NO. 43

MANUAL GEOGRAPHY

PAGE 14.

The moon revolves round the Earth from west to east, which is the direction of the Earth's rotation.

नं० ४३. मेन्युअल जौगरफी सफ़ा १४

जोकि ज़मीन की अपनी कीली पर घूमने की दिशा हैं वही चन्द्रमा की ज़मीन के चारों तरफ़ घूमने की है।

भावार्थ—चन्द्रमा पश्चिम से पूर्व की ओर घूमता है।

NO. 44

LONG MAN'S GEOGRAPHY PAGE 2.

Those (stars) which do not appear to move are called fixed stars, while those which change their positions are called planets

---

नं० ४४. लोंगमेन्स जौगरफी सफ़ा २

वह तारे जोकि घूमते हुए नहीं मालूम होते स्थिर तारे कहलाते है और वह जो अपनी जगह बदलते हैं प्लान्टस कहलाते हैं।

भावार्थ—तारे स्थिर हैं और सितारे चलते हैं घूमते हैं।

No. 45

ARDEN WOOD GEOGRAPHY

PAGE 3.

About 3,000 fixed star sare visible at the same time to the naked eye, and over 20,000,000 are visible through large telescopes

---

नं० ४५. आर्डन वुड जोगराफी सफ़ा ३

आंख से ३००० तारे दीखते हैं और दुर्बीन से दो करोड़ से कुछ अधिक दीखते हैं।

NO. 46

MANUAL GEOGRAPHY PAGE 4.

The most important of these are the planets (Gr. Planetes, a wanderer) of which the chief are mercury, Venus, the earh, mass, Jupiter, Saturn, uranus, and neptune.

नं० ४६ मेन्युअल जोगरफी सफा ४

(१) Mercury (बुद्ध) ३६०००००० मील
(२) Venus (शुक्र) ६६०००००० मील

(३) The Earth (पृथ्वी) ९३००००००० मील
(४) Mars (मंगल) १३९००००००० मील
(५) Jupiter (बृहस्पति) ४७५००००००० मील
(६) Saturn (शनिश्चर) ८७२००००००० मील

Note 1. नोट १. Mercury व Venus पृथ्वी से छोटे हैं।

(ii) Jupter is 1400 times the size of the Earh.

Earth. अर्थ—बृहस्पति (Jupiter) पृथ्वी से १४०० गुना बड़ा है।

भावार्थ—बुध शुक्रादि नेपच्यून पर्यंत ग्रहोंकी सूर्य से दूरी।

इन सब में सब से अधिक काम के (मशहूर) ग्रह हैं जिन में भी बुद्ध शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनिश्चर, यूरेनस (Uranus) और नेपच्यून खास हैं।

NO. 47
MATRICULATION GEOG.
PAGE 7.

The zodiac (From Gr. zodian ; a small figure painted or carved) is a belt in the celestial sphere, which extends about 9° north and south of the

ecliptic, and within which the chief planets perform their revolutions.

The Zodiac is so called because most of the constellations which occupy its twelve divisions of 30° each were represented by figures of animals. These figures are called the signs of the zodiac The twelve signs of the zodiac are as follows :—

(1) Aries	(Ram) मेष	Spring.
(2) Taurcis	(Bull) वृष	
(3) Gemini	(Twins) मिथुन	
(4) Cancer	(crab) कर्क	Summer
(5) Leo	(lion) सिंह	
(6) Virgo	(Virgin) कन्या	
(7) Libra	(balance) तुला	Autumn
(8) Scorpio	(Scorpion) वृश्चीक	
(9) Saggitarius	(Archer) धनु	
(10) Capricornus	(Goat) मकर	Winter.
(11) Aquarius	(Water carrier) कुंभ	
(12) Pisces	(fish) मीन	

नं० ४७ मेट्रीक्युलेशन जोगरफी सफा ७:

जोडियक (Zodiac) एक पेटी नुमा आकाशी घेरा है जो कि पृथ्वी के मार्ग से ९ दर्जे या अंश इधर उधर है।

जिस में बहुत छोटे २ बारह तारे मंडल है प्रत्येक पशुओं की शक्ल में हैं अर्थात् उनका आकार अनेक प्रकार का है।

भावार्थ—जोडियक पृथ्वी की कक्षा (चलने की रेखा) से ९ अंश इधर उधर है जिस में कि १२ राशिके सितारे हैं।

NO. 48

SCIENCE PRIMER BOOK 1, PAGE 42

For the same stone the force of gravity, that is, the weight of the stone, is greatest just on the surface of the Earth If we lift the stone gets lighter, but only little lighter that you will not be able to tell the difference by lifting the weight of it in your hand. If we take the stone down a well, too. it wil get lighter.

नं० ४८ साइंस प्राइमर बुक पहली सफा ४२

उस पत्थरकी कशिश यानी वजन ज़मीन की सतह पर ज्यादा होता है अगर हम पत्थर को मीनार की चोटी पर उठाकर लेजावें तो वह हल्का होजावेगा लेकिन इतना

कम कि हाथ से फ़र्क़ नहीं मालूम हो सकेगा अगर कुँए में लेजाय तो भी हलका हो जावेगा।

भावार्थ—आकर्षण से पृथ्वी पर ऊपर नीचे दोनों तरफ़ वज़न हलका होजाता है।

NO 49
THE STORYOF HEAVENS
PAGE 337.

We see here the head of the comet containing as its brightest spot what is called the nucleus and in which the material of the comet seems to be much denser than elsewhere. Surrounding the nucleus we find certain definite layers of luminous material, the coma, or head from 20,000 to 1,000, 000 miles in diameter, from. which the tail seems to stream away. This view may be regarded as showing a typical object of this class. but the varieties of structure presented by different comets are almost in numerable. In some cases we find the) nucleus absent ; in other cases we find the tail to be wanting. The tail is, no doubt, a conspicuous feature in

those great comets which receive universal, attention but in the small telescopic objects, cf which a few are generally found every year, this feature is usually absent: not only do comets presen tgreat varieties in appearance but even the aspect of a single object undergoes great change. The comet will sometimes increase enormously in bulk, sometimes it will diminish; sometimes it will have a large tail, or sometimes no tail at all. Measurements of a comet's size are almost futile: they may cease to be true even during the few hours in which a comet is observed in the course of anight.

नं० ५६ स्टोरी सफ़ा ३३७

[सर रोबर्ट ऐस बाल लिखते हैं कि हम यहांपर कोमिट(Comet) के सिर मे एक बहुत ही प्रकाशित स्थान देखते हैं जिसको कि नक्लीअस (Nucleus) कहते हैं और कोमिट (Comet) का यह भाग बनिस्बत दूसरों के अधिक घना होता है। नक्लीअस (Nucleus) के चारों तरफ़ हमको कुछ प्रकाशित वस्तु के परत दीख पड़ते हैं इसका (Coma) सर २०००० मील से लेकर १०००००० मील तक व्यास में होता है और उस से पूंछ निकली हुई होती है। इस प्रकार का दृश्य कोमिट (Comet) की किस्म का एक ख़ास दृश्य है लेकिन भिन्न भिन्न

कोमिट (Comet) के बनावट की भिन्नता अनक़रीब बहुत किस्म की है] किसी किसी क्यामें (Nucleus) नकलीअस होता ही नहीं और किसी किसी में पूंछ ही नदारत होती है। परन्तु जो सब को दीखते हैं उन में पूंछ अवश्य होती है परन्तु उन कोमिटस् (Comets) में जिन को हम प्रत्येक साल छोटी छोटी दुरबीनों में देखते हैं पूंछ आमतौर से नहीं होती। कोमिटस् (Comets) सिर्फ़ भिन्न भिन्न तरह के ही नहीं होते परन्तु वे तरह तरह के रंग भी बदलते हैं। कोमिट (Comet) कभी कद में बहुत बड़ा होजाता है और कभी घट जाता है। कभी इस में एक बड़ी पूंछ होती है और कभी नहीं, वे रात में ही थोड़े से घंटों में नजर से भी गाइब हो जाते हैं।

भावार्थ—कोमिटस तारे भिन्न भिन्न तरह यानी अनेक प्रकार के होते हैं।

NO 50.

MATRICULATION GEOGRAPHY PAGE 20-22

A solar eclipse is caused when the earth come in the shadow of the moon cast by the sun.

A lunar eclipse is caused when the moon falls in the earth's shadow. The Earth being much larger than moon, its shadow extends far beyond it, and where it reaches the moon it is always so much larger than latter that it may be wholly immersed in it.

नं० ५० मैट्रीक्युलेशन जौगरफी सफा २०—२१।

सूर्य्य ग्रहण तब पड़ता है जब कि चंद्रमा पृथ्वी और सूर्य्य के बीच में आजाता है।

चंद्र ग्रहण तब पड़ता है जब कि पृथ्वी की छाया चंद्रमा पर पड़ती है।

चूंकि पृथ्वी चंद्रमा से बहुत बड़ी है इस लिए इसकी छाया जब कि इस पर पड़ती है तो इस को खूब अच्छी तरह से ढक लेती है।

भावार्थ—चंद्रमा को सूर्य व पृथ्वी के बीच में आने से सूर्य ग्रहण और पृथ्वी की छाया चंद्रमा पर पड़ने से चंद्र ग्रहण होता है।

NO. 51

MANUAL GEOGRAPHY PAGE 4

The diameter of the sun is 867,000 miles.

नं०५१ मैन्यूअल जौगरफी सफा ४

सूर्य्य का व्यास ८६७००० मील है।

NO. 52

MANUAL GEOGRAPHY PAGE 6.

There are fixed stars, which shine in their own light and probably like our own sun, centres of system.

नं० ५२ मैन्युअल जौगरफी सफा ६

वे स्थिर तारे जो कि अपनी ही रोशनीसे चमकते हैं गालबन हमारे सूर्य्य की तरह परिवारों के केन्द्र हैं

भावार्थ—सूर्य की तरह और भी तारे स्थिर और परिवारों के केन्द्र हैं।

NO. 53

MANUAL GEOGRAPHY PAGE 4

The sun is a vast ball, 13,000,000 times as large as the earth.

नं० ५३ मैन्यूअल जोगरफी सफा ४।

सूर्य्य एक बड़ी गेंद है ज़मीन से १३०००००० गुना है।

NO. 54

ARDEN WOOD'S GEOGRAPHY PAGE 4

The sun is one of the smallest cf the fixed stars. Compared with the earth, the sun is of vast size. It is nearly 1½ million times the size of the earh, and 500 times the size of all the planets taken together.

नं० ५४ आर्डन वुड जौगरफी सफा ४।

सूरज सब से छोटे स्थिर तारों मे एक तारा है। पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य्य का क़द बहुत बड़ा है।

पृथ्वी से १५ लाख गुना बड़ा है, और कुछ नक्षत्रों को मिला कर ५०० गुना है।

NO. 55

ARDEN WOOD'S GEOGRAPHY PAGE 4.

The Earth's distance from the sun is nearly 93 millions of miles.

नं० ५५ आर्डन वुड जौगरफी सफा ४।

पृथ्वी का फ़ासला सूर्य से ९,३००००३० मील है।

NO. 56

THE STORY OF HEAVENS

PAGE 457-456.

In connection with the subject of the present chapter we have to consider a great problem which was proposed by sir. William Herschel. He saw that the stars were animated by proper motion: he saw also that the sun is a star, one of the countless host of heaven, and he was therefore led to propound the stupendous question as to whether the sun, like the other stars which are its peers, was also in

motion. Consider all that this great question involves The sun has around it a retinue of planets and their attendants satellites, the comets, and a host of smaller bodies The question is whethere this superle system is revolving arourd the sun at rest in the middle or whether the whole system—sun, planets, and comets—is not moving on bodily through space.

Herschel was the first to solve this noble problem ; he discovered that our sun and the splendid retinue by which it is attended are moving in space. He not only discovered this, but he ascertained the direction in which the system was moving, as well as the approximate velocity with which that movement was probably performed. It has been shown that the sun and his system is now hastening towards a point of the heavens near the constellation Lyra. The velocity with which the motion is performed corresponds to the magnitude of the system ; quicker than the swiftest rifle bullet that was ever fired, the sun, bearing with it the

earth and all the other planets, is now sweeping onwards.

We on the earth participate in that motion. Every half hour we are something like ten thousand miles nearer to the constellation of Lyra than we should have been if the solar system were not animated by this motion. As we are proceeding at this stupendous rate towards Lyra, it might at first be supposed that we ought soon to get there: but the distances of the stars in that neighbourhood seem not less than those of the stars elsewhere, and we may be certain that the sun and his system must travel at the present rate for far more than a million years before we have crossed the abyss between our present position and the frontiers of Lyra. It must however, be acknowledged that our estimate of the actual speed with which our solar system is travelling is ex-ceedingly uncertain, but this does not in the least affect the fact that we are moving in the direction first approximately indicated by Herschel

नं० ५६ स्टोरी होविन्स सफा ४५६-४५७।

इस पाठ के विषय के सम्बंध में हमको एक बड़ी भारी बात सोचनी है जो कि विलियम हर्शलसाहबने प्रस्तावित की थी। उसने मालूम कर लिया कि तारे ठीक चाल से हरकत करते हैं उसने यहभी मालूम किया कि सूर्य्य आसमान के अगणित तारों में से एक तारा है इस लिये उसको यह सोचना पड़ा कि सूर्य्य भी अन्य तारों की तरह जो कि उसके बराबर या भाई बन्धु हैं घूमता है या नहीं। इस भारी सवाल (प्रश्न) के सम्बन्ध में सब कुछ बातें सोचो। सूर्य के चारों तरफ़ उपग्रह, पुच्छलतारे, और अन्य २ अगिणत छोटे २ सितारे हैं। सवाल यह होता है कि आया ये तमाम उपग्रह और छोटे २ सितारे स्थिर सूर्य के चारों तरफ़ घूम रहे हैं अथवा वे सब स्थिर हैं। हर्शल अव्वल आदमी थे जिन्होंने कि इस उम्दा बात को हल किया था। इसने इस बात को दर्याफ्त किया कि हमारा सूरज मय अपने परिवार के जो कि उसके साथ चल रहे हैं आसमान में घूम रहे हैं सिर्फ़ यही बात दर्याफ्त नहीं की किन्तु यह भी दर्याफ्त किया कि वह किस तरफ़ को जारहे हैं और उसकी क़रीब २ रफ़्तार (चाल) भी दर्याफ्त की और वह सूर्य परिवार सहित एक बिन्दु जो कि लिरा तारा के तरफ नज़दीकी स्थान में है जारहा है और जैसा उसका बड़ा परिवार है ऐसी ही उसकी बड़ी चाल है और सूर्य मय ज़मीन और सितारों के साथ तेज़ से तेज़ गोली की रफ़तार से भी तेज़ जा रहा है और हम पृथ्वी पर उस चाल में भाग ले रहे हैं और हर एक आध घंटे में करीब दसहज़ार १०००० मील लिरा के सितारे के नज़दीक हो जाते हैं सूर्य न चलता होता तो इतने नज़दीक न पहुंचते हम इस तेज़ी के साथ लिरा की तरफ़ बढ़ रहे हैं कि इससे यह ख्याल होता है कि हम सितारे की नज़दीक बहुत जल्द पहुंच जायंगे।

लेकिन लिरा की तरफ़ के सितारों से हमारा फ़ासला उस से कम नहीं मालूम होता जितना कि दूसरी तरफ़ के सितारों से और उसका परिवार वर्तमान रफ़्तार पर चल कर दसलाख वर्ष से पहिले उस अगाध, आसमानको पार नहीं कर सकेंगे जो कि सूरज के वर्तमान स्थान और लिरा की हद के बीच में है यह बात तसलीम कर लेनी चाहिये कि हमारी रफ़्तार बिल्कुल ठीक नहीं मालूम परन्तु जो चाल हर्शल ने बयान की है वह करीब २ ठीक है।

भावार्थ—सूर्य अपने परिवार सहित आध घंटे में १०००० हज़ार मील की चाल से लिरा तारे की तरफ़ जा रहा है।

नं० ५७ ज्योतिर्विनोद पत्र १२८-१३५।

सूर्यकी गतिका पता पहिले हर्शल (Herschel ने) लगाया, अपनी रीति उन्होंने एक उदाहरण द्वारा समझाई है। मान लीजिए कि एक सड़क के दोनों ओर बहुत दूर तक वृक्ष लगे हैं और एक मनुष्य उस पर चल रहा है ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ेगा उसको ऐसा प्रतीत होगा कि जिस ओर मैं चल रहा हूं इस ओर के वृक्ष अलग २ हो कर सड़क खुली छोड़ते जाते हैं और जिधर से मैं आरहा हूं उधर के वृक्ष मिलाकर सड़क बंद करते जाते हैं प्रत्येक मनुष्य एक लम्बी छायादार सड़क पर इसका अनुभव करसकता है और इसीतरह यदि सौर्य-चक्र किसी दिशा में जा रहा है तो उसके सामने के तारे

किसी दिशा में को हटते हुए दीखने पड़ने चाहिये और पीछे के सिमिटते हुए। परिश्रम करने से तारों का एक तरफ अलग होते जाना और दूसरी ओर पास होते जाना वस्तुतः देखा गया है ऐसा ज्ञात होता है कि सूर्य डेल्टा लायरा (Lyra) तारे की ओर जारहा है। उसका वेग क्या है। यह और भी कठिन प्रश्न है। यदि तारे ऊपर दी हुई उपमा के वृक्षों की भांति अचल होते तो वेग निकालना कठिन न होता, पर वे स्वयं चल रहे हैं और वह भी भिन्न भिन्न दिशाओं में। यदि ऊपर के उदाहरण में वृक्षों के स्थान में चलते हुए मनुष्य होते तो बीच में चलने वाले मनुष्य का वेग निकालना कितना कठिन होता, परन्तु आधुनिक ज्योतिषियों को धन्य है कि उन्होंने इस कठिनाई को भी जीत लिया है। ऐसा ज्ञात हुआ है कि सूर्य प्रति सेकिण्ड ११ मील या ५ $\frac{1}{2}$ कोस चलता है। यह वेग और कई तारों के वेग से बहुत कम है। पर यह स्मरण रहे कि इस वेग से सूर्य दिन रात में ५००००० मील या २ $\frac{1}{2}$ लाख कोस चलता है और जिस प्रकार एंजिन (Engine) के साथ गाड़ियां खिची चली जाती हैं उसी प्रकार सूर्य मण्डल के सब पिण्ड भी आकाश में इतना अवकाश अतिक्रमण करते हैं। पर कोई नहीं कह सकता है कि सूर्य हमको कहां लिए जारहा है। पता नहीं कि यह यात्रा डेल्टा लायरा (Lyra) पर ही समाप्त होगी या वह केवल एक स्टेशन ही है।

भावार्थ—सूर्य्य परिवार सहित डेल्टा लायरा तारे की तरफ १ सेकंड में ११ मील चलता है।

५८-५९ ज्योतिर्विनोद पत्र ४९ सूर्य से ग्रहों की दूरी परिभ्रमण कालादि का नक़शा।

ग्रहनाम	सूर्य से दूरी	परिभ्रमण काल दिन	व्यास	अनुमान १दिनकी प्रदक्षणा मील
बुध	तीन करोड़ बासठ लाख दस हज़ार मील ३६२१०००० मील	८८	३०३०मील	४१००००
शुक्र	छः करोड़ बहत्तर लाख अड़तीस हज़ार ६७२३८००० मील	२२५	७७००॥	३०००००
पृथ्वी	नौ करोड़ तीन लाख ९३०००००० मील	३६५॥	८०००॥	३६००००
मंगल	चौदे करोड़ दस लाख १४१०००००० मील	६८७॥	४२३०॥	२०००००
अवांतर ग्रह	अट्ठाईस करोड़ २८०००००० मील	२२००॥	१०मीलसे ५०० मील	१०२५००
बृहस्पति	अड़तालीस करोड़ बीस लाख मील ४८२००००००	४३३२॥	९२१६४॥	१२००००
शनि	अट्ठाईस करोड़ पैंतीस लाख मील २८३५०००००	१०७५९॥	७४०००॥	८०००००
युरेनस	दो अरब चौहत्तर करोड़ पैंतीस लाख मील २७४३५०००००	३०६८७॥	३१०००॥	२०००००
नेपच्यून	दो अरब अठत्तर करोड़ नब्बे लाख मील २७८९००००००	६०१२७॥	३४०००॥	४४००००

नोट—२ मील का १ कोस ४ कोस का १ योजन माना है।

NO. 60
ARDEN WOOD'S GEOG.
PAGE 9.

Like the Earth the moon has no light of its own. It shines at night because it reflect the light which it receives from the sun.

नं० ६० आर्डनवुड जॉगरफी सफा ९

पृथ्वी की तरह चन्द्रमा में अपनी रोशनी नहीं है। यह रात को इस कारण से चमकता है कि यह जो रोशनी सूर्य से लेता है उस को रात में झलकाता है।

भावार्थ—चन्द्रमा में प्रकाश सूर्य से होता है।

NO. 61
THE STORY OF HEAVENS
PAGE 533.

"But number every grain of sand,
Wherever salt wave touches land;
Number in single drops the sea;
Number the leaves on every tree,
Number earth's living creatures, all
That run, that fly, that swim, that crawl;
Of sands, drops, leaves and sives the count

Add up into one vast amount,
And then for every separate one
Of all those, let a flaming sun
Whirl in the boundless skies, with each
Its massy planets, to outreach
All sight, all thought: for all we see
Encircled with infinity,
Is but an island."

नं० ६१ स्टोरी पत्र ४३३ सूर्यों की गणना ।

मिस्टर एलिंगम्राम की बनाई हुई कविता का अर्थ
प्रत्येक रेतके दाने को जहां २ समुद्र की लहरें ज़मीन को छूती हैं, और

प्रत्येक समुद्र की बूदों को,
वृक्षों के पत्तों को, और

तमाम पृथ्वी के जिन्दा जानवरों को जो कि दौड़ते हैं, चलते है, तैरते हैं और रेंगते हैं शुमार करो और इन सब को एक जगह जोड़लो

फिर इनमें से एक २ की जगह पर, एक २ जलता और घूमता हुआ सूर्य मय बड़े २ तारों के जोकि गिनती में न आसकते हों ख्याल करो जो कुछ हम इस तरह पर अगिणित तारोंसे घिरा हुआ देखते हैं वह केवल एक टापूही है।

सर रोबर्ट एस बाल पुस्तक रचियता की राह :—
तारागणों की गिनती करना नामुमकिन है परन्तु इसका कुछ अन्दाज़ इस कविता से लगता है।

भावार्थ—सूर्य असंख्यात हैं।

NO 62.

THE STORY OF THE HEAVENS PAGE 516.

From each square foot in the surface of the sun emerges a quantity of heat as great as could be produced by daily combustion of sixteen tons of coal.

नं० ६२ स्टोरी की पुस्तक सफ़ा ५१६

सूर्य के धरातल के प्रत्येक वर्ग फुट में से इतनी गर्मी निकलती है जितनी कि १६ टन कोयलों के जलाने से निकल सकती है ।

NO. 63

STORY OF THE HEAVENS PAGE 546-547.

Let us clearly understand what we mean by, a month of one day. We mean that the time in which the moon revolves around the earth will be equal to the time in which the earth rotates around its axis. The length of this day, will, of course, be vastly greater than our day. The only element of

uncertainty in these enquiries arises when we attempt to give numerical accuracy to the statements. It seems to be as true as the laws of dynamics that a state of the earth-moon system in which the day and the month are equal must be ultimately attained, but when we attempt to state the length of that day we introduce a hazardous element into the enquiry. In giving any estimate of its length, it must be understood that the magnitude is stated with great reserve. It may be erroneous to some extent, though, perhaps, not to any considerable amount. The length of this great day would seem to be about equal to fifty-seven of our days. In other words, at some critical time, in the excessively distant future, the earth [illegible] take something like 1,400 hours to perform a rotation, while the moon will complete its journey precisely in the sametime.

नं० ६३ स्टोरी सफ़ा ५४६ ५४७

रोबर्ट एस बाल साहब लिखते हैं :—(अनागतमत) ।

हम अच्छी तरह से समझें कि १ दिन के माह से क्या तात्पर्य्य है । हमारा इस से यह मतलब है कि चंद्रमा को पृथ्वी की परिक्रमा करने में उतना समय लगेगा जितना कि पृथ्वी अपनी अक्ष पर घूमने में लगाती है । इस दिन की लम्बाई वास्तव में हमारे दिन से कहीं बड़ी होगी । जब हम इसका ठीक २ हिसाब लगाते हैं तो इस बात में सन्देह जान पडता है । आकर्षण शक्ति के अनुसार यह ठीक मालूम पड़ता है कि एक बार पृथ्वी और चंद्रमा की यह दशा अवश्य होगी जिस में चंद्रमा का दिन पृथ्वी के महिने के बराबर होगा । लेकिन जब हम इस दिन की लम्बाई बतलाने का प्रयत्न करते हैं तो हमारी इस खोज में सन्देह सा उत्पन्न हो जाता है ।

हालांकि यह कुछ ग़लत होगा मगर ऐसा बहुत नहीं । इस बडे दिन की लम्बाई हमारे ५७ दिनों की लम्बाई के बराबर होगी, अथवा बहुत ही भविष्य में पृथ्वी अपनी कीली पर घूमने में १४०० घंटे लगावेगी और तब चंद्रमा का दिन भी इतना ही बडा होगा ।

भावार्थ— कोई समय ऐसा आयगा जो दिन १४०० घंटे का होगा ।

NO. 64

ARDEN WOOD GEOG. PAGE 4.

Light travels at the almost incredible speed of 18600 miles a second.

Never the less the light of the sun takes more than eight minutes to reach the earth.

नं० ६४ आईनवुड जोगरफी सफा ४ ।

"रोशनी की चाल जोकि करीब २ आश्चर्य कारी है १८६००० मील फी सैकंड है फिर भ: सूर्य की रोशनी को जमीन तक पहुंचने में ८ मिन्ट से अधिक समय लगता है ।

नं० ६५ ज्योतिर्विनोद पत्र ५३ ।

सौर चक्र में ग्रहों और उपग्रहों के अतिरिक्त कुछ और भी पिण्ड हैं जिन को केतु और उल्का कहते हैं इन विलक्षण पिंडोंका वर्णन एक स्वतंत्र अध्याय में किया जायगा जहां तक ज्ञात है अवांतर ग्रहों की संख्या ७०० के लगभग है परन्तु यह कोई नहीं कह सकता कि सूर्य के साथ कितने केतुओं और उल्काओं का सम्बन्ध है हम ने पहिले सूर्य को नवग्रह का राजा बतलाया है परन्तु इन पिंडों को देख कर हठात यह कहना पड़ता है कि वह नवग्रह नहीं प्रत्युत असंख्य जगतों का स्वामी है . इतना ही नहीं वरन् वह सदैव जैसा कि एक योग्य पिता को करना चाहिये, इन सब की रक्षा और परिचर्या करता रहता है ।

भावार्थ—(system) सौर चक्र सूर्य से असंख्यात मीलों दूरी पर है

नं० ६६ ज्योतिर्विनोद पत्र ६६–६७–६८–६९

६६ पत्र—सौरचक्र के पिंडों में हमें जितना वृतांत मंगल का ज्ञान है उतना और का नहीं। एक तो इसके देखने में कठिनाइयां नहीं पड़तीं जो बुध और शुक्र के सम्बंध में होती हैं। दूसरी सुगमता मंगल के देखने में यह है यद्यपि उसमें शुक्र के बराबर चमक नहीं होती परन्तु उसके रंग से वह पहचाना जाता है। मंगल रक्त वर्ण है।

६७ पत्र—पृथ्वी से बहुत मिलता है उसमें भी वायु मण्डल है पर बहुत पतला है हिमालय पहाड़ की पतली हवा से भी पतला है।

६८ पत्र—जिस प्रकार पृथ्वी के उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के पास बर्फ जमी रहती है उसी प्रकार मंगल के ध्रुवों के पास भी बर्फ है।

६९ पत्र—परन्तु सन् १८७७ से इन मतों में परिवर्तन आरंभ हुआ। उसी वर्ष प्रसिद्ध ज्योतिषी शियापेरेली को कुछ धारियां देख पड़ीं इनको उन्होंने नहर का नाम दिया। कई वर्षों तक तो और ज्योतिषियों को इन नहरों (canals) के अस्तित्व में ही संदेह था क्यों कि कई कारणों से ये उनको देख ही न पड़ीं, परन्तु सन् १८८६ में और लोगों ने भी इनको देखा और उस समय से अब तक ये सबको ही देख पड़ती हैं अब इन के अस्तित्व में प्रायः किसी को भी संदेह नहीं है। दृष्ट नहरों की संख्या भी बढ़ती जाती है। इस समय अच्छे यंत्रों से तीन सौ से ऊपर नहरें देखी जा सकती हैं। ये नहरें मंगल के ध्रुवों के पास आरंभ होती हैं और लाल भाग के बीच की ओर जाती हैं। जहां कई नहरें मिलती हैं वहां हरे रंग के बड़े २ मैदान हैं इनको झीलका नाम दिया गया है कई नहरें दस २

कोस यानी बीस मील चौड़ी हैं सबसे लम्बी नहर जिसको यूमिनिडीज़ आर्कस (Eumenides orcus) कहते हैं १७७० कोस यानी ३५४० मील लम्बी है।

इन नहरोंके सम्बन्ध में और भी कई स्मरणीय बातें हैं। जिस समय मंगल पर सर्दी पड़ती है और उस के ध्रुव के पास बर्फ़ जमने लगती है तो ये नहरें पतली हो जाती हैं। जब गर्मी में बर्फ़ गलने लग जाती है तो ये मोटी और चौड़ी होने लगती हैं और साथ ही साथ बर्फ़ के गलने से उस के नीचे जो पानी बनता है और जो— जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं पृथ्वी से नीला मैदान सा देख पड़ता है वह भी पतला और छोटा होता है इन आश्चर्यों की संख्या इस बात से और बढ़ गई है कि थोड़े दिन हुए एक नई नहर देखी गई है और एक पुरानी नहर के ठीक बगल में एक और नहर देख पड़ने लगी है।

ये नहरें वस्तुतः क्या हैं? यह एक बड़ा रोचक प्रश्न है। कुछ ज्योतिषियोंने पहले यह अनुमान किया कि ये दरारें हैं परन्तु इन्हें दरार मानने से जिन सब बातों का कथन ऊपर किया गया है वे समझ में नहीं आतीं फिर ये नहरें इतनी सीधी और नियम पूर्वक बनी प्रतीत होती हैं कि प्राकृतिक दरारें प्रायः ऐसी नहीं होतीं इस विषय पर और ज्योतिषियों की अपेक्षा अमेरिका के मिस्टर लोवेल (M. R. Lowell) ने अधिक विचार किया है कई वर्षों के अन्वेषण और कठिन परिश्रम के उपरांत उन्होंने एक सिद्धान्त निश्चित किया है उस का सारांश यों है :—

मंगल किसी समय पृथ्वी के सदृश था परन्तु अब उसकी वह दशा नहीं है अब वह वृद्ध हो गया है यद्यपि वह अभी चन्द्रमा के समान मृत जगत नहीं हुआ है परन्तु पृथ्वी से पुराना है उसके अवस्था पृथ्वी

और चन्द्रमा, बुध इत्यादि के बीचकी है किसी दिन पृथ्वी की भी यही दशा था इसी से मिलती जुलती दशा होने वाली है उसका जो भाग पृथ्वी में लाल रंग का देख पड़ता है वह शुष्क मरुभूमि है किसी समय वहां जल या खेत रहे हों पर उस की दशा मारवाड़ के बालुकामय मैदानों में जैसी है उसके जो टुकड़े हरे देख सकते हैं वह समुद्र नहीं प्रत्युत हरे भरे मैदान हैं मंगल पर वायु तो थोड़ी है ही–जल भी थोड़ा ही है इसलिये उस पर सब जगह खेती नहीं हो सकती और न प्राणी रह सके हैं वहां के रहने वाले अत्यन्त सभ्य और सुशिक्षित हैं इसलिये उन्होंने अपने ध्रुवों के पास से नहरें खोदी हैं और अब भी आवश्यकतानुसार खोदते जाते हैं जब गर्मी में बर्फ़ गलती है तो वे उस से बने हुए जल को उन जगहों में ले जाते हैं अभी खेती हो सकती है अर्थात् जो जगहें रेत से बची हुई हैं इसीलिये गर्मी में नहरें मोटी देख पड़ती हैं और ध्रुवों के पास बर्फ़ गलने से जो नीला पानी देख पड़ता है वह क्षीण होता जाता है।

मंगल के सम्बन्ध में इतना ही वक्तव्य और शेष है कि यद्यपि अब ज्योतिषियों के मन में बहुत परिवर्तन हो गया है फिर भी जितने चित्रपट बनते हैं उन में नाम पहले ही की भांति दिये जाते हैं अब भी मंगल पर महाद्वीप, सागर नदी आदि के ही नाम हैं हिन्दुओं को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि एक नहर का नाम "गंगा" रक्खा गया है।

भावार्थ—मंगल पृथ्वी के समान है वहां के सुशिक्षित पुरुषोंने नहरें भी निकाली हैं जिन में एक का नाम गंगा है एक सब से बड़ी नहर १७७० कोस लम्बी है।

NO. 67
STORY OF HEAVENS PAGE 547.

We refer, of course, to the fact that the moon at the present time constantly turns the same face to the earth

---

नं० ६७ स्टोरी सफ़ा ५४७

चन्द्रमा का एक ही भाग आजकल दीखता है ।

NO. 68
THE STORY OF HEAVENS PAGE 74.

When we measure the actual diameters of the two globes, we find that of the earth to be 7,914 miles and of the moon 2,160 miles so that the diameter of the earth is nearly four times greater than the diameter of the moon. If the earth were cut into 50 piececes, all equally large, then one of these pieces rolled into a globe would equal the size of the moon. The superficial extent of the moon is equal

to about one thirteenth part of the surface of the earth. The hemisphere our neighbour turms towards us exhibits an area equal to about one twenty-seventh part of the area of the earth.

This, to speak aproximately, is about double the actual extent of the continent of Europe. The average materials of the earh are, however. much heavier than those contained in the moon. It wolud take more than eighty globes each as ponderous as the moon, to weigh down the earth.

नं ६८ स्टोरी सफा ७४

जब हम दोनों गोलों के असली व्यासों को नापते हैं तो हमको मालूम होता है कि ज़मीन का व्यास ७९१४ मील है और चन्द्रमा का २१६० मील है। इस तरह से ज़मीन का व्यास चन्द्रमा के व्यास से चौगुना है। अगर ज़मीन को पचास बराबर हिस्सों में बांट दिया होता तो इन में से एक हिस्सा गोला बनकर के आकार में चन्द्रमाके बराबर हो जाता। चन्द्रमाकी लम्बाई चौड़ाई (क्षेत्रफल) ज़मीन की सतह के तेरहवें हिस्सें के बराबर है। हमारे पास का गोलार्द्ध जो हमारी तरफ़ घूमता है और जिसका रक़बा ज़मीन के रक़बे (क्षेत्रफल) के सत्ताईसवें हिस्से के बराबर दिखाई देता है। यह

क़रीबन यूरुप के दुगने क्षेत्रफल के बराबर है।" लेकिन पृथ्वी की चीज़ों की औसत बनिस्बत उन चीज़ों के जो चन्द्रमा में शामिल है ज़ियादा वज़नी है इसलिये पृथ्वी का बोझ निकालने में चन्द्रमा के से ८० से भी अधिक गोले चढ़ेंगे।

भावार्थ—चन्द्रमा का व्यास २१६० मील है और पृथ्वी से पिराड में १/५० वां और तोल में १/८० वां और क्षेत्रफल में १/१३ वां भाग है।

NO. 69

THE STORY OF HEAVENS PAGE 12-13.

The first(Fig,2)represent the dome erected at Dunsink observatory for the equatorial telescope, the objectglass of which was presented to the Board of Trinity College, Dublin by the late sir James South. The main part of the building is a cylindrical wall, on the top of which reposes a hemispherical roof. In this roof is a shutter, which can be opened so as to allow the observer in the interior to obtain a view of the heavens. The dome is capable of revolving so that the opening may be turned towords that part of the sky where the object happens to be

situated. The next view (Fig. 3) exbihits a section through the dome, showing the machinery by which an attendant causes it to revolve as well as the telescope itself. The eye of the observer is placed at the eye piece and he is represented in the act of turning a handle, which has the power of slowly moving the telescope, in order to adjust the instrument accurately on the celestial body which it is desired to observe.

नं० ६६ स्टोरी सफा १२–१३

दूसरे चित्र की इमारत इस तरकीब से बनी हुई है कि भीतर खड़ा हुआ मनुष्य आसमान पर की वस्तुओं को इमारत की गुम्मज जोकि घूम सकती है उसकी खिड़की द्वारा देख सके। यह खिड़की गुम्मज के घूमने से हर एक ओर लाई जासकती है।
तीसरे चित्र में मनुष्य दूरबीन सहित दिखाया गया है इस दूरबीन में एक हत्था होता है जिस के द्वारा देखने वाला अपनी आंख देखने के स्थान पर लगाकर हत्थे को अपने हाथ से पकड़कर धीरे धीरे चाहे जिस ओर को हटा सकता है, इस तरह से वह आसमान पर की वस्तु को जिसे वह देखना चाहे ठीक प्रकार से देख सकता है।

भावार्थ—दुरबीन के मकान की छत घूमती व खिड़कीदार में स्थिर दुरबीन के द्वारा स्थिर पुतली करके देख रहा है।

THE STORY OF HEAVENS

PAGE 537.

It was not, however, until the great discovery of newton had disclosed the law of universal gravitation that it became posible to give a physical explanation of the tides. It was then seen how the moon attracts the whole earth and every particle of the earth. It was seen how the fluid particles which form the oceans on the earth were enablied to obey the attraction in a way that the solid parts could not. When the moon is overhead it tends to draw the water up, as it were, into a heap underneath, and this to give rise to the high tide The water on the opposite side of the earth is also affected in a way that might not be at first anticipated. The moon attracts the solid body of the earth with greater intensity than it attracts the water at the other side which lies more distant from it. The earth is thus drawn away from the water, and there is therefore a tendency to a high tide as well on the side of the earth

away from the moon as on that towards the moon. The low tides occupy the intermediate positions.

नं० ७०. स्टोरी पत्र ५३७

ज्वार भाटा पृथ्वी के दोनों भाग पर होता।

जिस वक्त तक न्यूटन की संसारी कानून कशिश का आविर्भाव नहीं हुआ था उस वक्त तक ज्वारभाटे का सबब मालूम नहीं था। यह उस वक्त मालूम हुआ था कि किस तरह चन्द्रमा कुल ज़मीन और उसके हर एक ज़र्रे को खींचता है और यह भी मालूम हुआ था कि समुद्र का पानी स्थूल पदार्थ के मुक़ाबिले में कशिश का कितना पाबन्द है। जब चांद ठीक सर पर होता है। वह पानी को खींचता है और इस से बड़ा ज्वार भाटा उठता है। पृथ्वी के दूसरे हिस्से के पानी में किस क़दर चन्द्रमा का असर पड़ता है उसका असर ख्याल नहीं किया जाता है। चन्द्रमा पृथ्वी को पृथ्वी के दूसरी ओर के पानी की अपेक्षा अधिक ज़ोर से खींचता है इस तरह से पृथ्वी पानी से दूर खिंच जाता है। इस कारण चन्द्रमा के सन्मुख पृथ्वी के दूसरे भाग में जो चन्द्रमा से दूर है उस में ज्वारभाटा होता है।

भावार्थ—पृथ्वी की दूसरी ओर में ज्वारभाटा—चन्द्रमा पृथ्वी को खींचता है जब होते हैं।

NO. 71
STAR LAND PAGE 28.

In the middle of the day, when the sun is high in the heavens, it is

impossible fore us to form a *notion* of the size of the sun people will form very different estimates as to his apparent bigness. Some will say he looks as large as adinner plate, but such state ments are meaningless, unless we say where the plate is to be held. If it be near the eye, of course the plate may hide the sun, and fox that matter, every thing else also. If the plate be about a hundred feet away, then it might just about hide the sun. If the plate were move than a hundred feet distant then it could not hide the sun entirely, and the further the plate, the smaller it would seem.

स्टार लैण्ड सफ़ा २८ ।

दोपहर (मध्यान्हकाल) को जबकि सूर्य्य आकाश में ऊंचा होता है, उस समय हमारे लिए सूर्य्य के क़द का अन्दाज़ा करना (यह ज्ञात करना कि सूर्य्य कितना बड़ा है) असम्भव है । उसके प्रत्यक्ष विस्तार के विषय में मनुष्यों का भिन्न २ अन्दाज़ा (अनुमान) होगा । कोई कहेंगे कि वह इतना बड़ा ज्ञात होता है जितनी कि खाने की रक़ाबी लेकिन ऐसा कहदेना बे मतलब या मुहमिल है जब तक कि हम यह न बतलादें कि वह रक़ाबी कहां पर रक्खी हुई है । अगर वह रक़ाबी आंख के पास है तो

यह अवश्य ही सूर्य्य को ही नहीं बल्कि अन्य उतनी ही बड़ी चीज़ों को भी छिपालेगी। यदि वह क़रीब १०० फ़ीट के दूर होगी तो वह सूर्य्य को क़रीब २ छिपालेगी। यदि वह १०० फ़ीट से अधिक दूरी पर होगी तो वह सूर्य्य को बिल्कुल नहीं ढाक सकती, रुकावट जितनी ही ऊंची होगी उतनी ही छोटी ज्ञात पड़ेगी।

भावार्थ—रुकावट की छाया पृथ्वी पर बराबर, सूर्य्य की तरफ जाकर कम अन्त में नष्ट होजाती है।

NO. 72

ASTRONOMY OF TODAY PAGE 128-129.

The theory which seems to have received most acceptance is that put forward by Helmholtz in 1854 His idea was that gravitation produces continual contraction, or falling in of the outer parts of the sun; and that this falling in its turn, generates enough heat to compensate for what is being given off. The calculations of Helmholtz showed that a contraction of about 100 feet a year from the surface towards the centre would suffice for the purpose. In recent years however,

this estimate has been extended to about 180 feet.

Nevertheless, even with this increased figure, the shrinkage required is so slight in comparison with the immense girth of the sun, that it would take a continual contraction at this rate for about 6000 years, to show ever in our finest telescopes that any change in the size of that body was taking place at all Upon this assumption of cotinuous contraction, a time should, however, eventually be reached when the sun will have shrunk to such a degree of solidity, that it will not be able to shrink any further. Then, the loss of heat not being made up for any longer, the body of the sun should begin to grow cold But we need not be distressed on this account, for it will take some 10,000,000 years, according to the above theory before the solar orb becomes too cold to support life upon our Earth.

नं० ७२ ऐस्ट्रोनोमी आफ़ टूडे सफ़ा १२८—१२६

सब से अधिक मान्यनीय सिद्धान्त वह मालूम होता है जिसको कि हेलम होल्टज़ साहब ने सन् १८५४ ई० में पेश किया। उस का यह ख्याल था कि आकर्षण

सूर्य्य के बाहर के हिस्से में सिकुड़न व गर्मी पैदा करती है। और यही सिकुड़न उस गर्मी को वापिस अदा करने के लिए जोकि सूर्य्य से निकलती रहती है काफ़ी गर्मी पैदा कर देती है। हेलम होल्टज़ साहब के हिसाब से १०० फ़ीट की सिकुड़न सूर्य्य के धरातल से केन्द्र की तरफ़ एक साल में काम के लाइक़ (आवश्यकतानुसार) गर्मी पैदा करदेती है। आजकल इस सुकड़नका अन्दाज़ा क़रीब क़रीब १८० फ़ीट फ़ी साल है। इस प्रकार के बढ़े हुए हिसाब से भी सूर्य्य के बड़े क़द की अपेक्षा सिकुड़न इतनी कम है कि क़रीब २ लगातार ६००० वर्ष लगेंगे तब कहीं हमारी अच्छी से अच्छी दूरबीन में यह मालूम हो सकता है कि सूर्य्य में कुछ परिवर्त्तन होरहा है। इस तरह बराबर सिकुड़ते सिकुड़ते एक समय ऐसा अवश्य आवेगा जबकि सूर्य्य इतना सिकुड़ जायगा कि और फिर नहीं सिकुड़ सकता। और तब सूर्य्य में गर्मी वापिस न आने के कारण सूर्य्य ठंडा हो जाइगा लेकिन हमको इस बात से दुःखित न होना चाहिए क्योंकि उपरोक्त सिद्धान्त के मुआफ़िक़ क़रीब १०००००००० साल ऐसा होने में लगेंगे क़ब्ल इसके कि सूर्य्य इतना ठंडा होजाय कि हम उसपर जीवित भी न रह सकें।

भावार्थ—सूर्य एक साल में १८० फ़ीट सिकुड़ता जाता है और अंत में सिकुड़न बन्द होने पर ठण्डा होजायगा।

NO. 73
ASTRONOMY OF TODAY
PAGE 44-45

Notwithstanding the acknowledged truth and farreaching scope of the law of gravitation -- for we find its effects exemplified in every portion of the Universe there are yet some minor movements which it does not account for. For instance, there are small irregularities in the movement of mercury which can not be explained by influence of posible intra mercurial planets. and similarly there are slight unaccountable deviations in the mations of our neighbour the moon,

---

नं० ७३ एस्ट्रो नोमी आफ़ टूडे सफ़ा ४४–४५

इस मानी हुई सचाई और आकर्षण के नियम की विस्तृतता के होते हुए भी कि संसार भर के प्रत्येक हिस्से पर आकर्षण का प्रभाव दीख पड़ता है ऐसी ऐसी छोटी २ हरकतें (ग्रहों की हरकतें) हैं कि जिस में आकर्षण से कोई काम नहीं चलता। (जिस में आकर्षण से कोई सम्बन्ध नहीं) उदाहरण के लिए बुद्ध की चाल में कुछ ऐसी त्रुटियां हो जाती हैं जोकि बुद्ध के उपग्रहों के प्रभाव से कोई सम्बन्ध नहीं रखतीं, और इसी प्रकार की छोटी

छोटी त्रुटियां हमारे पड़ोसी चन्द्रमा की चाल में भी पाई जाती है।

भावार्थ–चन्द्रमा और बुध की चाल से आकर्षण की असंभवता।

नं० ७४ टाइमटेबिल

कलकत्ते के समुद्र की सतह से पृथ्वी की दूरी तथा ऊंचाई का ब्योरा।

नाम स्थान	दूरी मील	उंचाई फीट
दिल्ली	९००	७१५
आगरा	७२०	५३४
पटना	३३२	१८५
अलीगढ़	८१०	६२१
हुगली	२५	२४
पानीपत	९५८	७७४
करनाल	९७९	८१५
कुरुक्षेत्र	१००७	८४०
कानपुर	६३३	४२८

जैसे कलकत्ते के समुद्र की सतह से कुरुक्षेत्र तक १००० मील करीब में पूर्व के शहरों की दूरी और पृथ्वी की उचाई दी है तैसेही किरांची के समुद्र की सतह से १००० मील करीब दूर कुरुक्षेत्र है वहां पश्चिम के शहरों की दूरी व उचाई समझना क्योंकि कुरुक्षेत्र की भूमि से गंगा कलकत्ते में और सिन्धु किरांची में जा मिली है।

नं० ७५   टाइमटेबिल

पृथ्वी पर घड़ी के द्वारा टायम दिखाने का नकशा देशो में जो ग्रनिच में दिन के १२ बजे से।

पी०ऐम० दिन के १२ से १२ रात तक। ए०ऐम० रात्रि के १२ से १२ दिन तक।

नाम नगर	बजे	समय	
बर्लिन (जर्मन)	१२ ५४	पी	ऐम
आकलैण्ड रात्रि	११-३६	"	"
बम्बई	४ ५१	"	"
ब्रुसल्स	१२-१७	"	"
कलकत्ता	५-५३	"	"
चिकागो (अमरीका)	६-१०	ए	ऐम
डुबलिन	११-३५	"	"
केन्डन बर्ग	११-३७	"	"
ग्लासगो	११-४२	"	"
मन्द्राज	५-२१	पी	ऐम
माल्टा	१२-५८	"	"
मेलबोरनी रात्रि	९-४०	"	"
मोज़को	२-३०	"	"
न्यूयार्क	७-४	ए	ऐम
पेरिस	१२-९	पी	ऐम
रात्रि पेकिन	७ ३६	"	"
रूम	१२ ५०	"	"
पिटसबर्ग	२-१	"	"
स्वेज़	२-१०	"	"
वीना	१ ५	"	"

नं० ७६ मैन्स्यू रेशन सफा २५

किसी नदी का पाट बिना उसके पार गये हुए बताओ।

कल्पना करो, अ और व दो वस्तु नदी के दोनों तटों पर एक दूसरे के सन्मुख एक ही साध में स्थित हैं नदी के इस तट पर एक रेखा अज, अव के साथ सम-कोण बनाता हुआ खींचो और अज को नाप लो अज को द तक बढ़ाओ और दक लम्ब बिंदु क तक इस प्रकार खींचो कि क व ज व व एक ही सीध में दिखलाई दें तो वअज और जदक सजाती त्रिभुज हैं।

∴ जद:दक::जअ:अव इस हेतु

$$अव = \frac{दक \times जअ}{जद}$$
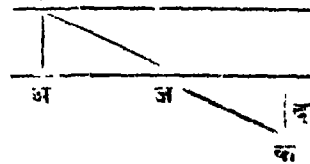
परन्तु दक व जअ व जद मालूम हैं क्योंकि नदी के इस ओर होने के कारण नाप सके हैं इस हेतु नदी का पाट अव मालूम हो गया।

नं० ७७ मैन्स्यू रेशन सफा ३५

एक वृत के बाहरी बिन्दु की दूरी केन्द्र तक और अर्द्ध व्यास मालूम है तो सम्पात रेखा बताओ।

कल्पना करो वहद वृत है ज वृत का केन्द्र है बिंदु अ से अव सम्पात रेखा वृत की है जव को मिलादो तो रेखागणित से सिद्ध होता है कि कोण अवज समकोण है

$(\overline{अब})^2 = (\overline{अज})^2 - (\overline{जब})^2 = (\overline{अज} + \overline{जब})$

$(\overline{अज} - \overline{जब})$ (परिच्छेद १७)

रीति–वृत्त के बाहरी बिंदु से केन्द्र तक की दूरी और अर्द्ध व्यास के योग और अंतर को परस्पर गुणा करके गुणन फल का वर्गमूल निकालो वही उस बिन्दु से स्पर्श रेखा होगी।

उदाहरण–एक वृत्त का अर्द्ध व्यास ६ गज और बाहरी बिन्दु से केन्द्र तक की दूरी १० गज है तो सम्पात रेखा की लम्बाई बताओ।

सम्पातरेखा $= \sqrt{(१०+६)(१०-६)}$

$= \sqrt{१६ \times ४} = ४ \times २ = ८$ गज

नं० ७८ ऐलीमेंटरी सफा ४२

ज्यों ज्यों पदार्थ केन्द्रके पास जाता है त्यों त्यों हलका होता जाता है।

भावार्थ — केन्द्र के पास वज़न पदार्थ में नहीं रहता।

नं० ७९ मैन्स्यूरेशन सफा ३५

इस किताब की गणित बमूजिब ट्रिगोंमोमेटरी Trigonometry के है। रीति—उचांइ को पृथ्वीके व्यास से गुणा करके वर्गमूल निकालो वही दूरी मीलों में होगी जहांतक दृष्टि जासक्ती है।

NO. 80

MANUAL GEO. P. 5

There are some bodies which come into contact with the atmosphere of the Earth when the heat generated by friction ignites them, and they are consumed They then become visible a shooting stars. Some times they fall on the Earth and are then called Aerolites

---

नं० ८० मैन्युअल जौगरफी सफा ५

कुछ ऐसे पृथ्वी तारे हैं जोकि पृथ्वी के वायुमंडल में आ जाने से गर्मी पाकर क्षय हो जाते हैं और फिर वह टूटते हुए तारे की शकल में दीख पड़ते हैं बाज़वक्त वे पृथ्वी पर भी गिरते हैं और तब वह 'एरोलिटीज़' के नाम से पुकारे जाते हैं।

श्रीज्योतिःस्वरूप शर्मा के "सारस्वत-प्रेस" मुहल्ला गम्भीरपुरा अलीगढ़ में मुद्रित।

* विशेष सूचना *

इस पुस्तक के संग्रह करने का मुख्य प्रयोजन यह है कि भूगोल-भ्रमण मत वादियों को अपने मत वादियों के मतान्तर का तथा इस मत के विपक्षियों को इनके मत की यथार्थता बोधन जो दुस्साध्य है, वह सुगम साध्य हो जाय।

यदि इसमें कहीं कोई त्रुटी किसी को विदित हो तो वे हमें पत्र द्वारा सूचित करें।

पं० प्यारेलाल जैन
मंत्री, भूज्योतिषचक्र विवेचिनी सभा
सिरनीसराय अलीगढ़

॥ श्री ॥

॥ श्री वीतरागायनमः ॥

मि० वीरचंद राघवजी गांधी

का

जीवन चरित्र

श्री जैन श्वेतांबर कान्फरेंस हैरल्ड में प्रकाशित
गुजराती लेख का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक

श्याम लाल वैश्य मुरार

प्रकाशक

श्री आत्मानन्द जैन सभा अम्बाला शहर

श्रीवीर निर्वाण सं० २४४५ — श्री आत्म सं० २४
विक्रम सं० १९७६ — ईस्वी सन् १९१९
प्रथमावृत्ति १०००] — मूल्य ।)

जैनीलाल प्रेस सहारनपुर में छपा

॥ श्री ॥

॥ श्री वीतरागायनमः ॥

मि० वीरचंद राघवजी गांधी

का

जीवन चरित्र

श्री जैन श्वेतांबर कान्फरंस हैरल्ड में प्रकाशित
गुजराती लेख का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक

श्याम लाल वैश्य मुरार

प्रकाशक

श्री आत्मानन्द जैन सभा अम्बाला शहर

श्रीवीर निर्वाण सं० २४४५ श्री आत्म सं० २४
विक्रम सं० १९७६ ईस्वी सन् १९१९

प्रथमावृत्ति १०००] मूल्य ।)

जैनीलाल प्रेस सहारनपुर में छपा

धन्यवाद

इस पुस्तक के छपाने में लाला दौलतराम जी के सुपुत्र लाला हरीचन्द इन्द्रसैन अंबाला शहर निवासी ने रु० ७०) की सहायता दी है इसलिये सभा की तर्फ से उपरोक्त महानुभावों को धन्यवाद दियाजाता है।

निवेदकः--

सेक्रेटरी

॥ श्रीवीतरागायनमः ॥

* भूमिका *

मनुष्य जीवन को आदर्श बनाने के लिये, उसे कर्तव्यवान बनाने के लिये ऐसे ग्रन्थों की आवश्यकता है जिनसे हमें आगे बढ़ने के लिये मार्ग मिले। महात्माओं के कर्त्तव्यशाली पुरुषों के जीवन की घटनाएँ मनुष्य को इस योग्य बनाती हैं। महात्माओं के चरित्रों सेही भविष्य जीवन का संगठन होता है पूज्य पुरुषों और महात्माओं के चरित्रों के अनुकरण करने सेही हम आगे बढ़ सकते हैं। जीवन को कर्त्तव्यशाली, महान् और पूज्य बनाने का इस से सरल और कोई दूसरा साधन नहीं है। शिवाजी, गारफिल्ड और लिंकन आदि महात्मा भी चरित्रों के पढ़नेसे ही ऐसे प्रसिद्ध महात्मा हुये। बालकों के ऊपर जीवन चरित्रों का बड़ा प्रभाव पडता है।

हिन्दी में जीवन चरित्रों का प्रायः अभावसाही है। देशोत्थान के लिये राष्ट्र भाषा होनेवाली हिन्दी में ऐसे ग्रन्थों का बाहुल्य होनाचाहिये जिससे देशका वास्तविक उपकार हो और भविष्य संतान अपने पितामहों के आदर्श पर चले तथा उनके अपूर्ण रहे हुये कार्यों को पूर्ण करें। पुस्तक प्रकाशकों को अवश्य इस ओर ध्यान देना चाहिये।

संसार में अनेकों महापुरुष होगये हैं जिन्हों ने अपना सारा जीवन मनुष्य समाज की सेवा में ही बिताया है। त्तण

भर भी वे सेवा से विरत नहीं हुये। वास्तव में ऐसे मनुष्यों का जन्म संसार में स्वर्ग बनाने के लिये हुआ था। इन्हीं के परिश्रम का फल है कि उन के यत्न से आज संसार की मनुष्य जाति अनेकों प्रकार के सुख भोग रही है। ऐसे महापुरुषों की गुणगरिमा संसार में उस समय तक बनी रहेगी जिस समय तक मनुष्य जाति का नाम रहेगा।

ऐसेही महापुरुषों में मिस्टर गांधी का जन्म हुआ था। जैन जाति को इस पर अभिमान है कि वर्तमान काल में उस जाति में ऐसे कर्मवीर ने जन्म लिया। मिस्टर गांधी ने अपना सारा जीवन लोकोपकार में बिता दिया। वे मरते समय तक मनुष्य समाज की सेवा के लिये कटिबद्ध रहे। जैन धर्म और जैन जाति का तो उन्हों ने बड़ा उपकार कियाही है पर उन्हों ने सार्वजनिक कामों में भी खूब योग दिया है। वे पक्के देश भक्त थे। केवल जैनियों के उत्थान के लिये उन्होंने परिश्रम नहीं किया बल्कि अपने देश और देश भ्राताओं के लिये कुछ उठा नहीं रखा। दुष्काल में अमेरिका से अन्न का भरा हुआ जहाज़ भिजवाना तथा स्त्री शिक्षा के प्रचार के लिये मिशन स्थापित करना, उनकी देश भक्ति के उत्कट प्रमाण हैं। अमेरिका में भारत बासियों की नीति रीति के विषय में किम्बदन्तियां फैल रहीं थीं। उनको दूर करने का श्रेय मिस्टर गांधी कोही है। हम स्वयं कुछ न कह कर प्रातः स्मरणीय महात्मा महादेव गोविन्द रानाडे की दी हुई स्पीच को पढ़ने की प्रार्थना करते हैं। उसका सारांश जीवन चरित के अंत में दियागया है।

जैन समाज के नवयुवको, उठो, अपने इस बंधु का अनुकरण करो। देश और समाज सेवा में अपने जीवन को अर्पण

करके मनुष्य योनि सार्थक करो। अपने हृदय पर नीचे लिखी कविता लिखलो और गांधीके आदर्श को सामने रखकर आगे बढ़ो।

" जिस को न निज गौरव तथा, निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, वह पशु निरा है, और मृतक समान है ॥

सेवकः—

मुरार ' गवालियर
होलिका पौर्णिमा

श्याम लाल वैश्य
सम्पादक ' नारद,
तथा
भू० पू० सम्पादक 'मुनि'

स्वर्गीय वीरचन्द गांधी।

genius begins great works;
labour alone finishes them.

महान् कार्यों का आरंभ प्रतिभाशाली पुरुष करते हैं; पर उसका अंत श्रमशील मनुष्य ही करते हैं।

॥ प्रस्तावना ॥

कर्तव्यशाली महापुरुषों का जीवन सामान्यता माननीय और अनुकरणीय होता है। इस संसार में करोड़ों मनुष्य पैदा होगये, हो रहे हैं और भविष्य में होंगे, परन्तु ज्ञान सम्पादन करके जिन्हों ने राष्ट्रोन्नति के लिये, समाजोन्नति के लिये परोपकार के लिये, और धर्म के निमित्त अपना स्वकर्त्तव्य समझ कर जिस महात्मा ने अनेक काम किये हों, कर रहे हों और भविष्य में करेंगे, वेही महात्मा वंदनीय हैं। कर्त्तव्य के सहारे मनुष्य इस भूलोक को भी स्वर्ग बना सकता है और स्वयं मानव देव बन सकता है। पूर्व पुरुषों के महत्व का कारण उनकी कर्त्तव्य परायणता ही है। उसी कर्त्तव्य परायणता के उपासक पूर्व पुरुषों की स्तुति स्त्रोत गाये जाते हैं। कर्तव्य एक अजब और अमूल्य शक्ति है जिसकी साधना से देश, धर्म, और समाज उन्नति के शिखर पर चढ़ सकता है। कर्त्तव्य की प्रशंसा में एक अंग्रेज् कवि का कथन है कि —

I slept and dreamt that life was Beauty,
I woke and found that life was Duty.

स्वप्न दृष्टि में मानव जीवन सौन्दर्य में लिप्त दिखाई दिया,

पर जहां दृष्टि जागृत हुई—घट की खुली, तहां यही मानव जीवन कर्त्तव्य पूर्ण दिखाई दिया।

इस का अर्थ यह है कि कर्त्तव्य के कारण मानवी चरित्र महत्व का होजाता है। हम अपने प्राचीन पुरुषों, ऋषियों और महात्माओं के विषय में विचार करते हुये कहते हैं प्राचीन समय में सत्तयुग था—वह स्वर्ण का था और उस काल में देव तुल्य महात्मा होते थे पर हमारे जमाने के लिये वे दिन गये"। पर वास्तव में सत्य क्या है? इसका विचार करने पर ज्ञात होता है कि काल सर्वदा वही रहता है। जो समय पहिले था, वह अब भी है। पूर्व काल जो उनका था वह हमारा भी है। केवल अन्तर इतनाही है कि इस काल में वैसे कर्त्तव्य परायण परिश्रमी पुरुष पैदा नहीं हुए, इसलिये इस काल का महत्व घटगया और वह तुच्छ मालूम होने लगा। प्रति दिन सहस्र रश्मि सूर्य तेज सहित पूर्वदिशा में उदय होता है पश्चात् दिन भर भूमि को प्रकाशित करके सायंकाल के समय पश्चिम दिशा में अस्त होजाता है। रात्रि के समय आकाश असंख्य तेज पुंज ताराओं से प्रकाशमान रहता है। चन्द्र ज्योति का रमणीय साम्राज्य शुक्ल पक्ष में स्थिर रहता है। और कृष्ण पक्ष में अंधकार अपनी सत्ता आजमाता है। ग्रीष्म में सूर्य का तेज प्रबल अर्थात् गर्म होता है और शरद ऋतु में प्रकाश ठंडा रहता है। वर्षा काल में आकाश से वृष्टि होती है और शरद ऋतु में पवन मंदता से चलती है। इस सब का कहने का सारांश यह है कि काल की जो गति होती है वह अब भी है। वर्त्तमान काल तथा पूर्व काल में यदि कुछ अन्तर होसकता है तो थोड़ा बहुत स्थितमंतर है। पूर्व काल में सोने की वर्षा

होता था, अब नहीं होती, ऐसी स्थित न कभी होसकती है और न थी। प्रत्येक काल में कर्त्तव्य शाली पुरुष अवश्य थे। जिस देश में, जिस धर्म में, और जिस समाज में कर्त्तव्यवान पुरुषों का जन्म होता है, वह देश, वह धर्म, और वह समाज इस पृथवी पर स्वर्ग तुल्य संचार करता है। अरे भारतवर्ष! अरे जैन समाज! तू कर्त्तव्य परायण पुरुषों का जन्म किसी एकही काल में नहीं वरन् सदैव देता रह? प्राचीन काल की संपादित उन्नति को पुनः इस भूमंडल पर विस्तारित करदे? ओ अविनाशी काल! सैकड़ो नहीं तो नहीं किन्तु थोड़ी संख्या में ही कर्तव्य शाली नर रत्नों को हमारे समाज में उत्पन्न कर और उनके द्वारा जैन धर्म का प्रकाश भूमंडल पर डाल!

प्रिय वाचक, भूमंडल पर जैन धर्म का प्रकाश डालने वाले एक महात्मा के अमूल्य चरित्र का आज मैं आप को परिचय कराता हूं। वीरचन्द भाई का जीवन सुशिक्षित और जैनधर्मोन्नति के इच्छुक युवकों के लिये अनुकरणीय है। जैन धर्म पृथवी पर बसने वाले समस्त प्राणियों का धर्म है। जिन धर्म अपनी आत्मा का जो धर्म वह जिन धर्म है। जिन प्रणीत धर्म का पाश्चात्य देशमें प्रसार करने के लिये सुशिक्षित और उत्साही वीरचन्द ने कैसा उद्योग किया। वीरचन्द के चरित्र मे इसके लिये शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। जैन धर्म के ऊपर अन्य समाजों में दिये हुए भाषण, और कार्य करने की अपूर्व शक्ति आदि से आपकी कर्त्तव्य दक्षता सिद्ध होती। इसी लिये आपका चरित्र इतना बोध प्रद है। जो जन्म लेता है वह अवश्य मरेगा यह प्रकृति का अटल नियम है। कोई भी अमर होने का

Virchand R. Gandhi.

पट्टा नहीं लिखा लाया। किसी न किसी दिन काल के गाल
में जाना ही पडेगा। परन्तु जिसने कर्त्तव्य निष्ट होकर संसार
की कठिनाइयों की परवाह न करके बडे बडे कठिन अवसरों
को पार कर के मृत्यु पाई वह महापुरुष मरकर भी अमरहैं।
उनका प्रशंसनीय चरित्र लोगों के हृदयों पर अंकित रहता हैं।

जिनको वास्तविक अपना मानव जीवन कृतार्थ करने के
लिये निर्वाह करना है उनको यह भली प्रकार से समझ लेना
चाहिये कि इस स्थूल शरीर को त्यागने सेही महान् पुरुषों की
मृत्यु नहीं होती, उनका अक्षर देह कीर्ति रूप में अमर रहता
है। जो इस क्षण भंगुर संसार यात्रा में अपने अमूल्य मानवो
जीवन का मूल्य बिलकुल नहीं जानते। क्या उनका जीवन
खूंटे अगाड़ी पिछाडी से बंधे हुए घोड़े के समान नहीं है?
मनुष्य में और पशु में अन्तर ही क्या है? दोनों का आहार विहार
समान हैं; दोनों आनन्द उडाते है। परन्तु जो मनुष्य अपना
जीवन परमार्थ में बिताकर कर्तव्य परायण रहता है, उसी का
मानवी जीवन सफल है। श्रीमंतों के पास कुबेर का खजाना
हो तो क्या? जिस धन में से भोग विलास के सिवा अन्य
किसी परमार्थ आदि में एक कौडी भी खर्च न हुआ हो तो उसके
पास धन होतो क्या और न होता क्या? सांप के फन में
रहने वाली मणि और हाथी के मस्तक में रहनेवाला मोती
भी धन है! हम को हमारे पूर्व पुण्य के उदय से धन मिला है
यह समझ कर जो श्रीमंत लोकोपकार के लिये अपना धन खर्च
करते हैं, वही धन प्रयोजनीय है; दूसरे धन से क्या लाभ।
ऐसे ही धनवान प्रशंसनीय है। कहने का सारांश यह है कि
मनुष्य जीवन के हेतु कर्तव्य तत्परता व्यक्त करवाना है।

कर्त्तव्य कर्म के भक्त महात्मा श्रीयुत वीरचन्द राघव जी गांधी का अल्प किन्तु महत्वपूर्ण चरित्र रूपी आदर्श निवेदन किया जाता है।

॥ जन्म ॥

जैन धर्मीय श्वेताम्बर सम्प्रदाय में काठियावाड़ प्रदेश के भावनगर शहर के निकट वर्ती ग्राम महुवा में आपका जन्म हुआ था। तारीख २५ अगस्त सन् १८६४ को वीरचन्द गांधी ने गरीब पर उत्तम कुल में जन्म लिया। आप के पिता का नाम राघव जी भाई था। राघव जी भाई जवाहरात का काम करते थे। इस व्यवसाय में बडे ही प्रवीण थे। साथही धर्म में भी आप की बड़ी रुचि थी। धर्मानुरक्त और धर्म कथा में आप एक दक्षपुरुष थे। जिसे आज कल शिक्षा कहते हैं उस प्रकार की उन्हों ने शिक्षा न पाई थी। पर वे अपने समय के अच्छे सुधारक थे। उस समय की निरुपयोगी, अप्रस्तुत और अज्ञान युक्त प्रचलित रिवाजों के सुधार में उन्हों ने समाज के लिये बड़ा परिश्रम किया था। मृत्यु के पीछे माथा कूटने का बुरा रिवाज गुजरात और काठियावाड़ में बाहुल्यता से और बड़े जोश से प्रचलित था। चरित नायक के पिता ने इसे बुरा समझ कर अपने ही घर से इस रिवाज को हटाकर अपूर्व धैर्य प्रदर्शित किया था। और समाज के सामने आदर्श स्थापन कर दिया था। सुधारक पिता के वीरचन्द जैसा सुधारक बेटा होना स्वभाविक ही है।

शिक्षा

बचपन में वीरचन्द गुजराती शाला में पढ़ने के लिये भेजे

गये। वहां की शिक्षा समाप्त करके वे भावनगर के अंग्रेज़ी स्कूल में अंग्रेज़ी पढ़ने के लिये गये। वीरचन्द अपने दरजे में बड़े दक्ष और बुद्धिमान विद्यार्थी थे। आप ने केवल १६ वर्ष की ही अवस्था में सन् १८८० ईस्वी में मेट्रिकुलेशन परीक्षा पास कर ली। पश्चात राघवजी भाई ने उच्च शिक्षा दिलाने के अभिप्राय से उन्हें बम्बई के एलफिस्टन कालेज में भरती करा दिया। वहां वीरचन्द मनलगाकर पड़ने लगे और प्रति वर्ष परीक्षा में पास होते चले गये। सन् १८८४ में बी० ए० परीक्षा में द्वितीय श्रेणी में बड़े मान से पास हुए। श्वेतांबर समाज में वीरचन्द ही पहिले पहिल बी० ए० हुए थे, इस लिए सारे समाज की ओर से आप को अभिनन्दन मिला। समाज हितैषी अगुवाओं को आप के बी० ए० होने पर बड़ा आनन्द मिला॥

आप का मन्त्रित्व

सन् १८८२ में श्वेतांबर जैनियों की ओर से * जैन

---

* इस भारत वर्षीय जैन समाज के उद्देश्य ये थे :-

(१) समस्त हिन्दुस्तान में भिन्न २ भागों में बसने वाले सर्व जैन भाईयों में मित्रभाव का प्रचार करना॥

(२) समस्त भारत में भिन्न २ भागों में बसने वाले जैन भाइयों की सामाजिक, नैतिक, और मानसिक उन्नति हो। ऐसा सहोद्योग स्थापित करना और जैन समाज में शिक्षा, नीति और सद्गुणों का प्रसार (वृद्धि) करना।

(३) जैन धर्म के ट्रस्ट फंड और धर्म खातों के ऊपर देख रेख रखना।

ऐसोसियेशन आफ इंडिया नामक संस्थाकी स्थापना हुई। इसकेसेक्रेटरीका पद सम्मानपूर्वक और गौरव सहित श्रीवीरचंद को सं० १९४१ में सौंपागया। जबसे सार्वजनिक कार्य करने की शक्ति तीक्ष्ण हुई और मि० वीरचन्द की कर्तृत्वशक्ति के कारण संस्था को यश प्राप्त हुआ (सं० १९४१ जैन मंडल में एक्यता होने का विवरण तथा सुधार और सं० १९४२ में हुकूम मुनि और तत्सम्बन्धी विचार,

+शत्रुञ्जय तीर्थ संबन्धी खुशकारक वृतांत तथा जैन भाइयों में होने योग्य सांसारिक धार्मिक और राजकीय सुधार आदि विषयों पर जो भाषण चरितनायक ने दिये हैं वे ऐसो सियेशन से प्रकाशित होनेवाले भाषण संग्रह में हैं।

---

(४) जानवरों की हत्या न होने देना ऐसा उपाय करना तथा जीव दया का पोषण करना और करवाना।

(५) भिन्न २ स्थानों तथा तीर्थों की यात्रा करने वाले यात्रियों को सुगमता पड़े, कोई अड़चन न हो, ऐसा उपाय करना साथही जैन भाई संसारिक धार्मिक और राजकीय सुधारों में अगुआ हो ऐसा उपाय करना।

+शत्रुञ्जय पर्वत के पास सूरजकुन्ड के नजदीक श्रीऋषभदेव भगवान की पादुका स्थापित थीं। ता० ७ जून १८८५ को मालूम हुवा कि कोई उसे खोद गया। ता० १९ जून को वह खोगई। वहां के ब्राह्मणों के गुरू दत्तात्रय थे। उन्हों ने यह फरयाद की (कि कोई कहता है कराई गई) कि श्रावकोंनेही पादुका खो दी हैं और गुम कीहै। इस पर श्रावकों के रखेहुये नौकरों को मारपीट के साथ पकड़ लिया। इस सम्बन्ध में

रा० बीरचन्द पृथक पृथक उपयोगी और समाज हित कारक कार्य संस्था से पास कराने की योजना करते गये और इस लिये इस संस्था का हिन्दुस्तान में प्रभाव बढ़तागया। पहला कार्य्य जैन समाज और पालीताणा के ठाकुर सूरजसिंह के बीच पैदा होने वाले बंधान के विषय में था।

यह सब को विदित है कि शत्रुञ्जय पर्वत अकबर बादशाह और नगर सेठ शान्तिदास के समय से ही श्वेताम्बर जैनों के अधिकारमें था उसी बादशाह तथा उसके पीछे गद्दीपर बैठने वाले जहांगीर शाहनशाह आदि बादशाहों के समय में ताम्र पट्ट पर खुदे हुये फरमान का उपयोग न होने के कारण उसकी हुकूमत

गवर्नर के पास दो बार तार दिये गये। ता० १८ जुलाई को पूना में गवर्नर लार्डरे ने जैन डेप्यूटेशन से मुलाकात की। पीछे सोनागढ़ के असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजन्ट कप्तान फोरडायस ने एक तर्फी (एक पक्षी) खोज की। पश्चात् सरकार की ओर से यह निश्चय हुआ कि पालीताणा दरबार ने जैन नौकरों के ऊपर जो अत्याचार किया है उसका निर्णय करने के लिये सोनागढ़ में खोज की है और पालीताणा कोर्ट में जैन नौकरों के सम्बन्धी केस को असिस्टेन्ट पो० ओ० नीकी कोर्ट में ले जाओ। इस पर पालीताणा दरबार महाबलेश्वर के गवर्नर पर अर्ज करने गया। और वीरचन्द और दूसरे जैन अगुआ भी गवर्नर के पास गये। इधर कार्तिक बदी ३ सं० १९४२ में ठाकुर सूरजसिंह की मृत्यु होगई। यों यह मामला बन्द होगया पश्चात गद्दी पर ठाकुर मानसिंह बैठे। इस के पश्चात् उन से शर्तनामा ही होगया। (अनुवादक)

पालीताणा राज्य कर्ता के पास चली गई । इस समय वहां जाने वाले श्वेताम्बर यात्रियों पर कर लगाने के सम्बन्ध में निश्चय हुआ । यह कर बड़ा त्रास दायक था । पर्वत की रक्षा के बहाने यह कर वसूल कियाजाता था पर्वत का संरक्षण करने को प्रत्येक यात्री पर दो रुपया कर वसूल किया जाने लगा इस से बड़ी गड़बड़ फैली । इसके लिये मि० वीरचन्द उपाय खोजने लगे ।

रक्षण करने का समाधान

इस समय काठियावाड़ के पोलिटीकल एजन्ट (जो वर्तमान समय में एजन्ट टू दी गवर्नर कहे जाते हैं) कर्नल वाटसन थे और बम्बई के गवर्नर प्रसिद्ध लार्ड रे थे । कर्नल वाटसन ने श्रावकों के प्रतिनिधियों को पालीताणा बुलावाया, इस समय प्रतिनिधियों की ओर से मि० वीरचन्द ने सारी हकीकत निवेदन की । महान प्रयास से ठाकुर साहब मानसिंह और जैन समुदाय की बीच यह शर्तनामा करार पाया कि (१) दो रुपये का कर उठा दियो जायगा, उसके बदले में जैनी लोग ठाकुरसाहेब को पंद्रह हजार रुपया देवेंगे । (२) यह शर्तनामा सन् १८८६ के अप्रैल मास से चालीस वर्ष तक रहेगा । (३) इन चालीस वर्ष के वाद रकम में फेर फार करने का दोनों को अधिकार है दोनों स्वतंत्र हैं । दोनों ओर की दलीलों को ध्यान में लाने के पश्चात् फेर फार को मंजूर अथवा ना मंजूर करने का अधिकार ब्रिटिश सरकार अपने हाथ में रखेगी । इस प्रकार वीरचन्द ने अपनी प्रभावशाली कर्तृत्व शक्ति से सब जैनियों को अंजित कर सर्वत्र आनन्द फैला दिया ।

लार्ड रे को मान पत्र

गवर्नर साहब काठियावाड़ गये थे। उस समय शत्रुञ्जय तीर्थ की भेंट करते समय उनको १५ वीं दिसम्बर १८८६ई० को तीर्थ स्थान पर मान पत्र समर्पित किया गया।

व्यवसाय

इसके पीछे कोई स्थायी व्यवसाय करने की ओर श्री वीरचन्द का ध्यान गया। सोलिसिटरी नामक उच्च परिक्षा पास करने की ओर उनका लक्ष्य गया। सोलिसिटरी का पेशा बड़ाही श्रम दायक होता है। साथही उसमें समयभी नहीं मिलता। दिन रात श्रम करते रहने और फुरसत न पाने के लिये यह पेशा ऐसा बुरा है कि वर्णन नहीं होसक्ता परन्तु इसके साथही यह बड़ी इज्जत और अधिक रु० पैदा करन का व्यवसाय है, जिसके कारण इसके उपरोक्त दो कष्ट नहीं खटकते। इस कथन से यह न समझ लेना चाहिये कि उच्च, नीतिवान और धर्मिष्ठ पुरुषों को इस व्यवसाय में ही नहीं पड़ना चाहिये क्योंकि बहुत से इस व्यवसाय को करते हुए भी सार्वजनिक सेवा करने को सब से अधिक समय लगाते हैं। सरकारी सोलिसिटर बनने की इच्छा से श्री वीरचन्द "लिटिल रौंड कम्पनी" में सन् १८८६ में आर्टिकिल्ड क्लार्क होगये। औ वहां वे सोलिसिटरी परीक्षा के लिये आवश्यक ज्ञान सम्पादन करने लगे। अहमदाबाद और बम्बई के जैनी अभी इन्हे भूले न थे। जैन समाज के लिये अभीतक जो जो उत्तम कार्य उन्हों ने किये थे वे सब वहां के जैनियों के हृदयों पर अंकित थे। अतएव

उन्होंने मि० वीरचन्द को इस समय द्रव्य से सहायता देकर बड़ा अच्छा किया था। इस व्यवसाय में फस जाने के कारण श्रीवीरचन्द ने जैन समाज के हित और आवश्यक कार्यों के प्रति दुर्लक्ष नहीं दिया। ऐसी समय जैन समाज को दुःख पहुंचाने वाली, हृदय द्रावक घटना घटी, उसके दूर करने के लिये जैनियों की उंगली कर्तव्य निष्ठ वीरचन्द गांधी कीही ओर उठी।

शिखर जी पर अत्याचार

यह घटना थी शिखर जी पर अत्याचार। सन १८९१ ई० में मि० बेडम नामो अंग्रेज ने जैनियों के पवित्र क्षेत्र सम्मेद शिखर पर। जिसे अंग्रेज पारसनाथ हिल कहते हैं, चरबी बनानेका कारखाना और पशु हत्यागृह खोलना चाहा था। इस सूचना से सारा जैन समाज प्रक्षुब्ध हो गया और अंगरेजी कारखाने के विरुद्ध कलकत्ता में नीचे की कोर्ट में फर्याद पेश की। वहां से जैनियों के विरुद्ध फैसला मिला इसपर उसकी अपील हाईकोर्ट में कीगई। इसी के लिए मि० गांधी की आवश्यकता पड़ी और वे कलकत्ते में आए। वहांपर रह कर उन्हों ने बंगाली भाषा को सीखा और फिर देशी भाषा में जो जो कागज मुकद्दमे के लिये उपयोगी थे उन सब का अंग्रेजी में अनुवाद करके सबूत के लिये हाई कोर्ट में पेश किये। इसी प्रकार कितने ही शिला लेख, ताम्र पत्र, और प्राचीन लेखों की सहायता से कोर्ट में शिखर जी पर्वत पर जैनियों का अधिकार प्रमाणित कर दिया। दीर्घ उद्योग तथा उत्साह के साथ हाईकोर्ट

में ऐसी सुन्दरता और स्पष्टता से पैरवी की गई कि नीचे की अदालत का फैसला रद् होकर जैनियों के पक्ष में फैसला मिला इस प्रकार पवित्र तीर्थ क्षेत्र की इस अत्याचार से रक्षा हुई। इस बार भी मि० गांधी के हाथ में लिएहुये कार्य की विजय हुई। यह मि० बीरचन्द की दूसरी विजय थी इस समय से वीरचन्द सब की दृष्टि में आदर से देखे जाने लगे। और सब ने इन के प्रति कृतज्ञता प्रगट की।

चिकागो विश्व धर्म्म परिषद्

इसी समय अमेरिका के चिकागो नामक शहर में पाश्चात्य विद्वानों ने संसार भर के सब धर्मों की महासभा बैठाने का उद्योग किया था। प्रत्येक धर्म के प्रतिनिधियों को आमंत्रण दिया गया था। हिन्दुस्तान से भी प्रत्येक धर्म के अलग अलग प्रतिनिधि गये थे। जैन धर्म का भी एक प्रतिनिधि भेजने के लिये श्वेताम्बर जैनाचार्य श्री विजयानन्दजी सूरि (आत्माराम जी) के पास नियन्त्रण आया था जैन शास्त्रों के अनुसार साधुओं को सामान्यता समुद्र यात्रा का निषेध है। अतएव आचार्य जी ने प्रतिनिधि भेजने का प्रश्न जैन ऐसोसियेशन पर डाल दिया। ऐसोसियेशन ने जब इस प्रश्न पर विचार किया तो प्रतिनिधि होने के लिये 'बीरचन्द' ही उपयुक्त समझे गये और वे ही प्रतिनिधि निर्वाचित किये गये। जैन धर्म के तत्वमय स्वरूप को समझना कठिन हैं फिर भी उनके लिये और भी कठिन था। अतएव मि० वीरचन्द जैन धर्म और जैन तत्व का ज्ञान संपादन करने के लिये श्री मद विजयानन्द सूरि (स्वामी आत्माराम जी) के पास गये और उन से पढ़ने लगे

पश्चात् जलयात्रा द्वारा वे अमेरिका को गये। जाते समय बम्बई बन्दरपर "यशस्वी हों" इस ध्वनि और आशीर्वाद की वृष्टि होने लगी। हिन्दुधर्म मंडल की ओर से स्वामी विवेकानन्द आदि भी इस विश्व धर्म परिषद में सम्मिलित थे। मि० गांधी जैसे तरुण पुरुष ने ऐसे महत्व के कार्य को उत्साह के साथ स्वीकार किया, इस से मि० गांधी की असामान्य विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता भलीप्रकार से सूचित होती है। कारण, यह परिषद् धर्म विषयक ही नहीं था। किन्तु उस गूढ़ समय में श्रेष्ठ और अच्छे धार्मिक तत्व जानने की इच्छा से बड़े २ विद्वान अधिक संख्या में एकत्रित हुए थे। इस जग विख्यात और अपूर्व प्रसंग पर जैन धर्म की प्रतिष्ठता प्रकाशित करने में एक जैन युवक का मनोबल किस प्रकार से काम करगया, यह जैनियों के वर्त्तमान इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी।

अमेरिका में किये हुये कार्य

सितम्बर सन् १८८३ से अमेरिका के चिकागो शहर में इस प्रचण्ड सार्व धर्म परिषद् का प्रारम्भ हुवा। और सत्तर दिनतक रही। इसमें पृथक पृथक देश के पृथक २ धर्म प्रतिनिधियों ने अपने अपने धर्म का स्वरूप प्रकाशित किया। मि० वीरचन्द ने जैन धर्म का स्वरूप नीति और तत्वज्ञान मय ऐसी उत्तमता से प्रकाशित किया कि सबका ध्यान आकृष्ट होगया हम अपनी ओर से कुछभी न कह कर नीचे एक प्रसिद्ध अमेरिकन समाचार पत्रकी सम्मति देते हैं।

"A number of distinguished Hindu schalars, philosophers, and Religous teachers attended and addressed the Parliament, some of them taking rank wich the highest

Virchand R. Gandhi.

of any race for learning eloquence and piety. But it is safe to say that no one of the pricental scholars was listened to with greater intrest than was the young lay man of the Jain community as he declared the Ethics and Philosophy of his peop'e."

इसका हिन्दी अनुवाद यह हुवा कि:—

"पारलिया मेंट (परिषद्) में प्रतिष्ठित हिन्दू विद्वान तत्व ज्ञानी धर्मोपदेशक उपस्थित थे और उन्होंने भाषण भी दिये थे। जिनमें से कितनेही अपनी जातिकी विद्वत्ता, वक्तृत्व कला और धर्म भक्ति के पण्डित थे। पर यह बात निर्भयता से कही जासक्ती है कि पौर्वात्य पंडितों में जैन समाज के युवक श्रावक ने अपने वर्गकी नीति और तत्व ज्ञान के सम्बन्ध में जो भाषण दिये थे उनमें जो रस था और वे जिस प्रेम से श्रोताओं ने सुने थे वे किसी दूसरे के नहीं सुने उनकी समता कोई भी भाषण नहीं करसक्के"

इसके प्रथम विदेशों में जैन धर्म का प्रचार करने के लिये कोई नहीं गया था विदेशियों को जैन धर्म का परिचय कराने के लिये सब से प्रथम सम्मान इसी श्रावक को प्राप्त हुवा।

बम्बई का व्याख्यान

सन् १८९५ के जून में ये बम्बई आए। बम्बई आने के पश्चात मि० गांधी ने जैनतत्व ज्ञान का अभ्यास विशेषरूप से आरम्भ किया। संसार के दूसरे धर्मों का निरीक्षण करके उनकी तुलना जैन धर्म से की। पश्चात् जैन धर्म के तत्वज्ञान की शिक्षा देने के लिये बम्बई में मि० गांधी ने "हेमचन्द्राचार्य अभ्यासवर्ग स्थापित किया। इस संस्था में कर्म सिद्धांत (Doctrine of Karmas) पुनर्जन्म, जड़ और चैतन्य सामान्य

तत्व आदि विषयों पर मि० गांधी के उपयुक्त व्याख्यान हुये तब से मि० गांधी की विद्वता का परिचय जैनेतर विद्वान मण्डल में भी होगया और लोग जानने लगे कि जैन धर्म अज्ञात परन्तु उत्कृष्ट धर्म है। बम्बईकी बुद्धिवर्धकसभा, आर्यसमाज थियोसाफिकल सोसाइटी आदि संस्थाओं में भी मि० गांधी ने जैन धर्म पर व्याख्यान दिये ॥

अमेरिका से फिर आमन्त्रण

इधर इस प्रकार स्वदेश में देशबंधुओं को जैन धर्म का परिचय कराने का पवित्र कार्य चल रहाथा। उधर मि० गांधी को अमेरिकावालों की ओर से एक पर एक आमंत्रण आरहे थे कि वे अमेरिका जाकर वहां के निवासियों को जैन धर्म का विशेष परिचय करावें। स्वधर्म के परिचय कराने की तीव्र इच्छा रखते हुए, जैनों के तत्वज्ञान के प्रति रुचिको तृप्त करने का आमंत्रण कौनसा धर्माभिमानी पुरुष अस्वीकार करेगा? तुरन्त ही मि० वीरचन्द सन् १८९६ में पुनः दूसरीबार अमेरिका को गये। इस वार जाते समय २० अगस्त को मांगरोल जैन सांगीत मंडली की ओर से मान पत्र दिया गया था [इसका मूल (अंग्रेजी) और अनुवाद अन्यत्र प्रकाशित है]

इस समय अमेरिका में कुछ महीने रहकर और कुछ महीने इंगलेंड में रहकर अपने व्याख्यान दिये थे। साथही साथ बैरिस्टरी का अध्ययन भी करने लगे इस प्रकार धर्म प्रचार का उद्योग चल रहा था कि इनको फिर जैन बंधुओं ने हिन्दुस्तान बुलालिया। बुलाने का यह कारण था कि जैन समाज के हित के लिये (सेक्रेटरी आफ स्टेट भारत मन्त्री) के यहां एक अपील करनी थी। मि० गांधी की योजना सब को पसन्द आई।

इस लिये यह १२ वीं अगस्त सन् १८९८ को भारत वापस आगये। यहांपर तीन सप्ताह रहकर अपील के सम्बन्ध का पूरा परिचय प्राप्त करके २४ वी सितम्बर १८९८ को अपने पुत्र सहित फिर विलायत चले गये। आपने वहां सेक्रेटरी आफस्टेट के यहां ऐसी योग्यता से अपील की कि कार्य सिद्ध हो गया इस प्रकार इस कार्यमें भी यशस्वी होकर यह भारत लौट आए।

तीसरी बार जब यह अमेरिका गये थे तब मांगरोल जैन सांगीत मंडली के उद्योग से स्वर्गीय न्यायमूर्ती महादेव गोविन्द रानाडे की अध्यक्षता में एक सार्वजनिक महासभा हुई। और मि० गांधी को मान पत्र दिया गया। इसकी अंग्रेजी नकल हिन्दी अनुवाद सहित आगे छपी है।

हमारे चरित नायक ने जैन धर्म सम्बन्धी तत्व ज्ञान विषयक जो भाषण सार्वधर्म परिषद में दियाथा उस का उस परिषद् के उत्पादक और एकत्रित विद्वन्मण्डल पर ऐसा उत्कृष्ट प्रभाव पड़ा कि उन्होंने चरित नायक को एक रौप्य पदक प्रदान कर सम्मानित किया। इस सभा के भाषण को सब लोग जान जांय तथा जैन धर्म के तत्वों की उत्तमता को सबलोग समझ जायें इसलिये इन्होंने अमेरिका के प्रसिद्ध २ शहर बोस्टन न्यूयार्क, वाशिंगटन आदि शहरों में जैन धर्म पर व्याख्यान दिये। जैन धर्म का रहस्य, उसकी व्यापकता, और सुन्दरता श्रोताओं को समझाई। कासाडोग नामक शहर के सब निवासी इनके जैन धर्म सम्बन्धी भाषण से ऐसे संतुष्ट हुये कि उन्होंने मि॰ गांधी को एक स्वर्ण पदक समर्पण किया। ये भाषण जैन धर्म क्या है? (what is Jainism) जैनियों का तत्व ज्ञान और मानस शास्त्र

Philosophy and Byebology of the Jains जैनियों का स्वार्थ त्यागका गूढ़ धर्म (The Oocult law of sacrifice) जीवन के सत्य सिद्धांत (The true laws of life) और जैनियों का विश्वसे सम्बन्ध (Jains Relation to the Univrse) थे इनके सिवाय और भी अनेक भाषण अमेरिका में दिये थें। इस के पश्चात अमेरिकन लोगों को जैन तत्त्व ज्ञान का परिचय होता रहे. इस उद्देश्य से आपने वहां "गांधी - फिलासफिकल सोसायटी नामक संस्था भी स्थापित करदी। इस प्रकार उद्दिष्ट कार्य में यश प्राप्त करके मि० गांधी ने इंगलेंड में प्रवेश किया

इंगलेंड के कार्य

लन्दन आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध नगरों के विद्वानों की मंडलियों में जैन धर्म के मूलभूत तत्त्वोंपर मि० गांधीने कितने ही भाषण दिये। इस समय बम्बई के भूत पूर्व गवर्नर लार्ड रे भी इङ्गलेंड में ही थे। मि० गांधी का पहिले से ही उनसे परिचय था। अतएव इन्हें अपने कार्यों में उक्त लार्ड साहब से भी बड़ी सहायता मिली। इङ्गलेण्ड में गांधी के कार्यों का यह परिणाम हुआ कि बहुत से जिज्ञासुओं ने जैन धर्म सीखने की प्रबल

नोट-इनके अंगरेजी व्याख्यानों की पुस्तकें मेघ जी हीर जी बुकसेलर पायधुनी, बम्बई; शेठ देवचन्द लाल भाई पुस्तकोद्धार फंड झवेरी बाजार, बम्बई अथवा जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग बम्बई से मिल सकती हैं। उन्हें पढ़कर लाभ उठाना चाहिये। पुस्तकों के नाम और कीमत इस प्रकार है :—

Jain Philosophy Rs. 1/8/-. Yog Philosophy as five और Kavma Philosophy -/5/ -

इच्छा प्रगट की। उनमें से एक का नाम मि० वारन था। पर-धर्मी ईसाई धर्मानुयायी जैन धर्म की शिक्षा लेने के लिये तैयार होगये, यह क्या मि० गांधी की कर्तृत्व शक्ति के लिये कम धन्यवाद की बात थी। आपने ऐसी शिक्षा देने की व्यवस्था की और एक शिक्षण वर्ग स्थापित कर दिया। इसका विजयी परिणाम निकलने के पहले ही शरीर की प्रकृति अनुकूल न रहने के कारण स्वदेश को लौटना पड़ा बम्बई आते ही बड़े सम्मान से आप को लोगों ने लिया।

स्वर्ग वास

स्वदेश के जैन समाजोन्नति के विचारों ने मि० गांधी के हृदय में स्थान करलिया था और इस क्षेत्र में उन्होंने कार्य भी प्रारंभ कर दिया था परन्तु यदि मनुष्य की इच्छा सेही इस संसार में सब सूत्र चलते तो काल का महत्व ही कोई क्यों मानता और क्यों बड़े बड़े सार्व भौम, विद्वान और कवियों के लिये "कालाय तस्मै नमः" कहने का अवसर आता। काल के समीप सबकी गति कुंठित है; संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो काल के वश में न हो फिर मि० गांधी की हकीकत ही क्या थी? अपने आरम्भ किये हुये व्यवसाय को छोड़कर एक दम स्वर्ग वास करना पड़ेगा, यह मि० गांधी को स्वप्न में भी ध्यान न था। विलायत से आए सप्ताहही हुए थे कि ७ अगस्त सन् १६०१ को मि० गांधी सब को शोक सागर में डुबा स्वर्ग को सिधार गये। कितनो ही का कथन है कि स्वदेश में मि० गांधी मरने के लिये ही आये थे। ठीक। जैन समाज का एक कर्तव्य शाली हीरा यों नष्ट हो गया। भारतीय जैन समाज के भूषण श्रीमान् वीरचन्द्र की आत्मा को सद्गति मिले

उपसंहार

मि० गांधी में विशाल बुद्धिमत्ता होते भी वे बडे मिलनसार थे, उनका स्वभाव बड़ा नम्रथा। उनकी वक्तृत्व शक्ति न्याय युक्तऔर बलवान थी। दिन रात काम करते रहने की उनकी पद्धति थी। अवकाश में भी वे विश्रांति नहीं लेते थे। अविश्रांति परिश्रम से कार्य करते रहने के कारण उनका स्वास्थ ठीक न रहता था और इस लिए उनकी अकालमृत्यु होगई, यदि यह कहा जाय तो अयुक्त न होगा। अपने धर्म की उन्नति के लिय ससार में मि० गांधी अल्प आयुही में चले गये परन्तु अन्य मनुष्यों के सम्मुख ज्वलंत दृष्टांत रख गये कि यह तुच्छ जीवन किस प्रकार अत्यन्त पूर्ण बनाया जा सकता है। पूर्वसमय में तीर्थंकर अथवा दूसरे मुनि भारत खंड के बाहर धर्मोपदेश किया करते थे परन्तु कितनी ही शताब्दियोंसे आर्यावर्त्त में ही जैनधर्म का नामावशेष रूपरहगया है। वर्तमान में उसको बाहर उज्ज्वल रूप में प्रकाशित करने का श्रेय मि० गांधी ने ही सम्पादन किया। मि० गांधी ने जो जो कार्य हाथ में लिये उन सब में उन्हें यश प्राप्त हुआ। श्रीयुत स्वर्गस्थ मि० वीरचन्द भाई की मृत्यु से जैन समाज की बड़ी हानि हुई ऐसा वीर पुरुष आज न तो दिगम्बर अथवा श्वेताम्बरों में कोई है और न भविष्य में होने की आशा है।

(२)

श्रीमान् गांधी जी जब दूसरी बार सकुटुम्ब अमेरिका को गये, तब मांगरोल सांगीत मंडली की ओर से अंगरेजी और गुजराती भाषा में कर्मवीर स्वर्गीय सेठ प्रेमचन्द रायचन्द के सभापतित्व में जो मान पत्र उन को दिया गया था। उसकी नकल पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे देते हैं।

To

VIR CHAND RAGHAVJI GANDHI, ESQR., B.A.,
Member of the Royal Asiatic Society,
Secretary to the Jain Association of India,
President of the Hemchandra Charya,
Study Class, &c , &c.,
Bombay.

DEAR SIR,

We, the Members of the Mangrol Jain Sangit Mandli, are assembled here to day to give expression in public to the high esteem and ardent admiration with which we all regard you for the incalculable benifits you have conferred upon our assembly by useful services and timely suggestions, as well as on the whole community, on religious matters, and many important and intricate questions connected with the affairs of our sacred Places.

We avail ourselves of this occasion, especially because only to-morrow you will be on your way to that land where you went in 1893, as an accredited *Delegate* of the Jain Community, to represent the views on the Ethics and Philosophy of our Religion in the Parliament of Religions at Chicago. It was a matter of joy and satisfaction for us all that out of a few Indian Delegates of light and learning, who could compete with and hold their own against the foremost thinkers of Europe and America, you were the only person who was heard with rapt attention and accorded due praise.

Your real work may be said to have commenced with the termination of the sittings of that grand Assembly, for it was then that invitations from persons of diverse sview and various positions, coupled with the earnest solicitations of Associations, Unions, and Clubs, began to pour in, which induced you to prolong

your stay there. This brief sojourn you turned to the best account, by delivering many public lectures on the idea and aim of Jain Philosophy-nay-when on certain occasions the duty of representing the whole India devolved upon you, you discoursed on Indian Philosophy in general, and succeeded to a great extent in dispelling doubts and misconceptions about the History, Morality, and Religion of the Hindus, and thus lifted up the veil which screened real things from their gaze. Here, also, after your arrival you did not fail to embrace every opportunity to enlighten us on the manners, customs and the educational systems of America, and your unremitted exertions have resulted in creating a zealous study of our Religion and Philosophy and the formation of the Hemchandra charya study class.

Rejoicing as we do at your second visit, we cannot but feel profound sorrow at the idea of seperation from a person of your knowledge, ability, and simplicity, we however console ourselves with the fact that what is loss to us is a substential gain to our American Bretheren.

Those of our Bretheren on the other side of the Mississipi who being far removed from the centres of activity, could not share the pleasures of your company and adresses, will have now ample time to satisfy themselves. It will also be a boon and blessing to the enthusiastic students of occult Philosophy, who paid you a well merited men of honour by founding a society of Philosophic Investigations in your name. We feel pride and pleasure to know that you will be accompanied by your devoted wife, who will be a source of great help and comfort to you, and will afford our American sisters, a good opportunity to form a correct idea of the nature, virtues and responsibilities of an Aryan Lady.

In conclusion, Sir, we heartily wish you a lion voyage and pray that blessings may be strewn accross your path, and that your efforts in propounding and propagating the high principles of our noble religion may

be crowned with success, and hope that the revival of the glorious Past of the noble land of the East, which was hailed with favour in a dim and prophetic vision, by that illustrious French writer Victor Hiugo is destined to take place in the sail of America which have been already brought into contact by material civilization, will through our spritual thoughts be united in more enduring and permanent bonds of Fraternity.

As for ourselves, we shall be longingly looking forward for that day, when after mastering the great problem of the free education of the masses, you will return here and work for its introduction, for it is upon the solution of this problem alone that the future happiness of our country depends.

We beg to remain,
Dear Sir,
Your Friends and well wishers,
Prem Chand Roy Chand,
President of the meeting,
Moti Chand Debi Chand,
President,
for members of the Mangrol
Jain Sangit Mandli.

Bomboay,
20th August 1896.
Amer Chand
Tilok Chand
Honourary Secretary.

ऊपर के मानपत्र का हिन्दी अनुवाद

मि० वीरचन्द राघवजी गांधी बी० ए०
मेम्बर आफदी रायल एशाटिक सोसाइटी,
सेक्रेटरी जैन एसोसिएशन आफ् इण्डिया आदि बम्बई

प्रियबन्धु,

श्रीमांगरोल जैन सांगीत मंडली के हम सब सभासद आज आपकी उपयुक्त सेवा, प्रासंगिक सूचनाओं तथा समस्त

समाज धर्म संबन्धी विषयों में, पवित्र तीर्थों से सम्बन्ध रखने वाले कठिन और महत्व के प्रश्नों के विषय में जो आपने असंख्य लाभ पहुंचाये हैं, उसके लिये हम प्रत्यक्ष रूप से आपका आभार मानते हैं। आपके प्रति उच्चमान तथा प्रेम प्रदर्शित करने के लिये हम सब यहां एकत्रित हुये हैं।

इस प्रसंग को जल्दी लाने का मुख्य कारण यह है कि कलही आप उसदेश (अमेरिका) को प्रस्थान करजाओगे जहां आप सन् १८६३ ई० में चिकागो की धर्म परिषद् में हमारे धर्म के तत्वों और रहस्य को प्रदर्शित करने के लिये जैनों के प्रतिनिधि बनकर गयेथे। यूरुप और अमेरिका के श्रेष्ठ तत्व ज्ञानियों और अच्छे विद्वानों की समता करने हिन्दुस्तान के अच्छे विद्वान गये थे। पर हमें यह जान कर बड़ा हर्ष और संतोष हुआ कि आपके व्याख्यान बड़े ध्यान से सुने गये और आप के व्याख्यानों की प्रशंसा कीगई॥

उस महा समाज की बैठक पूरी होतेही आपके वास्तविक कार्यों का आरम्भ हुवा क्योंकि तभी से भिन्न भिन्न विचार वाले और भिन्न भिन्न स्थिति के मनुष्यों ने आपको आमन्त्रणों से और अनेक मडलियों, सभाओं और क्लबों की प्रार्थनाओं से प्रेरित होने पर आपको वहां कुछ समय के लिये ठहरना पड़ा। विविध विषयों पर व्याख्यान और भाषण देकरही आपने इस समय का सदुपयोग किया। यही नहीं, किन्तु भारतवर्ष के प्रतिनिधि होने के कर्तव्य को भी निबाहा। क्यों कि सारे भारतवर्ष के प्रतिनिधि के कर्तव्य का भार आप के सिर पर था। अतएव आपने भारतीय तत्वज्ञान के विषय में भी अपने विचार प्रगट किये थे। वहां के निवासियों के दिमाग में

भारतीय इतिहास, नीति और धर्म के प्रति जो जो भूलें घर कर रही थीं उन्हें दूर करने में आपने बड़ी सफलता प्राप्तकी और उन्हें उनके विषय में सत्य बातें बतलाकर उनका भ्रम दूर किया। यहां आने पर आपने अमेरिका के उपयोगी रीति रिवाज और विद्या प्रचार के बहु मूल्य संदेश हमें सुनाये। धर्म की ओर रुचि उत्पन्न करनेका आपका यह बड़ा प्रयत्न भी सफल हुवा और हेमचन्द्राचार्य अभ्यास वर्गकी स्थापना हुई

आपकी दूसरी मुसाफिरी के समय हम खुशी मना रहे हैं पर साथही आप जैसे ज्ञानवान, शक्तिवान, और नम्र गृहस्थ के वियोग का हमें बड़ा दुख है। पर आप के वियोग से हमारी जो भारी हानि होगी उसके बदले हमारे अमेरिकन भाई और बहिनों को अमूल्य लाभ होगा यही विचार कर हमें खुशी होती है।

मिसिसिपि नदी की दूसरी ओर बसने वाले अमेरिकन भाइयों ने आपके व्याख्यानों से लाभ प्राप्त कर नहीं पाया था इसलिये अब वह अपनी इच्छा को पूर्ण करसकेंगे। तत्व ज्ञान के जिज्ञासु विद्वानों के लिये भी जिन्होंने आपके गुणों और ज्ञान पर मुग्ध होकर आपके नाम से तत्व शोधक मंडल स्थापित किया है आपकी यह यात्रा बड़े हर्ष और आशीर्वाद का कारण होगी। हमें यह जानकर और भी हर्ष हुवा कि इस यात्रा में आप के साथ आपकी सह धर्मिणी भी रहेंगी, जिनसे आपको पूरी सहायता और आराम मिलेगा; साथही वे अमेरिकन बहिनों को आर्य महिलाओं के कर्तव्य, गुण और स्वभाव का ज्ञान करावेंगी।

अन्त में हम अन्तः करण से इच्छा करते हैं कि आप की

यात्रा आनन्द से समाप्त हो । जहां जहां आप जायें वहां वहां आशीर्वचनों की वृष्टि हो, हमारे धर्म के महान सिद्धान्तों के समझाने में और प्रसार करने में आपको सफलता हो, यही हम प्रार्थना करते हैं । पूर्वीय देशकी दिव्य भूमि की भूत पूर्व उज्वल स्थितिके पुनरुद्धार यशस्वी फ्रेंच लेखक मि० ह्युगोये को आशा थी । कि वह पुनरुद्धार अमेरिका में जाकर हुआ । भारत और अमेरिका का भौतिक सुधारों से जो थोड़ासा परस्पर संबन्ध हुवा है उसके द्वारा हमारे अध्यात्म ज्ञान के और प्रसार की तथा स्थायी भ्रातृभाव की आशा है ।

हम उस दिनकी प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकतासे कर रहे हैं जिस दिन आप जन समाज की अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा के महान सिद्धांत में निपुणता प्राप्त करके यहां वापिस लौटेंगे और उसके प्रचार के लिये आप कार्य करेंगे । इसी प्रश्न पर हमारे देश का भविष्य सुख निर्भर है ।

भवदीय

बम्बई	प्रेमचन्द रायचन्द
ता० २० अगस्त १८९६	मीटिंग के प्रेसीडेंट
अमरचन्द तिलकचन्द	मोतीचन्द देवचन्द प्रेसीडेंट
आनरेरी सेक्रेटरी	श्रीमांगरोल जैनसांगीतमंडली

To

Vir Chand Raghavji Gandhi Esqr. B.A.M.R.A.S.,

Dear Brother,

We, your friends and admirers, have assembled here to day to give expressions to our sentiments of deep gratitude andh igh admiration, which we so sincerely

cherish for you, in due appreciation of the invaluable and innumerable services which you have so creditably rendered to the members of your community and to the people of India in general, by fostering brotherly feelings in the hearts of the kind and courteous Americans, for the people of our renowned India.

We feel much satisfaction and pride repeat that we find in you, only a representative of the Jain Religion at the Parliament of Religions, held at Chicago, but at the same time we find in you a most energetic and competent advocate of the cause of Indian Philosophy. Disregarding the unavoidable inconveniences. which present themselves to an Orthodox Hindu traveller scrupulously following the prescriptions of religion, while prosecuting noble work, which you have so cheerfully undertaken, you visited different parts of America and preached in lofty tones from public and private pulpits the religion and Philosophical tenets of Hinduism; and we are extremely glad to endorse the opinion of the American public and press, that you have succeeded all with all the moral triumph of a conscientious preacher, in awakening American interest and sympathies for the religion and philosophy of India which has been gloriously hailed by the foreigners from times immemorial, as the mother of Religions and the Cradle of Civilization. This, in itself is a sign, prophesying good for the orient and the Occident.

But your mission did not end here, you next concentrated all your energies in a pitched battle against the grant of darkness assuming various forms and specially against lock of education among the women of this country, which is one of the saddest and most deplorable condition of Indian society, we are much pleased to hear, has sent three of our Hindu sisters to America, with the offer to maintain and educate them, for three years at the expense of the society, so that they may be enabled to practically study how to become proper

help-mates to their husbands and pioneers in the work of reforming our society. We respectully solicit your favour to convey to our best sympathies and choisest blessings in their noblo mission of patronizing female education in India.

Equally precions are your services, during the recent famine in India, when you got enlisted with your characteristic promptness, the sympathy of the kind herated Americans for the poorer masses, who were starving to death for want of sufficient food and sent a ship to India, laden with American maize for free distribution amoug the famine stricken people. These services and these touches of your philanthrophic disposition, we assuse you, our dear brother, have rightly earned for you our lasting admiration and gratitde.

The cause of Vegetarianism is equally commanding our admiration your numerous addresses so vividly portraying the excruciating pains and heart-rendering agonies of the poor animals, writhing under the knives of the heartless butchers, have reclaimed many flesh eaters to the pure hindu vegetarian diet and have taught them to respect the feelings even of the lower creation an object lesson of spritual life which India has still to preach and to teach most of the civilized nations of the world.

Your strong protest against the misrepresentations by the American missionaries of the Indian life and morals, your valuable advice, for the introduction of the American system of practical education in Indian schools, your genuine desire to see our Indian students in England paying particular attention to English Arts and manufacteres with the object of improving and promoting Indian Industries, your contributions to the Indian press for drawing the attention of our educated youths to commercial fields that are open for them in Enland and America, these are some of the meltifarious subjects that have held us in unspeakable wonder,

and speak volumes for your sound Judgment and comprehensive abilities.

This large and influential gathering rejoices to see that you are the first Hindu among the whole Hindu community of India, to take your wife to America and to give practical illustration of the life of an Indian Hindu woman to our sisters of the Western Hemispere A short stay of nearly two years of your son Master Mohan in America, and his training in an American educational institution, give us every hope that he will be a second Gandhi after you to pickup, with the greatest zeal and interest, the work which you have commenced so successfully of implanting "India in America."

In conclusion, we wish you a hearty *bon Voyage* to England and America and a happy return to our dear country after fulfilling your noble mission of preaching Oriental Philosophy.

On behalf of the Friends and admirers assembled in a public meeting held at Novelty Theatre.

Bombay, President,

Dated 23rd Sept, 1889. M. G. RANADE.

मि० वीरचन्द राघव जी गांधी
बी० ए०, एम० आर० ए० एस०

प्रिय बंधु,

जग प्रसिद्ध आर्य भूमि के लोगों के प्रति दयालु और विनयवान अमेरिकन लोगों के हृदयों में भ्रातृभाव का जन्म दे कर आपने अपनी जाति भाइयोंही की नहीं बल्कि सारे भारतवर्ष की जो अमूल्य सेवा की है उसके आभार मानने के लिए तथा प्रेम दर्शाने के लिये हम सब यहां पर एकत्रित हुये हैं।

चिकागो की धर्म परिषद् में जैन प्रतिनिधि की भांतिही नहीं, परन्तु भारतीय अध्यात्म विद्या के पक्के पोषक की भांति आपने कार्य किया, हमें यह कहते हुये संतोष तथा अभिमान होता है। हिन्दू धर्म की रीति रिवाजों के अनुसार समुद्र यात्रा का निषेध है। उसपर भी कठिनाइयोंकी परवा न करके आपने अमेरिका की यात्रा की। वहां जाकर अमेरिका के भिन्न २ भागों में प्रवास किया और अमेरिकन लोगों को आर्य धर्म तथा तत्वज्ञान के बहुमूल्य उपदेशों का बोध कराया। अमेरिकन लोगों ने आपके मत का अनुमोदन किया यह जानकर हम बड़े आनन्दित हैं। अमेरिकन लोगों का हिंदू धर्म तथा तत्व ज्ञान के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करने में आपने अच्छी सफलता प्राप्त की है॥

उसके पश्चात् भारतवर्ष की स्त्रियों की अज्ञानावस्था की ओर अमेरिकन बहनों का ध्यान आकर्षित किया और भारतीय स्त्रियों की विद्या वृद्धि के लिये आपने अमेरिकन स्त्रियों की एक मंडली स्थापित की। उस मंडली की ओर से तीन भारतीय विदुषियों को वहां रहने और शिक्षा लाभ करने के लिये आमंत्रण मिला। तीन साल तक उस मंडल के व्यय सेही वे विदुषियें वहां रहीं और शिक्षा प्राप्त की। उस दयालु आमंत्रण के लिये भारतीय स्त्रियें अमेरिकन बहनों का बड़ा आभार मानती हैं, यह आप उन्हें सूचित करदें।

आप के काम यहांही समाप्त नहीं होते। इसके पश्चात् जब भारत में दुष्काल पड़ा तब आप ने इस ओर भी अमेरिकन लोगों का ध्यान आकर्षित किया और अन्न का एक स्टीमर भिजवाया। आप की यह सेवायें और यह देश प्रेम प्रशंसनीय

है। इसी कारण, प्यारे बंधु, हमारे हृदयों में आपके प्रति मान और आभार ने स्थायी स्थान प्राप्त कर लिया है।

मांसाहारियों को आपने वनस्पति भोजन के लाभ बता कर हिन्दुभोजन की ओर प्रवृत्ति की, उसके लिये भी हम आप का आभार मानते हैं। साथही बड़ी उत्तमता से आपने "अहिंसा परमोधर्मः" के महान तत्व का प्रचार किया। भारत की रीति और नीति के विषय में अमेरिकन मिसिनरियों द्वारा फैलाई हुई घृणित किम्बदन्तियों का आपने खंडन किया, भारत में अमेरिका की शिक्षा पद्धति की योजना का यत्न किया, इंगलेंड को पढ़ने जाने वाले हिन्दुभ्राताओं को आपने सिखाया कि वे अपने देश में अंगरेजी आविष्कारों का हुनरोंका प्रचार कर के भारतीय उद्योग धंधों की उन्नति करनें का यत्न करें, पत्रों में आपने लेखों द्वारा आन्दोलन करके हमारे युवाओं और विद्वानों का ध्यान इंगलेंड और अमेरिका के उद्योग धंधे सीख कर और इस देश में प्रचार करने के लिये उनका ध्यान आकर्षित किया। इस प्रकार भारत को जो बहुमूल्य सेवा आपने की है, उसके लिये हम अपने शुद्ध अन्तःकरण से आभार मानते हैं

यह एकत्रित समूह इस बात को सोच कर बड़ा आनन्दित होता है कि आपही भारतीय हिन्दु समाज के प्रथम हिन्दू हैं जिसने अपनी स्त्रीसहित यात्रा की और पश्चिमीय संसार को भारतीय हिन्दु स्त्री के जीवन का उदाहरण बताया आप के पुत्र मास्टर मोहन जो दो वर्ष अमेरिका ठहरे और वहां के विद्यालय में शिक्षा पाई, हमें आशा दिलाते हैं कि आपके पश्चात दूसरे गांधी चुनने का वे अवसर देंगे। आपके शुभ कार्य बड़ी

खुशी तथा सफलता से पूर्ण होंगे क्योंकि आप हिन्दु धर्म के कुशल प्रतिनिधि हैं।

अन्त में हम चाहते हैं कि आप की यात्रा सफल हो और और आप के कार्यों में विजयहो। अमेरिका में आर्य धर्म का पुष्ट वृत्त बोकर आनंद सहित भारत को वापिस लौटो।

भवदीय मित्र और कार्यों के अनुमोदकः—

बम्बई } सभापति
ता० २३ सितम्बर१८८९ } महादेव गोविन्द रानाडे।

इसके पश्चात् सभापति आनरेबल मिस्टर रानाडे ने खड़े होकर कहना प्रारम्भ किया। उनके खड़े होने पर सभा में तालियां बजीं। आपने कहा कि मिस्टर गांधी ने हिन्दुस्तानकी सेवा अमेरिका में की है, उसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं। अपने हिन्दूधर्म को इंगलैंड और अमेरिका में फैलाने के लिये मि० गांधी एक आदर्श (Model) हैं मि० गांधी ने जो परिश्रम किया है उसका फल वे अथवा हमको प्राप्त नहीं होगा। इस परिश्रम के उत्तम फल का लाभ हिन्दू धर्मको प्रसार होने पर आगे की संतान उठायेगी। मि० गांधी जैसे उत्साही युवा गृहस्थ जैन जाति में हैं इससे जैन जाति का गौरव और भी बढ़ गया है। मि० गांधी की और उनके अनुकरण करनेवाले दूसरे गृहस्थों की मैं विजय कामना करता हूं। उन्हों ने हमारे लिये जो परिश्रम किया है उसके लिये मैं उनका उपकार मानता हूं॥

नं० ३

स्वामी विवेकानन्द और वीरचन्दकी तुलना

महात्मा विवेकानन्द आर्य तत्व ज्ञान की वेदान्त फिलास्फी समझाने के लिये चिकागो की धर्म परिषद् में गये वे ४० वर्ष की अवस्था मेंही सन १९०२ में मृत्यु को प्राप्त हुये उस समय अमेरिका के प्रसिद्ध पत्र "बैनर आफ लाइट" ने तुलना करते हुये लिखा था।

जैन तत्व ज्ञानी वीरचन्द की लेखन शक्ति एवम् वक्तृत्व शक्ति में जो विचारों की नूतनता थी वह विवेकानन्द में न थी

स्वामी विवेकानन्द मांसाहारी थे पर वीरचन्द धार्मिक जैन की भांति जीवन व्यतीत करनेवाले निर्दोष वनस्पत्याहारीथे

भारत के दोनो उत्तम रत्नों के लिये नीचे लिखी बातें कही जासकती हैं।

(१) विविध धर्मों की चरचा करने के लिये सन १८९३ में भरने वाली चिकागो की धर्म परिषद में गये और प्रशंसा प्राप्त की।

(२) दोनों लोक प्रिय व्याख्यान कार थे। अमेरिका के श्रोताओं की ओर से उनके सम्बन्ध में स्तुति वचन सुनाई पड़ते हैं।

(३) जिन लोगों ने इनके भाषणों को सुना उन उन ने उनके सिद्धांतों को प्रीति पूर्वक स्वीकार किया और जिन्होंने उनके सिद्धांतों का यथार्थ निर्णय करने के लिये विचार किया उनके मन के ऊपर इनके विचारों की छाप अद्यापि पर्यन्तरहीहै

(४) दोनों ने थोड़ी उम्र पाई विवेकानन्द ४० वर्ष की आयु में और वीरचन्द ३७ बर्ष की आयु में स्वर्गस्थ हुये।

यदि अधिक समय तक जीते रहते तो हमारा भविष्य कुछ और सुधर जाता ॥

(५) दोनों ने पवित्र भारत भूमि मेंही आकर प्राण त्याग किये। विवेका नन्द ने सन् १९०२ में वेलूर मठमें और वीर चन्द ने सन् १९०१ में बम्बई में।

(६) स्वामी विवेकानन्द के प्रबल विचारों के लिये उनके शिष्य मंडल (अभेदानन्द आदि) ने राम कृष्ण सोसाइटी आदि अनेक संस्थायें स्थापित कीं। परन्तु शोक कि वीरचन्द के प्रबल विचारों के असर से कोई जैन संस्था स्थापित न रहसकी, यह बात नहीं है बल्कि वीरचन्द के स्मरणार्थ कोई संस्था स्थापित करने का प्रयत्नही नहीं किया गया ॥

श्रीमद्वीरचन्द प्रत्येक सज्जन के हृदय में अभीतक स्थित हैं उनका शरीर नष्ट होगया परन्तु वे नष्ट नहीं हुये हैं। उनका यश रूपी शरीर अमृत और अमर है। अंग्रेजी कहावत है To live in hearts we leave behind, is not death)अर्थात हृदय में रहना मृत्यु नहीं है। तीर्थादि कार्यों में विजय प्राप्त करने में, जैन धर्म के प्रसार करने में, जड़वादियों के हृदयों पर जैन संस्कारों की छाप डालने में श्रीवीरचन्द ने अपने मन वचन और शरीर से जो आत्म त्याग किया है, उसके लिये सारा जैन समाज उनका ऋणी है। इस ऋण से स्वर्गस्थ होने के हित के लिये नहीं बल्कि अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिये भी जैन समाज ने अपना कर्तव्य किस प्रकार पूरा किया। इसका विचार आतेही समाज की स्थिति और उसके अधः पतन का दृश्य नाचने लगता है।

We shall do so much in the years to come.
But what have we done today ?
We shall give our gold in a princely sum.
But what did we give today ?
We shall life the heart and dry the tear.
We shall plant a hope in the place of fear.
We shall speak with the words of love and cheer.
But what have we done today?

Nixon water man.

विशेष क्या लिखें । अपनाही अवगुण विशेष क्या प्रकाशित करें । श्रीमद्वीरचन्द्र के जीवन और कार्यों के बोध का स्मरण हमारी कृति में रहे यही बस है । अंग्रेजी कविने कहा है

Think truly and thy thoughts shall the world's famine feed;

Speak truly and each word of thine shall be a fruitful seed;

Live truly and thy life shall be.

A great and noble creed·

Bonar.

सद्विचार करो, वे संसार के विचारों के दुष्कालों को पूर पाडेंगे; सत्य वचन बोलो, जिससे तुम्हारे प्रत्येक शब्द रूपी बीज से कल्पद्रुम प्राप्त होंगे, शुद्ध जीवन व्यतीत करो तब तुम्हारा जीवन महान् उच्च धर्म संस्था बनेगी। जिसका अनुसरण अनेक मनुष्य करेंगे ।

नियमावली

श्री आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी अम्बाला शहर

१—इस का मेम्बर हरएक होसकता है।

२—इसका चन्दा कम से कम १) वार्षिक है। अधिक देने का हरएक को अधिकार है। जो महाशय एक साथ ५०) रु० इस ट्रैक्टसोसायटी को देंगे वह इस के लाइफ मेम्बर समझे जावेंगे। उनसे वार्षिक चन्दा कुछनहीं लिया जावेगा

३—इस सोसायटी का वर्ष १ जनवरी से प्रारंभ होता है। जो महाशय मेंबर होंगे वे चाहे किसी महीने में मेंबर हों किन्तु चन्दा उनसे ता० १ जनवरी से ३१ दिसम्बर तक का लिया जावेगा।

४—जो महाशय अपने खर्च से कोई ट्रैक्ट इस सोसायटी द्वारा प्रकाशित कराकर बिना मूल्य वितीर्ण करना चाहें, उनका नाम ट्रैक्ट पर छपवाया जायगा।

५—जो ट्रैक्ट यह सोसायटी छपवाया करेगी वे हरएक मेम्बर के पास बिना मूल्य भेजे जाया करेंगे॥

निवेदकः—

सेक्रेटरी

श्री वीतरागाय नमः

जीवनचरित्

श्रीमान् 'दानवीर' सेठ हुक्मचन्द्रजी, इन्दौर।

प्रिय पाठकवृन्द! आपको विदित ही है कि श्रीशत्रुंजयजी (पालीताणा) सिद्धक्षेत्रपर होनेवाले श्रीमती बम्बई दिगम्बर जैन प्रान्तिकसभाके तेरहवें वार्षिक अधिवेशनके सभापति इन्दौरनिवासी श्रीमान् दानवीर सेठ हुक्मचन्द्रजी नियत किये गये हैं। आपके नामसे हमारा समाज भली भांति परिचित है, तथापि आपका संक्षिप्त जीवनचरित्र हम प्रगट करते हैं। आशा है कि पाठकवर्ग इससे उचित लाभ उठावेंगे। इसीके साथ श्रीमान्का रंगीन चित्र भी है, आशा है कि उसे प्राप्त कर पाठक प्रसन्न होंगे।

वंश स्थिति। श्रीमान्के पितामहका नाम मालवा प्रान्तमें सेठ माणिकचन्दजी मंगनीरामजीके नामसे बहुत प्रसिद्ध है। सेठ मगनीरामजी के ५ पुत्र हुए थे, जिनमेंसे दो अकालमें ही मृत्यु प्राप्त हो गये। शेष तीन सेठ सरूपचंदजी, सेठ ओंकारजी और सेठ तिलोकचंदजी थे। इन तीनों भाइयोंने अफीमके व्यापारमें लाखों रुपया कमाकर धार्मिक कार्योंमें खर्च किया और अपने व्यापारमें अच्छी वृद्धि की। हमारे चरित्रनायक सेठ हुक्मचंदजी सबसे बड़े भाई सेठ सरूपचंदजीके सुपुत्र हैं। सेठ ओंकारजीके सुपुत्र सेठ कस्तूरचन्दजी और सेठ तिलोकचन्दजीके सेठ कल्याणमलजी हैं। ये तीनों भाई उत्तम स्थितिके धारक हैं और अपना अलग अलग कारबार अति उत्तम रीतिसे कर रहे हैं।

जन्म। हमारे चरित्रनायक सेठ हुक्मचन्द्रजीका जन्म विक्रम सम्बत् १९३१ के आषाढ़ सुदी १ को इन्दौर शहरमें हुआ था।

विद्यालाभ।

श्रीमान्‌ने ७ वर्षकी अवस्थासे ही विद्यालाभ आरंभ करके सिर्फ ३-४ वर्षमें व्यापार योग्य हिन्दी भाषाका ज्ञान प्राप्त कर लिया तथा कुछ थोड़ासा अंग्रेजीका अभ्यास कर अपना चित्त व्यापारमें लगाया। आपकी बुद्धि ऐसी तीक्ष्ण थी कि १२ वर्षकी अवस्थामें ही आपने व्यापारमें अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

व्यापार लाभ।

श्रीमान्‌ने १५ वर्षकी अवस्थासे ही व्यापार सम्बन्धी सम्पूर्ण कारोबार अपने हाथमें ले लिया। आपकी कोठियें सेठ सरूपचन्द्‌जी हुकमचन्द्‌जीके नामसे हैं। प्रसिद्ध कोठी बम्बई, उज्जैन, मन्दसौर और मुख्यतः इन्दौर शहर तथा ..र छावनीमें हैं। इनमें खासकर अफ़ीम, साहूकारी लेनदेन, रुई, गल्ला वगैरहका व्यापार होता है। आपके व्यापारके सम्बन्धमें मालवेमें कहावत प्रसिद्ध है कि "लाख रुपयोंका नफा नुकशान तो सिरहाने रहता है।" यों तो कई बार आपने लाखों रुपया कमाया, परन्तु सन् १९०८ में, जिस समय गवर्नमेन्टने चीनके साथ अफीमका कन्ट्राक्ट किया और ड्यूटीकी हुंडीका हुक्म दिया था, उस वक्त श्रीमान्‌ने गवर्नमेन्टके भरोसेपर ड्यूटीका २० लाख रुपया एक मुश्त सरकारको दे दिया, जिसका यह फल हुआ कि उसके कारण श्रीमान्‌को बहुतसा मुनाफा हुआ। इस समय आप करोड़पति गिने जाते हैं। मालवा प्रान्तमें आपकी बराबरीका सम्भवतः ही कोई हो। एंग्लो-इण्डियनका मुखपत्र 'टाइम्स ऑफ इन्डिया' (Times of India) ने अपनी ता० १३ अप्रैल सन १९१० वाली संख्यामें श्रीमान्‌को Merchant Prince of Malwa 'मालवामें व्यापारियों के राजा' करके लिखा था। इस प्रकार हमारे चरितनायकने व्यापारमें अपनी खूब ही श्रीवृद्धि की है।

धार्मिक रुचि।

श्रीमान्‌की बाल्यावस्थासे ही जैनधर्ममें सच्ची और विशेष रुचि है। आप हमेशासे धर्मात्माओंकी संगति तथा शास्त्रस्वाध्याय बराबर करते रहते हैं। आपके शास्त्र बांचनेकी शैली-पद्धति इतनी अच्छी है कि जब आप शास्त्र बांचते हैं तब सैंकड़ों नरनारी सभामें उपस्थित हो एकाग्रचित्तसे श्रवण करते हैं। नित्यनियम, पूजन आदि भी आप बराबर करते हैं। इतना बड़ा व्यापार करते हुए भी आप अपना नित्यनियम कभी नहीं छोड़ते। सबसे विशेष गुण आपमें यह है कि बाल्यावस्थासे ही आप परस्त्रीके

त्यागी हैं। दश वर्षसे आप धर्मात्मा मास्टर दर्यावसिंहजी सोंधयाके साथ शास्त्रस्वाध्याय करते हैं। ज्ञानाभ्याससे आपकी धर्मरुचि दिन २ वृद्धिरूप और दृढ़ होती जाती है। धर्ममें इस प्रकारकी दृढ़ अभिरुचिके कारण ही सम्वत् १९६२ में आप मालवा प्रान्तिक सभाके स्थाई सभापति नियत किये गये, जो अब तक हैं। इस मालवाप्रान्तिक सभाका कार्य मुख्यतासे आप ही की सहायतापर अब तक चलता आया है।

सं० १९६७ में आप भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभाके श्रीसम्मेदशिखरजीवाले वार्षिक अधिवेशनके सभापति नियत हुए थे। सिवाय इस अधिवेशनके अभीतक महासभाका अन्य कोई अधिवेशन इतनी सफलतापूर्वक नहीं हुआ। कुछ कालतक श्रीमान् महासभाके [illegible] भी रहे।

विवाह और संतति।

श्रीमानको क्रमशः तीन विवाह करना पड़े। आपकी वर्तमान सहधर्मिणी श्रीमती कंचनबाई लघुवयस्क होनेपर भी विद्या और धर्मसे अच्छा अनुराग रखती हैं। श्रीमतीजी स्वयं शिक्षा प्राप्त करनेमें विशेष प्रवृत्त हैं। स्त्रीशिक्षाकी ओर भी आपका अच्छा ध्यान है। परोपकार करना आप अपना मुख्य कर्तव्य समझती हैं। आपकी विद्याभिरुचि और परोपकार वृत्तिका एक प्रगट दृष्टांत यह है कि जिस समय सभामें हमारे चरित्रनायक श्रीमान् सेठ हुकमचन्द्रजीने श्रीऋषभब्रह्मचर्याश्रमको रु० ५१००) देना जाहिर किया, उसी वक्त श्रीमतीजीने अपने चिरंजीवके द्वारा कहला भेजा कि रुपया ५१००) मेरी तरफसे भी दिये जावें। इस प्रकार उस वक्त रु० १०,२००) ब्रह्मचर्याश्रमको दिये गये थे।

वर्तमानमें श्रीमानके १ दत्तक पुत्र हीरालाल नामके १४ वर्षके, २ पुत्री और १ लघु पुत्र हैं। सबसे बड़ी पुत्रीका पाणिग्रहण झालरापाटन शहरके मुखिया सेठ विनोदीरामजी बालचन्दजीके सुपुत्र सेठ लालचंदजीसे हुआ है। दूसरी पुत्री चिरञ्जीवी रतनबाई भी अच्छी पढ़ी लिखी हैं।

परोपकार बुद्धि और दान।

हमारे चरित्रनायक जिस प्रकार सफलताके साथ धनोपार्जन करना जानते हैं उसी प्रकार आपने उसका सदुपयोग करना भी मुख्य कर्तव्य समझ रक्खा है, जिसका प्रमाण पाठकोंको निम्न प्रकाशित दानकी सूचीसे तथा अन्य कार्योंसे मिलेगा।

सम्वत्.	कार्य.	दान कीहुई रकम.
१९५३	कछाल्या ग्राममें जैन भाइयोंकी स्थिति मंदिर बनवानेकी नहीं होनेसे वहां मंदिर बनवा कर उत्सव करवाया।...	५,०००)
१९५७	इन्दौरके बड़े जैन मन्दिरपर तीनों भाइयोंने १८०००) लगाकर कलश चढ़ाये और कलश प्रतिष्ठा करवाई जिसमें आपने दिये	६,०००)
१९५७	छावनीके जैन मंदिरका जीर्णोद्धार कराया और कलश चढ़ाये।	४,०००)
१९५९	इन्दौर स्टेशनके पास एक पक्का जैन मन्दिर, २ कुए, ५० छोटे कमरे, ९ बड़े कमरे, १ बंगला संयुक्त नशियां बनवाई, जिसमें बिना किसी किस्मके भाड़े आदिका चार्ज लिये जैन अजैन उच्च हिन्दूको ठहरानेका प्रबन्ध है। उसके बनाने और प्रतिष्ठा करानेमें खर्च.	२,००,०००)
१९५३-६०	इन्दौरमें एक औषधालय स्थापित किया. जिसमें अनेक रोगियोंको लाभ पहुंचा।	१०,०००)
१९६०	इन्दौरमें प्लेगके समय गरीब लोगोंके रहनेके लिये झोंपड़े Huts बनानेमें मदद दी।	१,०००)
१९६२	तीनों भाइयोंने एक जैन सहायक भोजनशाला खोली, जिसमे असमर्थ जैनियों व विधवाओंको भोजन, रेल खर्च सहायता दी जाती है, जिसमें आपका खर्च हुआ	३,०००)
१९६२	इन्दौर नशियाँजीमें हुकमचन्द दि० जैन बोर्डिंग खोला, जिसके खर्चके लिये रु० ३२०००)का सूद १२८) माहवार देते हैं। (इसके लिये नशियाँजीके १२ कमरे २४ विद्यार्थियोंके रहने योग्य रिजर्व कर दिये गये हैं। इस बोर्डिंगमें संस्कृतके ऊंचे दर्जेकी एक पाठशाला है, जो अंग्रेजी बी. ए. तकके विद्यार्थी रहते हैं और मिशन कॉलेज	

	तथा रेजीडेन्सी हाईस्कूलमें पढ़ते हैं और जिनको एक घंटा धर्मशिक्षण दिया जाता है। छात्रोंको ७) से १०) तक स्कालर्शिप दी जाती है) ...	३२,०००)
१९६५	नशियाँजीके मंदिर तथा धर्मशालाका माहवारी खर्च चलानेके लिये स्थाई फंडमें दिये ...	२५,०००)
१९६६	इन्दौरमें तुकोजीराव हास्पिटलमें महाजन लोग जो बाहरसे आते थे उनको ठहरनेकी बहुत तकलीफ होती थी, इसलिये महाजन वार्डके कमरे बनवाये, जिसमें तीनों भाइयोंके रु० २१,०००) लगे, इसमें श्रीमानके लगे	७,०००)
१९६६	लेडी मिन्टो हॉस्पिटलमें दिये	१,०००)
१९६७	भारतवर्षीय दिग० जैन महासभाके प्रबन्धखातेमें श्रीसम्मेदशिखरजीवाले अधिवेशनपर दिये	१०,०००)
१९६७	श्राविकाश्रम, बम्बईके चिरस्थाई फंडमें ...	१,०००)
१९६७	श्रीस्याद्वाद महाविद्यालय, काशीके चिरस्थाई फंडमें	१,०००)
१९६७	श्रीसम्मेदशिखरजी पर्वतरक्षा फंडके लिये आप खुर्जा, फीरोजाबाद, शिखरजी और दिल्ली गये तथा प्रेरणा करके बहुतसा चंदा जमा कराया तथा इन्दौरसे २१०००) भेजे, जिसमें आपने दिये	३,०००)
१९६८	इन्दौर नरेश तुकोजीराव बहादुरके कारोनेशन समय विद्याखातेमें दिये	५,०००)
	और धर्मशाला सुधारणार्थ	१६,०००)
१९६९	श्रीमन् तुकोजीराव महाराज बहादुरके हाथसे कोई पब्लिक फायदेकी संस्था खोलनेके लिये दिये	२०,०००)
१९७०	मालवा प्रान्तिकसभामें द्रव्याभावके कारण उसके टूट जानेका मौका आया उस समय आपने उसके उपदेशकभंडारमें दिये	२,५००)
,,	मालवा प्रान्तिकसभाके प्रबन्धखातेमें काम चलानेके लिये दिये	१,१००)

१९७०	बम्बईमें एक विशाल मंदिरकी आवश्यकता समझ आपने चंदा जमा करनेमें पूर्ण परिश्रम किया और स्वयं दिये	१०,०००)
,,	श्रीऋषभ ब्रह्मचर्याश्रमके डेप्युटेशनको आपने उज्जैनसे बुलाकर बड़े परिश्रमसे १६,५००) का चंदा करादिया, जिसमें आपने दिये	१०,२००)
,,	इन्दौर शहरमें तीनों भाई मिलकर एक मंदिर बनवा रहे हैं, उसमें डेढ़ लाख लगाया जावेगा, जिसमें आपका लगेगा	५०,०००)
१९७०	स्टेशनके पास जो धर्मशाला है उसको पक्की बनानेका काम शुरू किया गया है। उसके एस्टीमेटके अनुसार १६०००) तो महाराजा साहबके कोरोनेशन समयके लगेंगे। शेष आप और लगावेंगे	२५,०००
,,	चालू खातेमें दिगम्बर जैन महाविद्यालय, मथुराके	२,५००
,,	हाल ही पौष सुदी १५ को मालवा प्रान्तिक सभाके जलसेमें श्रीमान्‌ने बहुत उद्योग करके श्री बावनगजाजीकी ८९ फुट ऊंची प्रतिबिम्बके जीर्णोद्धारार्थ दश हजार रुपयका चंदा कराया, जिसमें स्वयं दिये	२,१००
	कुल जोड़ ...	४,७२,४००)

इसके सिवाय जैन शिक्षाप्रचारक समिति जयपुर, अनाथालय दिल्ली, जैनसिद्धान्त पाठशाला मोरेना आदि कई उपयोगी संस्थाओंमें आपने बहुतसी छोटी २ रकमें दी हैं। ऊपर सिर्फ एक मुश्त एक हजार या उससे ऊपर वाली रकमें ही प्रकाशित की गई हैं, कम वाली नहीं। अब तक हमारे चरित्रनायक करीब पांच लाखसे ऊपर धर्मकार्योंमें खर्च कर चुके हैं।

श्रीमान्‌ने निम्नलिखित सम्वतोंमें तीर्थक्षेत्रोंकी संघसहित वंदना की और बहुतसा द्रव्य लगाया।

१. श्रीसम्मेदशिखरजी सिद्धक्षेत्रकी यात्रा की—सं० १९४७ में अपने पिताके साथ गये, १९५७, १९६४ और १९६६ में।

२. श्रीगिरनारजी सिद्धक्षेत्रकी यात्रा की—सं० १९५८ और सं० १९६८ में।

३. श्रीजैनबद्री मूड़बद्रीकी यात्रा की—सं० १९६३ में १०० आदमियोंके संघसहित।

पांच वर्षसे आपके यहां मकान, मंदिर, धर्मशाला आदिका कुछ न कुछ काम चलता ही रहता है। ऐसा कोई दिन न होता होगा कि जिस दिन आपके यहां १०० गरीब आदमी मजदूर न लगे हों।

स्वभाव

श्रीमान्‌का स्वभाव बहुत ही सौम्य और मिलनसार है। गरीबसे गरीब आदमी भी आपसे बेरोकटोक मिल सकता है।

सम्मान

आपके दान धर्मकी बाहुल्यतासे प्रसन्न होकर श्रीमती भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभाने इसी साल आपको 'दानवीर' की पदवीसे सुशोभितकर सम्मानित किया है।

आशा है कि पाठक श्रीमान्‌का दृष्टांत ले न्यायनीतिसे धनोपार्जन कर उसे यथोचित दानमें खर्च करते रहेंगे। ऐसे सुयोग्य सभापतिको प्राप्त करना बम्बई दिगम्बर जैन प्रान्तिकसभाके लिये बड़े सौभाग्यकी बात है। हमें पूर्ण आशा है कि श्रीमान्‌के सभापतित्वमें सभाके सम्पूर्ण कार्य सानन्दपूर्ण होंगे और सभाकी मनोकामना सफल होगी।

शुभम्. शुभम्. शुभम्.

॥ श्रीहरिः ॐ ॥

बालविवाह कुठार ।
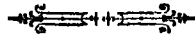
खेतड़ीराज्यान्तर्गत जसरापुरनिवासी
ब्राह्मणकुलसंभूत-

पं० कालूरामत्रिवेदीद्वारारचित

और
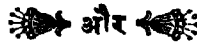
श्रीयुत परोपकारी बाबू जगन्नाथजी
झुंझुनीवाले द्वारा-

सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासके

बम्बई

खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणयन्त्रालयमें

मुद्रितकराकर प्रकाशित ।

१९७०, सन् १९१३ ई०

प्रथमवार १००० प्रति.

सूचना

सम्पूर्ण देशोद्धारक दलोंको तथा देशहितैषियोंको मालूम हो कि यह पुस्तक कोई स्वार्थ साधनके लिये नहीं लिखी गई है। यह इसलिये लिखी गई है कि इससे बालविवाहादि कुरीतियोंका निवारण हो। अस्तु। पढनेवालोंसे प्रथम हाथ जोडकर यह निवेदन है कि इस पुस्तकको वृथा कागजात काला ही न समझ बैठें। इसकी छाँण बीण करें। और बार बार पढें। इसमें गद्य पद्य कविता है सो कविजनोंके मोदको बढानेवाली होगी। इति शम्।

विनीत:—

ग्रन्थकर्ता—

का. श. त्रि.

भूमिका ।

प्रिय पाठकवृन्द !

उस सर्वशक्तिसम्पन्न ज्योति:स्वरूप जगदाधार जगदीश्वरको कोटिश: धन्यवाद है कि जिसकी असीम दयासे मैंने प्रथम इस विषयकी एक छोटीसी पुस्तक "बालविवाहखंडन" लिख कर पाठकोंकी सेवामें भेट की थी ।

उसको सज्जन पाठकोंने अपना कर मेरे उत्साहको द्विगुणित करदिया इस-लिये अब पुन: "बालविवाहकुठार" श्रुति स्मृति इतिहासादिके प्रमाणोंसे अलंकृत कर पाठकोंकी सेवामें सादर भेंट करताहूं । आशाहै इसको पढकर बालविवाह-रूपी समाजका सत्यानाश करनेवाली कुप्रथाको रोकेंगे तो मैं अपने परिश्रमको सफल समझूंगा ।

इस बालविवाहसे जो २ हानियां हो रही है यह बात सब जानते हुए भी इसका प्रचार बन्द नहीं करते ।

इसका कारण यह जान पडताहै कि मुसल्मानोंके राजत्व कालसे यह कुप्रथा चली थी अब पुरानी लकीरके फकीर होनेके कारण हमारे स्वदेशवासी भाई इस प्रथाको बन्द नहीं करते परन्तु हमारे भारतीय भाइयोंको जरा सोच कर देखना चाहिये कि बालविवाह होनेसे, बाल्यावस्थामें जो कच्चे वीर्य्यसे सन्तान उत्पन्न होती है वह निर्बल एवं रोगयुक्त होती है । और विधवाओंकी संख्या बढना तथा भ्रूणहत्या होना, पतिस्त्रीमें मेल न रहना, और व्यभिचारादि दोष आज कल जो देखनेमें आते है वह सब इसीका फल है ।

जबतक जोडीदार पतिसे कन्याका विवाह न किया जावेगा तबतक यह कुकर्म दूर नहीं हो सकते है । इसी प्रथाको समाज तथा देशसे दूर हटानेके लिये मैंने यह "बालविवाहकुठार" नामक पुस्तक लिखी है ।

इससे लाभ उठाना पाठकोंके सहारे है, और इस विषयमें जो २ दलीलें हो रहीं है उन सबकी तथा बाल्यविवाहका झूंठा पक्ष करनेवाले महाशयोंकी निर्मूल शंकाओंका इसमें मुँह तोड उत्तर देदिया गया है आशा है कि बाल्यविवाहरूपी इसी अन्धपरम्पराको त्याग अपनी सन्तानोंको अकाल मृत्युसे बचा दीर्घजीवी बनावेंगे. और इसका समाचार औरोंको भी सुनावेंगे। इस विषयमें और भी पुस्तकें लिखी गईं तथा लिखी जा रही है। पाठक पढकर इसका निवारण करेंगे तथा निवारण करना चाहेंगे उनके लिखने पर हम प्रशंसापत्र देंगे। और जो देशके प्रधान नेताओंको भी यह पुस्तक पहुचावेंगे वे देशके हितेच्छु समझे जावेंगे। और इस पुस्तकको हम श्रीमान् वैश्यकुल दिवाकर सकल गुण भाण्डा-गार परमोदार सत्यव्रतधारी श्रीकलिकाता संनिकट रानीगंज निवासी श्रीयुक्त-जगन्नाथजी झुझनोंवालेको पूर्ण प्रतापी जानकर करकमलोंमें भेट करतेहैं।

और श्रीदीनदयाल परमेश्वरसे प्रार्थना करता हूं कि, ऐसे परोपकारी महापुरुषोंको चिरजीवी रक्खे।

और संप्रति महोपदेशक पं० नेकीरामकी सम्मति भी मैंने एकपुस्तकमें पढीहै और हर्षका विषय यह है कि आज कल सामयिक पत्रोंमें तथा समाचार पत्रोंमें भी इसी विषयके लेख अधिक रहते है। इति शम्।

आपका—

कालूराम त्रिवेदी.

॥ श्रीः ॥

अथ बालविवाहकुठारप्रारम्भः ।
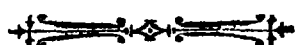
मंगलाचरण ।

हे जगकर्ता सुखद प्रभो, दुर्गुण हरो हमार ।
यद्वद्दं कल्याण कर, प्राप्त होंय फल चार ॥

दोहा पचीसी ।

बालब्याह से होतहैं, महा महा उत्पात ।
महामारी दारिद्रता, घेर रहे दिनरात ॥ १ ॥
बालविवाह के दुःखसे, करत कोटि उत्पात ।
धर्म कर्म सत्य भाषना, भारत से हैं जात ॥ २ ॥
गर्भनाश जाते हुए, बिधवा अरु व्यभिचार ।
कालूराम भाषहिं यहै, वनिता कष्ट विचार ॥ ३ ॥
समय २ पै होत है, इच्छित सब को भोग ।
था प्राकृतिक जो नियम, तोड़ चले बहु लोग ॥ ४ ॥
बालव्याह ही ने किये, बल अरु आयु विहीन ।
कालुराम द्विज कहतहै, महा दुखी इन कीन ॥ ५ ॥
बालव्याहको नाशनों, दुखनाशन को मूल ।
वेदवाणि "कालू" कहै, शास्त्र मनू अनुकूल ॥ ६ ॥

बच्चेपनके ब्याह से, अब तो आवो बाद ।
ब्रह्मचर्य्य सत्यधर्मकी, चली जात मरजाद ॥ ७ ॥
बच्चों की शादी करें, नई निकाली रीत ।
मंत्र विवाहका है सही, लावो उनसे प्रीत ॥ ८ ॥
छत्तीस बार कन्या होवे, ऋतुधरम ते शुद्ध ।
रतियोग ताको कहे, वेद मनू अरु बुद्ध ॥ ९ ॥
लग्नोप तृतीय दिवस, करनो पतिसंयोग ।
वयोहीन वर का करे, नूतन वधु से भोग ॥ १० ॥
रजउपरान्त कन्या कही, रति के समझो योग ।
यदि जो ऋतुवति ना हुये, महा दोष है भोग ॥ ११ ॥
एक प्रथा सब से बुरी, बालव्याह के माय ॥
वयोहीन रति ना करे, पितु मातु नरकमें जाय ॥ १२ ॥
याही ने इस देश का, कीन्हा सत्यानाश ॥
गर्भ मांय व्याहन लगे, उन्नति की कहं आश ॥ १३ ॥
पति विहीन अबला कहे, सुन जननी मम बात ॥
मेरे को भी क्यों नहीं, भरता घर पहुंचात ॥ १४ ॥
माता उत्तर देत है, सुता सुनो मम बात ।
तेरे भरता है नहीं, कहां पठाऊं तात ॥ १५ ॥
सात वर्ष की थी जबै, शीघ्र कियो पतिदान ।
धर्म शास्त्र में है लिखी, होवे पुण्य महान् ॥ १६ ॥
कन्या दान लेके चले, घर अपने वह बाल ।
मास दोय बीते नहीं, खागयो काल अकाल ॥ १७ ॥

विधवा तू तब से हुई, पति मरनेके बाद।
तेरे लिये कछु है नहीं, रोको काम जल्लाद॥ १८॥
रोके से जब ना रुके, वदन मदन की पीर।
सुता समरि तू ईश को, धारिहो मन में धीर॥ १९॥
गर्भ कभी भी ना रहे, औषधि से दें डार।
मात भऊ बेटी श्वशुर, करैं खूब व्यभिचार॥ २०॥
ऐसे ही इस जगत में, होती रहैं अनेक।
कछू दोष यामें नहीं, समझो सौकी एक॥ २१॥
सुनु उपदेश माता तनो, पुत्री लीनी जान।
इस जीवन में सुख नहीं, सुनले अम्बा जान॥ २२॥
यह क्या धर्म तू कहत है, यह नहिं धर्म्म कहात।
जीने से मरना भला, अनहोनी न सुहात॥ २३॥
जब तक ऋतुवति ना हुवे, करो व्याह मत कोय।
शास्त्रकार सब कहत हैं, किये पाप सिर होय॥२४॥
और एक है भ्रातृगण, विवाह बाद का कर्म।
भोग करे निश्चय समझ, वर कन्या के धर्म॥ २५॥
व्याह बाद होवे सही, कर्म चतुर्थी नाम।
देखो व्याह की पद्धती, भोग करे वर वाम॥ २६॥
पातिव्रत सत्य धर्म का, करिहो सुजन प्रचार।
कालू राम द्विज कहत है, धारि ध्यान ॐ कार॥२७॥
नाना भांति कुरीतियां, आकर घुसीं अपार।
शूरवीर साहस गुनी, देवो शोध निकार॥ २८॥

विना मेल के ब्याहे बच्चे, मिली न उनकी जोड़ी ॥
ब्रह्मचर्य्य की थी जो कोठी ताकी पालकी फोड़ी ।
था विद्याबल तोय रूपमें, निकल गये वर जोड़ी ॥
फिर भी समझो भाई । वहीं पहुंचोगे जाई ॥
फिरी थी कभी दुहाई । "कालूराम"
कथ कहैं, वाम लडकों पै छूरि चलाई ॥

दोहा ।

बगरो बाल विवाह वन, सर्व जाल को जाल ।
फँडफँडात यामें फिरे, दम्पति धर्म मराल ॥

चौबोला ।

दम्पति धर्म मराल चाल चल हाथ हलाहल घोलो ।
धर्म्मशास्त्र के वचन तोडकर झूठ सरासर तोलो ॥
समझ नहीं लडकी लडके को ब्याह नहीं, यह खेलो ।
खोटी रीति सीखे तुम भाई ले थैली वर मेलो ॥

दौड ।

यह क्या रीति सुहाई है । बुद्धि पाताल पठाई है ॥
विद्याकी करी विदाई । कालुराम कथ कहै ग्राम जसरा
पुर रहना भाई ॥

कवित्त ।

वेद संहिता पुराण मानव धर्म्म शास्त्र आदि ।
श्रुति और सूत्रों के कलङ्क लगायो है ॥
ब्राह्मण इतिहास ग्रन्थ अङ्ग उपाङ्गन को ।

भूलि के प्रमाद वश मनमें बौरायो है ॥
रीति और नीति सब तोड़ के सनातन कोजी ।
फैशन विदेशी पे अधिक लुभायो है ॥
कहै द्विज कालुराम बाल विवाह रोको यार ।
भारत उन्नति को निकट दिन आयो है ॥

सवैया ।

नीति नई निकली जग में, जड बाल विवाह रचावतु है । मूर्ख भुलाय लुभाय टका, ब्रह्मचर्य्य की रीति मिटावतु है ॥ होगा भला न कभी उनका, निज उन्नति देश नसावतु है । रूप घटा उलटी सिगरी, दुनिया उलटी भइ जावतु है ॥

भजन ।

दोहा—भारत में जब से चली, रीति बाल विवाह ।
बल विद्या बुद्धि घटी, होगया देश तबाह ॥

टेक—मित्रो तुम इसको टारियो है बाल विवाह दुःख दाई । आठ वर्ष में विवाह कराया, विधवा कर घर में बिठलाया (हरे) फिर करमों को दोष बताया, मन में जरा विचारियो क्यों करी अधर्म कमाई, बालवि० ॥ १ ॥

जिस दिन युवा अवस्था आवे, विना पति के रहान जावे । आखिर को निज धर्म्म गवांवे, इसकी और निहारियो ॥ यह कैसी इज्जत पाई—है बालविवाह० ॥ २ ॥

जब मर जाय पुरुष की नारी, दूजे विवाहकी हो तय्यारी, विधवा रोवे दीन विचारी, उनके सङ्कट हरियो । क्यों बने हो तुम अन्याई–है बाल विवा० ॥३॥

अब तो बाल विवाह टालो, उलटी समझपर मिट्टी डालो । वेद मनो की आज्ञा पालो, विधवा भार उतारियो । हो ब्रह्मचर्य्य का सहाई–है बालवि० ॥ ४ ॥

जबसे बाल विवाह हुआ जारी, बल विद्या बुद्धि गई सारी । ब्रह्मचर्य्यकी रीति बिगारी, उसे सम्हारियो। कहे वासुदेव समुझाई–है बालविवाह० ॥ ५ ॥

भजन नं. २

इस बचपनकी शादी ने, बल विद्या खो दई सारी । जब बच्चा पैदा होजाई, खुशी मनावैं लोग लुगाई । खान पान नहिं सीखाभाई, करें व्याह की तैय्यारी ॥१॥

धातु पुष्ट होन नहिं पाता, बचपनमें शादी कर लेते । ऐसे मात पिता हैं जेते, दुश्मन हैं बडे भारी ॥ बलविद्या० ॥ २ ॥

बल से हीन बच्चे होते हैं, जो वीरज कच्चा खोते हैं। निश्चय वंशमें दुःख बोते हैं, करें असल में ख्वारी ॥ बल० ॥ ३ ॥

वेद मनु को तुम पढ़ देखो, ब्रह्मचर्य्य को है वहां लेखो । नये शास्त्र से कर लो जोखो, आंख खुले जब थारी ॥ बल० ॥ ४ ॥

जब परिपक्व धातु को जानो, शादीके लायक पहिचानो। गङ्गा सहाय कह सत्य जानो, हारेंगे मूढ अनारी ॥ बल० ॥ ९ ॥

हमारे देश में जब से इस बाल व्याह की कुप्रथा चली है तब से हम देश बासी बल एवं तेजोहीन हो गये हैं। जो ब्रह्मचर्य्य हमारे मनुष्यत्व की प्रधान जड़ है उसके नियम को तोड़ कर आज कल लोग बाल्यावस्था में ही लड़के लड़कियों का विवाह कर देते हैं। जिससे उनकी सन्तान को अपनी जीवनयात्रा सुखपूर्वक व्यतीत करने में बड़ी कठिनता का सामना करना पड़ता है। क्योंकि बच्चा जन्मसे ही दांतोंसे रोटी नहीं— खाता—इसी विषय को लेकर ऋग्वेद मं० १७. अनुकरण ७, सूक्त ८९, मन्त्र ४० जिसको मैं इस पुस्तक में पूर्व्व ही लिख चुका हूं और यहां पर उसका भाषार्थ वर्णन करता हूं "सोम, गन्धर्व और अग्नि तीन देव पति कन्या को पहले भोगते हैं तत्पश्चात् मनुष्य के योग होती है"। इसकी सविस्तर व्याख्या गोभिल आचार्य्यके पुत्रने गृह्यसंग्रह नामक ग्रन्थ में की है। और संवर्त आदि०व्यञ्जनैस्तु समुत्पन्नैः सोमो भुञ्जीत कन्यकाम्। पयोधरैस्तु गन्धर्वो रजसाग्निः प्रकीर्तितः ॥१॥ रोमकाले तु सम्प्राप्ते सोमो भुङ्क्तेथ कन्यकाम्। रजो दृष्ट्वा तु गन्धर्वः कुचौ दृष्ट्वा तु पावकः ॥ २ ॥

संवर्तस्मृतिः । और यम स्मृति, अत्रिस्मृति इसमें समस्त एकमत हैं ।

अर्थ—(व्यञ्जन) चिह्न उत्पन्न होने तक कन्या को चन्द्र भोगता है और स्तन होने पर गन्धर्व और रज होने पर अग्नि भोगता है । बस यही देवताओंके भोगनेका समय है ।

इससे यह सिद्ध होगया कि मनुष्य पति अग्नि के पश्चात् अधिकारी होता है तब रजस्वला होने के बाद ही कन्या का विवाह करना युक्ति संगत है क्योंकि विवाह के मन्त्रोंमें यह लिखा है कि अग्नि के पश्चात् मनुष्य कन्या का पति होता है । हमारे धर्म शास्त्रों में जो लग्न के पश्चात् चतुर्थी कर्म करना लिखा है आज कल जिसका असल क्या नकल का नाम तक भी लोग नहीं जानते, उससे भी स्पष्ट ही विदित होता है कि कन्याका विवाह रजस्वला होने के बाद ही करना उचित है क्योंकि चतुर्थी कर्म (सम्भोग) रजस्वला होने पर ही हो सकता है अब पाठक स्वयं ही सोच सकते हैं कि जो लोग रजस्वला होने के पहले विवाह करने की बात कहते हैं उनकी साफ मूर्खता नहीं है तो और क्या है ? अच्छा । खैर ।

और प्रमाण लीजिये ।

हमारे देशमें जो किंवदन्ती तिरिया तेरह मर्द

अठारह की प्रचलित है वह भी हमारे धर्म शास्त्रों के अनुकूल ही है क्योंकि तेरह वर्ष की कन्या रजस्वला बखूबी होसकती है।

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध धुरन्धर विद्वान् सनातन धर्म के स्तम्भ स्वरूप वेदवेत्ता पं० भीमसेन जी शास्त्री कीभी विवाह विषयमें यही सम्मति है कि लडके की अठारह तथा लडकी की बारह वर्ष से पूर्व शादी नहीं करनी चाहिये। सो ठीक ही है क्योंकि आज कल प्रायः लड़की बारह वर्ष तक रजस्वला हो जाती हैं।

अधिक न लिखकर इतना ही निवेदन है कि इस विषय में यदि किसीको कुछ शंका हो तो हमसे पूछे हमारे देश के प्रधान नेताओं को इधर शीघ्र ध्यान देने की ईश्वर सुमति दे जिसमें देश वासी बल एवं तेजयुक्त होवें ॥ इति ॥

ओम् शान्तिः ! शान्तिः ! ! शान्तिः ! ! !

ध्यान रहे कि ऊपर लिखीहुई राय इस वर्तमान काल में उत्तमोत्तम समझना। क्योंकि समय २ पर धर्म की व्यवस्था पलटा करती है। जैसे क्रमशः कामासक्ति बढती जाती है तैसे विवाह की अवस्था ने भी पलटा खाया है भूतकाल में १६–२५ तो नेष्ट काल

नियुक्त था । पुरुष ४४ और कन्या २२ वर्ष तक अविवाहित रहते थे इसीसे मनुजीने कन्याके विवाह काल १६ वर्ष कमसे कम लिखे, परन्तु हमारे महर्षिगण बड़े समदर्शी थे उन्होंने कन्याके ऋतु दर्शन होनेपर विवाह करें ठीकही लिखा कि भविष्यत्में–१०–९–वर्ष में ऋतुदर्श होगा तो उस समय विवाहकर देना धर्म है। आज काल अर्वाचीन और संप्रति आचार्योंकी १२ वर्षहीमें विवाह करदेने की राय है । सो अच्छा ही है।

अभ्यर्थना–बाल्यावस्था में विवाह करने से जो हानियां उठानी पड़ती हैं उनका दिग्दर्शन मात्र मैंने पहले लिख दिया है । अब कईएक ऐसी युक्तियां लिखी जाती हैं कि कन्या तथा पुरुष का विवाह छोटी अवस्था में कदापि युक्तियुक्त और शोभनीय नहीं हो सकता । विवाह के चौथे दिन चतुर्थी कर्म का होना सर्व शाखायें मानती हैं । सारे गृह्य सूत्रों में यह बात पाई जाती है कि विवाह के चौथी रात में वरवधू एकान्त में जाकर सम्भोग करें । खेद है ! इन अनपढ–मिथ्याभिमानी स्वार्थियों ने आठ वर्ष के भीतर ही विवाह करना माना और अन्य मूर्खोंको मनाया ।

विचार करने का स्थल है कि सात आठ वर्ष का वरवधू कैसा सम्भोग करसकते हैं । यह चतुर्थी कर्मसे

सिद्ध हो चुका है कि वर वधू सम्भोग के योग्य हो जावें तबही विवाह करना चाहिये । अब सुनियेः—"पुत्रप्रयोजना दाराः" "रतिपुत्रफला नारी" इत्यादि वाक्यों से भी वही प्रयोजन सिद्ध होता है कि जब पुत्र और रति करने के योग्य स्त्री पुरुष हो जावें तब विवाह होना चाहिये क्या आठ वर्ष के लड़के को पुत्र उत्पन्न करने की लालसा किंवा शक्ति होसकती है कदापि नहीं ।

देखियेः—वैवाहिक मंत्रों में "आर्य्यमणं देवं" इत्यादि मंत्रों द्वारा कन्या स्वयं प्रार्थना किया करती है कि, हे अर्यमन् (सूर्य) देव ! मेरा अपने पति से वियोग मत करना। बाप रे बाप ! चार वर्ष की लड़की विचारी क्या पति को जान सकती है और क्या रति को ! ! इस बाल्य विवाह के बदौलत (दाम्पत्य प्रेम तो जला बला) स्त्रियां अपने पतियों से असन्तुष्ट होकर परपुरुष गमन करती हैं और असंख्य स्त्रियां (जिनके पति छोटे होते हैं) उन्हें छोड़ कर अन्यत्र चली जाती हैं । छोटी उम्रवाली लड़कियां न ससुराल में रहना जानती हैं न उनका पति से प्रेम हो सकता है फिर क्यों व्यर्थ उक्त वेद के मन्त्रों को कलङ्कित कर कर भारत का नाश कर रहे हो ।

धर्म शास्त्रों में ८ प्रकार के विवाह लिखे हैं ऐसे ही १२ प्रकार के पुत्र लिखे हैं इन में से एक पुत्र की

संज्ञा कानीन रक्खी है हमारे अनपढ भाई कहते हैं सदा से छोटी अवस्था का विवाह चला आता है तो यह कानीन पुत्र किसके होताहै। क्या १,२, वर्ष की लड़की के सन्तान होना भी सनातन की रिवाज है। ऐसी बहुत युक्तियां हैं बड़ी बड़ी धर्म सभाओं में आन्दोलन भया हुआ है देशके प्रधान नेताओं द्वारा यह कुरीति उठ सकती है। दफे ३४ एक्ट नं० ५ के अनुसार यह कार्य क्या दण्डनीय नहीं है ? प्रियवरो ! इस काम से हिन्दू समाज को बड़ा कलङ्क लगाहुआ है आप लोगों की विदेशी हँसी उड़ाते हैं इसे शीघ्र हटाने का प्रयत्न हो जाना चाहिये ताकि स्त्री शिक्षा का आरम्भ हो ॥

॥ ॐ शान्तिः ! शान्तिः ! ! शान्तिः ! ! !

बाल्य विवाहके पक्षपाती "शीघ्रबोध अथवा नष्ट बोध" नामक ग्रन्थ का "माता चैव पिता चैव ज्येष्ठ-भ्राता तथैव च। त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रज-स्वलाम् ॥" यह प्रमाण देते हैं कि माता पिता ज्येष्ठ भ्राता तीनों रजस्वला कन्या को देखें तो नरकमें जावें। परन्तु यह प्रमाण कोई प्रामाणिक ग्रन्थों का नहीं है। हमारे माननीय ग्रंथ वेद मनु आदि हैं उनमें बाल्या-वस्थामें विवाह करनेका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

मनु में तो लिखा है "त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्य्यृतुमती सती" मनुजी लिखते हैं कि विवाह काल आजानेपर भी कुमारी तीन वर्ष तक अपने पिताका आसरा देखती हुई उपरांत आप अपना विवाह कर लेवे ।

विवाह काल ऋतु दर्शनसे होता है तिसपर भी तीन वर्षोंका परवाह न करके ऋतु दर्शनसे चौथे वर्ष विवाह करना कहा है । देखो म० सं० अ० ९. स० ९.

अब पाठक देखिये ऋतुदर्शन से नरक जाना तथा ऋतुदर्शन से पाप लगना कहां रहा ॥ पीछा विवाह करना ऋतुदर्शन के पीछेही होनेकी तथा करनेकी आज्ञा है । यह तो वही हुआ कि 'घड़ थी लुटिया होगी भेर ।'

अस्तु पुनः मनुजीने लिख दिया है कि चाहे ऋतुमती होती हुई कन्या जन्मभर अविवाहित रहे परन्तु गुणहीन मूर्ख को कन्या न विवाहे ।

अब देखना चाहिये बाबा काशीनाथके अनुयायियोंका मुँह मर्दन करनेके लिये मनुजी पहलेही से लिखगये । 'काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि' अध्याय ९-श्लोक ९१-१.

अब आगे हम जो युक्तियें लिखते हैं जिसका उत्तर बालविवाहके प्रचारक सौ जन्ममें भी नहीं दे सकते ह।

प्रथम तो यह ही विचारणीय बात है कि प्रकृतिसे भी साबित होता है कि विवाह युवावस्था का ही करना श्रेष्ठ है। और कन्या के रज उत्पन्न होना तथा कुचादि-का उभड आना ये ही युवावस्थाके चिह्न हैं। और दूसरे वेद मनु प्रतिपादित कर रहे हैं। सो हम ऊपर लिखही आये हैं।

तीसरे जो महाशय चतुर्थी करना (वर वधूका एकान्तवास) और तीन देवों के पति होने से पहले पहले मनुष्य पति-होना मानेगा, उसने आपही ऋतुदर्शन के पश्चात् विवाह करना वा होना मान लिया।

क्योंकि कुमारी ऋतुदर्शन होने तक देवताओंके भोग में रहती है। और चौथे कन्या का विवाह करना धर्म है। बालाका नहीं। कन्या नाम चरितार्थ जबही होवेगा जब ऋतुमती होने लग जाय। नीचे कन्या-वास्तव में किस समय कहा है सो लिखा जाता है। पाठक ध्यानसे पढेंगे।

लीजिये व्याकरण के अनुसार कनी दीप्तौ धातु से यक् प्रत्यय लगाने से "कन्या" शब्द निष्पन्न होता है, भला अब विचारना चाहिये क्या-६-७-वर्ष की लड़कीमें दीप्ति आसकती है? दीप्ति उसी १२ वर्ष की उम्र किम्वा यों कहना चाहिये कि कुचोत्पत्ति का होना और ऋतु प्रगट होने पर ही दीप्ति आसक्ती है।

यथा–प्रमाण "यथा यथास्याः कुचयोः समुन्नतिः" उक्तव्याकरणानुसार कान्ति शोभावाली ही का नाम कन्या है ।

और महाभारत में लिखा है कि "ऋतुस्नाता तु या शुद्धा सा कन्या त्वभिधीयते" ऋतुमती होती हुई विवाहसे पहले २ कन्या है–और अनग्निका कन्या ही का विवाह करना कहाहै । अनग्निका के विषयमें प्रमाण यथाः–" ऋतुमतीं त्वनग्निकां प्रयच्छेत्त्वनग्निकाम्" ॥ जब तक कन्या रजोवती नहीं होती उसे अनग्निका–अर्थात् नंगी (बिना कपडोंवाली) कहते हैं। और ऋतुमती होने पर वह अनग्निका (नहीं नंगी) कपड़ोंवाली कहाती है । और हमारे देशकी अनपढी स्त्रियां भी कहा करती हैं (कि जब–कन्या रजोवती होने लगे तब) अब कन्या लडकी–कपड़ों होने लगगई।सो अब इसका विवाह करने का समय प्राप्त हुआ ।

और भी लिखा है अनग्निका के विषय में ।

"त्रिंशद्वर्षः षोडशवर्षां भार्यां विवहेत् नग्निकाम् ॥" तीस वर्ष का पुरुष १६ वर्ष की स्त्री के साथ विवाह करे। यहां "नग्निका षोडशवर्षां" नग्निका से अभिप्राय १६ वर्ष की कन्यासे है ।

लोगों के विचारों में परिवर्तन आने पर शब्द के अर्थ भी बदल गये, और माता पिताओं को बाधित

किया कि बाल्यावस्था में ही अपने पुत्र वा पुत्रियों को विवाह दें। और न विवाह करने पर परलोक के अनेक भय दिखलाये। और नग्निका, वृषली, रजस्वला, कन्या आदि शब्दों को खराब अर्थ करके बिगाड़ा। और नारदादिस्मृति में लिखा है-

ऋतुस्नाता तु या कन्या सम्प्रदाने वधूर्भवेत् । सांगुष्ठ-ग्रहणे भार्या पत्नी चातुर्थकर्मणि ॥ १ ॥ और सुमंगलीरियं वधूरिमासमेत पश्यत, सूत्रकार । सप्तपदी तथा चतुर्थीकर्म के पश्चात् सूत्र ग्रन्थों में-"व्रतस्था" कहाहै । " व्रतस्था" चतुर्थी कर्म संभोग का नाम है किसी सूत्र ग्रन्थों में कन्या पुरुषके विवाह का नियम वर्षों पर यद्यपि नहीं लिखा, परंतु ऊपर कहे हुए " व्रतस्था " चतुर्थी कर्मका करना बडे जोर शोर से लिखाहै।

बस इसी पर समझा गया सभोगयोग्य वर वधू का विवाह करें, स्वयं सिद्धहै ।

वा यों कहिये बिना रजोवती हुए, कन्या संभोग के तथा विवाह करनेके योग्य कभी नहीं हो सकती अस्तु ।

यो तों जन्मसे सप्तपदी (विवाह) सही होने तक कन्या कही जाती है । पर ऊपरके प्रमाणानुसार रजोत्पन्न होने से कन्या और " ओं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जर०" इत्यादि मन्त्रों बाद

भार्या कही जाती है और कन्या दान के पश्चात् वधू कहा है। और चतुर्थी कर्म होजाने पर पत्नी कहा है। युवावस्था के विवाह करने के प्रमाणों की कमी नहीं है।

कमी केवल शास्त्रानुसार चलने वालों ही की है। उचित हमको यह ही है कि शास्त्रानुसार चलें परंतपः, यह परम तप है।

इसीसे हमारा भला होगा पशु पक्षी भी आप देखरहे हैं अपने स्वाभाविक नियम से कभी नहीं चूकतेहैं। और आज कल लोग प्रायः अंग्रेजोंका अनुकरण कर रहे हैं। सो देखो अंग्रेज भी विवाह युवावस्था ही में करते हैं। और अब हम बालविवाह बंद करने की सहज (सीधी) युक्ती लिखते हैं ब्राह्मणस० संपादक इटावा के लिखते हैं। उन्ही की संमति हम ऊपर भी लिख आये हैं। और हम उनकी राय सर्वोपरि समझते हैं।

आप लिखते हैं कि समस्त हिन्दू नेताओं को चाहिये छोटे २ लडके लड़कियों की शादी न होने देनी चाहिये। और जो छोटी उमर में (विना विवाहकाल) के बच्चों का विवाह करते हैं उनके लिये जातीयसभाओंने बडे २ समारोहसे काम करना चाहिये और कडे नियम बनाने चाहिये बालविवाह के रोकनेके प्रबल उपाय सिद्ध किये जांय।

इसके विरुद्ध चलने वाले पर जातीय तथा धर्म दंड होय ।

अथवा अनेक देश हितैषी मिलके बृटिश सरकार से निवेदन करें कि बा० वि० करने वाले पर कोई राज दंड नियत किया जाय ।

और कन्या–१२ वर्ष से छोटी (कम) कभी न विवाही जाय और १८ वर्ष से कम छोटा पुरुष न हो अधिक जहां तक हो सकता हो ।

और जो लडका ऊपर के नियमानुकूल विवाह करे उसे उपाधि द्वारा उत्साहित किये जायँ कि जिससे औरोंका भी मन बढे अस्तु ।

अब यहां पर पहले विवाह का परिचय देदेताहूं । विवाह एक बडे भारी गृह्य सूत्रोक्त कर्म (संस्कार) है । विदित हो कि उपसर्ग पूर्वक " वह प्रापणे " धातु से विवाह शब्द सिद्ध होता है यह व्याह कर ली-जिये खास करके एक एक के हाथ बिक जाते हैं। और विवाह होने पर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना पड़ता है ।

और "समञ्जन्तु विश्वेदेवा" आदि मंत्रों द्वारा कन्या वर दोनों को प्रतिज्ञा (शरत) करनी पड़ती है कि हम दोनों जबतक जीते रहेंगे तबतक एक एकके अनुकूल दोनों जलों की नियेर मिलेरहेंगे और गृहस्थाश्रमका

पालन करेंगे धर्मपूर्वक सो कहां ? अब आप समझ गये होंगे कि विवाह कितनी बड़ी जिम्मेवारी का काम है। इसी लिये मनुजीने लिखा है यथा:-

"योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः" दुर्बल इंद्रियोंवाले को गृहस्थधारण विवाह न करना सिद्ध भया।

हम ऊपर लिख आये हैं मनु महाराजजी के वचन उसीके अनुसार पूर्ण बल और विद्या ग्रहण करके अथवा प्राप्त करके शारीरिक बल इत्यादि प्राप्त करके गृहस्थधारण विवाह करना चाहिये।

अहा ! हा ! ! क्या ही सुन्दर हमको हमारे पूर्वजों का उपदेश मिलता है जिसको विदेशी गण ग्रहण करके आज सारा सामर्थ्य रखते हैं शिव ! शिव ! ! हम भारत-वासी उन उपदेशों का पालन नहीं करें सो बड़ी शरम की बात है अवश्य करना चाहिये।

यदि हम मनुष्यत्वका अहंकार रखते हैं या इस "धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष" चारों पदार्थों के देने वाली दुनियांमें अथवा (संसारमें) सुख भोगनेका अधि-कार रखते हैं तो अवश्य ही ब्रह्मचर्य्यका पालन करना होगा। अस्तु ब्रह्मचर्य्य ही जीवन मूल है। ब्रह्मचर्य का पालन करियेगा। ब्रह्मचर्य्य ही से सम्पूर्ण सुख मिलेगा।

सारांश ।

१२ वर्ष की लड़की विवाहकालने प्राप्त हुई विवाह करने योग्य है और लड़का "कन्याया द्विगुणो वरः" वर १८ वर्ष का होना चाहिये । और पढे लिखे लड़के को पढ़ी लिखी लड़की विवाही जाय ।

और वाग्दान (सगाई) टीका चढ़ाना तथा द्विरागमन (मुकलावा) गवना करना, भी विवाहके साथ ही किया जाय ।

और व्याहमें रण्डी, आतसबाजी, फुलवाड़ी आदि कुरीति न की जांय ।

और कन्या विक्री न करना तथा ४०वर्षसे अधिक वय उमर के न विवाह किये जांय ।

और जन्मपत्री मिलाकर विवाह न किये जायँ । जन्मपत्री जगे कन्या, वरका रूप सम्पन्न, गुण संपन्न तथा वय संपन्न देख कर विवाह किये जायँ । पूरी सावधानीसे ।

॥ एक और बात ॥

स सन्धार्यः प्रयत्नेन स्वर्ग्गमक्षयमिच्छता । सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधर्मो दुर्बलेन्द्रियैः ॥ मनुः ॥

१६ संस्कारोंमें से विवाह एक बहुत बडा भारी १३ वां संस्कार है । सो विवाह आज कल लड़कोंके खेल समझ लेना बडी भूल है ।

विवाह करना वा होना १ खेलही न है । इस पर भाई संतानका समग्र भावी सुख रहना है । यदि हिन्दुओंके शास्त्रपर श्रद्धा है । या पूर्वजोंका रक्त आपके नसोंमें बहता है तो अवश्यही ब्रह्मचर्य्य बूटी अपने बच्चोंको पिलावें ।

वचन संग्रह ।

और भी शास्त्रोंमें बाल विवाह का निषेधार्थ
ऊनषोडशवर्षाय मप्राप्तः पंचविंशतिम् । यद्याधत्ते
पुमान् गर्भं गर्भस्थः स विपद्यते ॥ १ ॥
जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेंद्रियः । तस्मा-
दत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत ॥२॥ सुश्रुत ।

इन श्लोकोंका आशय यह है कि १६-२५-वर्षायु से कम स्त्री पुरुषोंको गर्भाधान न करना चाहिये । और रति भी न करना चाहिये । इससे यह सिद्ध हुआ कि बालविवाह नहीं करना चाहिये इसीसे यह श्लोक भी बालविवाह निषेधार्थ समझा जाता है ।

और आजकल, प्रायः देखनेमें आता है कि राज-पूताना (शेखावाटी मारवाड) प्रान्तमें मारवाडी भाइ " अष्टवर्षा भवेद् गौरी " इस बाबा वाक्यानुसार छोटी अवस्थाहीमें कन्या पुरुष का विवाह कर देते हैं- और द्विरागमन (मुकलावा) करनेमें पांच तथा सात वर्षकी देरी करते हैं ।

इतनी देरी पर मुकलावा होने से समय समय बहुत सी हानियें उठानी पड़ती हैं सो बुद्धिमान सज्जनोंको चाहिये कि आज काल कन्या का विवाह १२ वर्ष के ऊपर में ही करके एक वर्षके भीतर द्विरागमन करके अपनी ससुराल भेजदें।

इसीसे भविष्यत् में बहुत लाभ होगा। और अपनी सन्तान बलिष्ठ बनेंगी।

अब किस्सा लिखा जाता है—उपरोक्त राजपूताना इलाके के किसी ग्राम में एक दीन ब्राह्मण रहता था और उसके ७—सातवर्ष की एक अबोध कन्या बालिका थी—उसके समीप एक वैश्य धनी रहता था—वैश्य की स्त्री ने ब्राह्मण की स्त्री से कहा यदि तुम कन्या का विवाह करना चाहो तौ मैं अपने द्रव्य से करदूंगी—इतना सुनते ही उस ब्राह्मणीने व्याह करने को स्वीकार कर लिया।

और क्या था शीघ्रही शुभ लग्न दिखा कर एक ब्राह्मणके लडकेसे व्याह करही दिया।

व्याहके कुछ दिनके अनन्तर माता (विस्फोटक, सीतला) रोग में आकर वो लडका बिचारा काल का ग्रास हुवा, उस ब्राह्मण की ससुराल में भी ये समाचार फैला!

अस्तु.

इस कन्या के माता पिता बहुत दुःखित हुए । और अनेकानेक प्रकार विलाप करने लगे, उसका रोदन सुन कर वह—बालिकाने अपनी तोतली बोली में " माता से कह पूछा—अम्मा ! आज इतना क्यों रोती हो जी "

माता ने उत्तर में कहा बेटी जिस वरके साथ तेरा विवाह किया था—वह आज इस मृत्यु लोकमेंनहीं है ।

उस अबोध बालिका नें कहा—तब क्या हुआ वे नहीं हैं तो मैं तो हूँ न ! ! यह कह अपने खेल कूद में धुन लाई—

अब पाठक आप स्वयं इस बात को विचारें कि जिस व्याह संस्कार को अबोध बालक न जानें । वह क्या व्याह कहा जा सकता है सिवाय गुड्डा गुड्डियों के व्याह के और आप कौनसी उपमा देंगे ।

इस व्याह में पूर्वोक्त बालिका के वैधव्य जनित पातक का भार उसी वैश्य स्त्री को प्राप्त होगा या कन्या के माता पिता को इसका विचार आपके ही ऊपर निर्भर है ।

साधारण गृहस्थियोंके यहां आज पर्य्यंत यह प्रथा चली आरही है कि हमरीकी स्त्रियां कन्या के व्याह में यह गीत (मंगल) गाती हैं ।

गीत–बबाजी से कहूं बिनती–

"देश दीज्यो परदेश दीज्यो परंतु हमारी जोड़ी को बर हेरज्यो"।

पाठक! इस बात को ध्यान में लाइये–क्या–८–९–७–६–वर्ष की लड़की ऐसी प्रार्थना कर सकती है? यह सब परम्परा से बोध युक्त कन्या ही की प्रार्थना है। इससे सिद्ध है कि जब कन्या १२–वर्ष की होने पर व्याह होता था, ये सब प्रमाण युवावस्था ही के विवाह होना प्रतिपादित कर रहे हैं।

और भी देखिये कि, प्रायः अनेक रोगोंने भारत वर्ष मेंही अपना अड्डा जमा लिया है।

इसका कारण यह बालविवाह ही है। क्योंकि हम ऊपर कह आये हैं वही ब्रह्मचर्य्याभाव से ही नाना भांति के रोगों ने देशको घेर लिया है। और हमेशा के लिये डाक्टर–वैद्य–हकीम आदि का मुँह ताकना पड़ता है। और बहुधा आपने देखा होगा कि प्रायः युवतियों को भूतनी आदि बाधा होती है। यह भूतनी भी अनमेल विवाहही है–क्यों कि युवावस्था में अनमेल पति होने से ही उपरोक्त प्रमाद होताहै।

इस बालविवाह का मूल कारण वाग्दान सगाई ही प्रतीत होती है।

इससे व्याहसे पहले—२—४ वर्ष सगाई करना भी अनुचित सिद्ध हुआ ।

देखिये जरा ऋग्वेदादि पर दृष्टि डालियेगा तो आप स्वतः मानेंगे कि, बा॰ वि॰ अनुचित है

" युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः । ऋ॰ मं॰ ३ सू॰ ८ मंत्र ४

अर्थ—जो आदमी युवावस्था तक विद्याध्ययन कर विवाह करताहै वह विद्वानों में पूजित होताहै ।

पुनः "—पूर्वीरहं शरदः शश्वमार" अर्थ—तरुण पुत्रको तरुण पुत्री के साथ विवाह करने से अच्छी बलिष्ठ सन्तान पैदा होतीहै और दम्पति पूर्ण आयुको प्राप्त होते हैं अत एव विवाह तो युवावस्थाही में करना लिखा है ।

और यजुर्वेद के पन्द्रवें अध्याय मं॰ त्रिपनवेंमें भी यह ही लिखा है कि कुमार कुमारी पूर्ण वय प्राप्त करके विवाह करें ।

और अथर्व वेदके चौदहवें कांडमें विवाह विषय पूरा पूरा वर्णन किया है । पाठक ! जो ऊपर लिखे हुये प्रमाण या देश को अच्छा माने मनायेगा उसे १ बाजपेय यज्ञ करने का फल प्राप्त होगा ।

और इस किताब में तथा इसमें लिखे प्रमाणसे प्रतिकूल चलेंगे वे महाशय अपने बाल बच्चों ही के

नहीं वे देश भरके दुश्मन-(शत्रु) समझे जावेंगे और संप्रति होनेवाली हत्याओं का भार उन्हीं के शिर मढा जायगा !!!

पाठक वर्गो ! अब मैं आपकी सेवा में भारतीय ४४ विदुषियों के नाम लिखकर यह निर्णय (फैसला) आपही के ऊपर छोडता हूं कि प्राचीन काल में युवावस्था ही में लडके लडकियोंके विवाह होते थे ।

बाल्यावस्था में नहीं। और वर्तमान काल में अच्छे२ डाक्टरों का कथन है कि बा० वि० भारत में अधिक होने लगे तब से ही स्त्रियों के प्रदर आदि बीमारी उत्पन्न हुई हैं।

वीर विदुषी स्त्रियों के नाम-

विश्ववारा, ऐन्द्रमातृगण, वाक, अपाला, लोपामुद्रा, अदिति, यमी, शाश्वती, उर्वशी, घोषा, सूर्य्या, मैत्रेयी, गार्गी, देवहूती, मदालसा, आत्रेयी, भारती, लीलावती, खना, मीराबाई-कर्मवती, लक्ष्मीदेवी, प्रवीणा, मधुरवाणी, मोहनांगिनी, मल्ली, गुलबदनबेगम, राममल्ली, इन्द्रमुखी, माधुरी, गोपी, रसमयी, माधवी, आनन्दमयी, गंगामणी, प्रियंवदा, कुन्ती, सीता, तथा प्रातःस्मरणीय महाराणी पद्मिनी, द्रौपदी, राजराज्येश्वरी महाराणी विक्टोरिया, इत्यादि कैसी २ वीर बलिष्ट होगई हैं। इनमें प्रायः बहुत सी वैदिक समय

की हैं। जिन्होंने विवाह के पूर्व ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर विद्याध्ययन किया और उत्तम बलिष्ठ संतानों को उत्पन्न किया ।

जिनकी संतति आज दिन भी अपने गोत्र को साभिमान उच्चारण कर कर जिह्वा को पवित्र करती हैं–

यह उनहीं ऋषिपत्नियोंके पतिव्रत का फलहै–कि आजतक हम "अमुकगोत्रोत्पन्नोहं" इस वाक्य को श्रवण करते हैं ।

पर उनके चरित्र पर कुछ भी ध्यान न देकर गुड्डा गुड्डियों के से व्याह कर इसी क्षणिक सांसारिक सुखोंमें फँसे जाते हैं ॥

राजपूताना में आज दिन तक आयु का एक अंश कुमारी पनही में बिताना होता है । सो नई रीति न है। आगे भी भारत में यह रीति थी कि कुमारी गृहकार्य में दक्षा पूर्ण चतुर युवती विदुषी होकर विवाह करती थीं।

देखिये महाभारत में लिखा है कि जब कुंती राजा पाण्डुसे व्याही गई उस समय कुंती अनेक बार ऋतुमती हो चुकी थी ।

क्योंकि कुंतीके रूपसंपन्न की श्लाघा की गई है। और उठे कुचोंवाली और १६ वर्ष की कही गई है। देखो, आदि–प० अ० १२

और देखनाः–

श्रीमद्भागवतके दशम स्कंध में भी जगज्जननी रुक्मिणी के विवाह—का वर्णन है वहां भी रुक्मिणी श्यामा १६ वर्ष की, उठी कुचोंवाली कही है। इससे स्पष्ट है:—

आगे अनेक बार ऋतुधर्म होने पर ही व्याहते थे !

पाठक सोचें क्या रुक्मिणी कुंती के पितादि, नरक में गये होंगे। (जो कि ऋतुमती युवती कुमारियोंको व्याहा) नहीं ! नहीं ! ! !

वे धर्मशास्त्रानुकूल ही चलते थे। ऋतुमती दीप्ति-वाली ही का व्याह विहित है।

अत एव ! "शीघ्रबोधनष्टबोध" ही की लिखी बात साफ साफ मिथ्या झूंठी है।

अब रहा रजस्वला ने देखें पाप—लगे।

सो रजस्वला यह ईश्वरीय नियम है युवावस्थाका आरंभ है और देवताओं का पतित्व अधिकार पूरा करके मनुष्य योग्य विवाह काल है ! !

इसमें विचारे माता पिताका क्या दोष (गुनाह) है कि नरक जायँ—? ! ! !

असलमें बात यह है कि ये चिह्न 'यानी' पुरुषों के मूंछ दाडी का उत्पन्न होना—और स्त्रियों के स्तन, तथा रजोत्पन्न होना ही युवावस्था में प्रवेश करना द्योतक

करता है। और हम ऊपर लिख भी आये, परंतु पुनः लिखते हैं। " रतिपुत्रफला नारी " रति करना वा-पुत्रोत्पन्न करना ही व्याह करने से प्रयोजन है न कि विधवा कर बिठाना और विवाहमें कहा जाताहै, उन शरत के मंत्रों से भी वही प्रयोजन सिद्ध है। यथा- "दशास्यां पुत्रानाधेहि" भावार्थः-हे देव (त्वम्) तुम (इमाम्) इस विवाहित बहूको (सुपुत्राम्) अच्छे पुत्रोंवाली (कृणु) करो।

इससे सिद्ध है कि बिना रजोवती कन्या न रति के योग्य होती और न पुत्र करनेके।

इन सब प्रमाणों से जाना गया कि कन्या बिना रज के व्याह योग्य नहीं होती।

अब यह ध्यान रहे कि गत जनसंख्या रिपोर्ट को पढकर सुशिक्षित सभ्य समाज मद्राज बम्बई द्रावडी प्रभृति देश वासी जनोंने बा० वि० रोक देनेकी दृढ प्रतिज्ञा करली है कि-१८-२० से कम लडका और १२-१३ से कम लडकी न व्याहेंगे।

जनसंख्या रिपोर्ट में पढा यह था कि:-

भारतीय महिला--९४१२६४२ लडकियां १६ वर्ष से कम उम्र ही में विवाहित हुई।

और उनमें से ३०२४२५ लडकियां ऐसी हैं जो ६ वर्ष की उम्र पहिले भार्या बन चुकी हैं।

और १७७०० बिधवा हैं। १६५९ पतियों को छोड अन्यतर चली गई।

यह क्या ? यह बालविवाह ही की बदौलत है।

और जो बडी उमरके व्याह करते हैं उनको देखिये चीन, जापान, यूरोपादि देशों की आज क्या उन्नति हो रही है।

वे लोग प्रकृत्यनुसार चलते हैं और २०।२२वर्ष के अनन्तर व्याह करते हैं।

वे झूँठा भय नरक जाने आदिसे नहीं डरते हैं। यह विश्वास वे नहीं रखते कि, पण्डोंके कहे ही मोक्ष हो !! अन्यथा नहीं ? सर्वान्तर्यामी ईश्वर इन विश्वासों से छुडावे और यह कृपा करे भारत के नेताओं की बुद्धि में भी यह कथन जचें

और जो जो बा. वि. दिक अनिष्टकारिणी प्रथा हैं सो भारतवर्ष से दूर चलीजायँ और विद्या का सूर्य्य चमकने लगे।

तथा हम भारतीय संतान झूंठे विचारों को छोड के ईश्वर को स्मरण करें ! ! इति शम्।

अब कुछ थोडीसी कविता और लिख कर इस लेखको समाप्त करता हूं। आगे कुछ घट बढ़ करने को होगा तो फिर करा जायगा।

"कन्या पुकार"

टेकः--कन्या कररही हाहाकार ! गहरी द्रव्य कमानेवाले ! क्यों तुम पाप बढावनहार, आखिर ना है इसमें सार, मरती पृथवी इसके भार, ऐसा पाप कमानेवाले ॥ ॥ कन्या कर० ॥ १ ॥

कहाते मात पिता अरु भाई, जिनको शर्म जरा नहिं आई । बन सबके सभी कसाई, जीवित मांस बेचनेवाले ॥ क० ॥ २ ॥

लंगड़ा लूला अतिबेहाल, बुढे बालक का नहीं ख्याल, होना चाहिये मालामाल, कन्या कंठ कटानेवाले ॥३॥

ब्राह्मण अरु यह नाई, इनने तो करी सगाई, जिन्हें दया रती नहिं आई, मुफतमें माल उड़ानेवाले ॥ ४ ॥

कन्या जब विधवा होजाय, उठती मन में कैसी हाय, हिये में लगती मोटी लाय, हाथसे आग जलानेवाले५॥

कन्या किससे करे पुकार, लगी गहरी कलेजे धार, इससे बेहतर गेरो मार, लोभी वृथा रुलानेवाले६॥

टिकता पैसा है नहीं पास, करलो झूठा मन विश्वास । आखिर होय नरकका बास, सत्यानाश करानेवाले ॥ ७ ॥

होगा इसका अवश्य विचार, सुनलो ईश्वरके दरबार । वह तो करते न्याय विचार, झूठी कलप उठानेवाले ॥ ८ ॥

करते कन्याकी दलाली, यह कैसी रीति निकाली वह खोटी किस्मत वाली, व्यभिचार चलानेवाले ॥ कन्याकर रही हा० ॥ ९ ॥

"रसिक" यही करे अभिलाष, जिसकी तुम्हरे ऊपर आस। झूठा क्यों करते मन विश्वास, मोटा नाम धरानेवाले ॥१०॥ कन्या क० हा० गहरे द्रव्य कमानेवाले ॥

दोहा।

बालविवाह का न हुवे, जबतक यहां निवार ॥
करौ हजारौ यत्न पै, हरगिज हो न सु पार ॥ १ ॥
बालविवाह का ना हो, जब तक से निवारण ॥ बल
विधा अरु बुधि सबें, न आवत यह कारण ॥ २ ॥

श्लोक—इदं पुस्तकं पठित्वा तु वाजपेयफलं लभेत् ॥
ते नराः स्वर्गगा नित्यं कामसिद्धिफलप्रदाः ॥ १ ॥
द्विवारं तु पठेन्नित्यं मनसा ध्यायते नरः ॥
शुद्धचित्तः प्रसन्नात्मा सर्वपापैर्विमुच्यते ॥ २ ॥

दोहा—आयु बढे सुख सम्पदा, सोभा अति अति कांति ॥
वेद ज्ञान कालू कहैं, ओ३म् शान्ति शान्ति ॥ १ ॥

इति बालविवाह कुठार समाप्त ।

॥ नोट ॥

लीजिये ! किधर हैं देशप्रेमी महाशय !!!
विलम्ब न कीजिये ! शीघ्र लीजिये !!

वन्दे जिनवरम्।

हिन्दू कोड और जैनधर्म.

(डॉ. एच. एस. गोड एम. ए; डी. सी. एल;
एलएल. डी. एम एल. ए.
के जैनधर्म संबंधी विचारों की समीक्षा)

लेखक व प्रकाशक
श्रीवर्द्धमान ज्ञान प्रचारिणि समिति
इन्दौर.

ट्रेक्ट नं २

प्रथमावृत्ति
१०००

मूल्य दो आने.

वीर सं. २४४७
भाद्रपद शु. २

Lakshmi-Vilas steam Press, Indore.

भूमिका.

इस ट्रैक्ट के पढने से मुझे इसलिये बहुत आनन्द हुआ कि लेखक महाशय ने अति परिश्रम कर साधारण जनता को जैन धर्म के विषय में वास्तविक ज्ञान कराने का प्रयास किया है. मै बहुत ही आश्चर्य्य करता हूं कि अभी भी ऐसे लोग पाये जाते हैं जो ज्ञानी मान्य होकर के भी एकदेशी विचार मन में रखते हैं। मनुष्य की बुद्धि परिमित है इस कारण भ्रम के चक्कर में पडके वह सत्य बातों की पहचान रख नहीं सक्ता है। अन्य विषयों में निपुण होने के कारण ऐतिहासिक विषयों मे अजान रहना है। यही कारण है कि बारबार भूल हो जाती है। अनुसंधान और अन्वेषण की बाल्य अवस्था के कारण कितने ही पण्डित भ्रम में पडते थे और जैन धर्म के विषय में बहुत सी बातें अन्ट की सन्ट लगाते थे पर अब सब प्रकार से ज्ञानज्योति की किरण ऐतिहासिक विषयों पर डाली जाती है और प्रामाणिक बातें प्रगट होती जाती हैं इस लिये ज्ञानियों का भ्रम में पडना असह्य है और क्षमायोग्य नहीं है। पुरातत्व के द्वारा अब जो सामग्री हमें मिलती हैं उसके विपरीत कहनेमे केवल अपनी मूढता प्रगट करना है. सत्य की कसौटी में बिना परीक्षा किये किसी बात को कहना, स्वभाव की चंचलता प्रकाश करना है इस कारण गुणी मानी जनों को चाहिये कि अपने वचनो को पहिले न्याय और सत्यता से परख लेवे तब साधारण जनता के हित और ज्ञान के लिये प्रकाश करें. यदि परख नही है तो मौन रहना ही ज्ञानी का कर्तव्य है।

इस ट्रेक्ट में जैनधर्म की प्राचीनता पर संक्षेप से उत्तम प्रकाश डाला गया है और हम आशा रखते हैं कि इस के पढ़ने से भ्रान्ति में पतितजन अपने वचनों की फिर से परीक्षा करेंगे और सत्य के अनुयायि हो उन का परिवर्तन करेंगे ऐसा करना ज्ञानी के सतुचरित्र का लक्षण है। ज्ञानी अपने भ्रम को मानने में लज्जित नहीं होता है। ज्ञानवान का यह गौरव है कि वह ज्ञान के मार्ग में भूल की बातों को लेकर गांवडे की ढिठाई के सहित आगे नहीं बढ़ता है परन्तु जो भूल चूक हो भी जावे तो उनको त्याग करता जाता है और ज्ञान की श्रेष्ठता को प्राप्त करता है।

इसके उपरान्त यह भी विदित होना चाहिये कि ऊंचे पद धारण करनेवालों की जवाबदेही अधिक है। क्योंकि जो वचन उनके मुखसे निकलता है सो साधारण जनता के लिये मानो वेदवाक्य है. इस कारण ऊंचे पदके ज्ञानी सज्जनों को चाहिये कि अपनी बातों को सहसा न प्रगट करें परन्तु अधिक विचार और सावधानता से जन समाज पर प्रगट करें। जैनधर्म्म के विषय में पहिले पाश्चात्य के कई एक पंडितों ने भूल की थी पर उस समय ऐतिहासिक आविष्कार इतना न था जैसा अब है. इस कारण उनका दोष क्षमा योग्य है जहां जान बूझके भूल होती है तहां उसका क्या प्रतिकार है। कदाचित हो सक्ता है कि बिना जाने सुने कह दिया तो भी उचित नहीं है और ऐसी दशा में दोष मान लेना उदार मनका चिह्न है.

वेदकाल में जब पशुओं का संहार होता था और बलिदानके समय में रक्त का स्रोत नदी प्रवाह के समान बहता था तो कितने

सज्जन थे जो इस निरर्थक रक्तपात के विद्रोही हुए । अहिंसा परमो धर्म्मः की प्राचीनता वेद काल की प्राचीनता से कुछ न्यून नहीं है । Abbe Dubois आबे डूबाय इत्यादि विचारशील लेखकोंने समर्थन किया है कि जैनधर्म्मके सम्बन्धमें तो अब कुछ संदेह ही नहीं रहा । आधुनिक इतिहास और धर्म्म तत्व लेखक अब ऐसी भूल नहीं करते हैं कि जैनधर्म्म बौधधर्म्म की शाखा है । इस कारण उन सज्जनों से जो अब तक जैन धर्म्म को बौद्ध धर्म्म की शाखा मानते है विनती है कि अपनी बात फेर लेवें और सत्य को प्रगट करें ।

पाठकों से भी प्रार्थना है कि वे इस छोटी सी पुस्तक को पढकर उस की बातों को ध्यान में रख औरों को भी शिक्षा देवेंताकि उन का भी ज्ञान जैनमत के सम्बन्ध में सही और शुद्ध होवे ॥

I. W. Johary M. A. B. D.
Professor
Indore Christian College.
Indore C. I.

श्री वर्द्धमानायनमः

प्रकाशक का वक्तव्य.

श्रीवर्द्धमान् ज्ञान प्रचारिणि समिति की ओर से मैं आज अत्यंत प्रसन्नता पूर्वक "हिन्दू कोड और जैन धर्म" नामक ट्रेक्ट सुहृदय पाठकों की सेवामें समर्पित करता हूं। इस ट्रेक्ट का विषय एवम् लिखने का हेतु पाठकों को इस के नाम से ही समझ में आजावेगा तथा विशेष के लिये इस की भूमिका पर्य्याप्त होगी.

इस पुस्तक की रचनामें हमें श्रीयुत् जोहरीलालजी मित्तल एम. ए., एल एल. बी. से अत्यधिक सहायता मिली है। आप समिति को हरसमय उचित परामर्श एवम् भरसक सहायता प्रदान कर समिति के सभासदों का उत्साह बढाते रहते हैं. अतएव हम आपको कोटिशः धन्यवाद देते हैं। इस पुस्तक के लिखनेमें हमें इतिहास संबंधी बहुत कुछ मदद वयोवृद्ध श्रीयुत प्रो. जोहरी (कृश्चियन कॉलेज इन्दौर) से मिली है आपने जैन धर्म संबंधी बहुतसी प्राचीन खोज की है. अतएव हम तथा जैन समाज आपके आभारी हैं। श्रीयुत बाबू सूरजमलजी तथा कुछ ट्रेक्टों व मासिक पत्रों से भी हमें सहायता लेना पडी है अतएव हम बाबू साहेब तथा उन ट्रेक्टों व मासिक पत्रों के लेखक व संपादक महाशयों कोभी धन्यवाद देते हैं.

समिति का यह ट्रेक्ट नं. २ है या यों कहना चाहिये कि इस मानी का तो यह पहला ही प्रयास है। हमारी हार्दिक इच्छा है कि हम समय २ पर किसी उपयोगी विषय पर ट्रेक्ट छपवाकर सर्व साधारण को लाभ पहुंचावें। हम समझते हैं कि जैन समाज व पाठक इस की उपयोगिता पर ध्यान दे, हमारा उत्साह बढावेंगे ताकि यह समिति समय २ पर आपकी सेवामें उपस्थित हुआ करे.

हमें आशा है कि इस ट्रेक्ट के पढनेसे अजैन विद्वानोंका जैन धर्म की प्राचीनता व सिद्धांत संबंधी भ्रम दूर होजावेगा.

चूंकि श्रीदिगंबर जैन महासभाने जैन कानून (Jain Law) बनानें की आवश्यकता स्वीकार की है और हम भी जैन लॉ की आवश्यकता पर अधिक जोर देना आवश्यक समझते हैं, एतदर्थ यदि हमें समाज ने यथोचित सहायता दी तो हम आशा करते हैं कि हम जैन विद्वानों (श्रीयुत जुगमंदरलालजी जैनी एम. ए., बार एट लॉ, आदि) की सहायता से शीघ्र ही जैन कानून संग्रह कर समाजकी सेवामें उपस्थित कर सकेंगे। शेषशुभ.

मिति भाद्रपद शुक्ला २
वी. नि. स. २४४७
इन्दौर.

विनीत
सभापति.
श्रीवर्द्धमान ज्ञान प्रचारिणि समिति,
इन्दौर.

ॐ

डॉक्टर गौडके जैनधर्म पर आक्षेप

जैन धर्म के सम्बन्ध में अनेक किम् वदन्तियां अजैन विद्वानों में प्रचलित हैं यह बात विचारशील जैन विद्वानों से छिपी नहीं है, हालही में डॉ. एच. एम.गौड़, जैसे कानून जानने वाले विद्वान् ने भी अपने " हिंदू कोड " में जैनधर्म के सम्बन्ध में कुछ ऐसीही बातें लिखी हैं. जिनसे यह साबित होताहै कि पढे लिखे मनुष्य भी अज्ञानतावश कितनी भूल करसक्ते हैं. " हिन्दू कोड के "पेरेग्राफ नं. २९६, २९७, ३३१ मे डॉक्टर साहबने जैनधर्म के सम्बन्ध में जो विचार प्रगट किये हैं वे संक्षेप में इस प्रकार हैं:-

"जैनी हिंदुओं की शाखा है जो अभीतक हिन्दू हैं और जिनको हिन्दू कानून लागू होता है. वर्तमान में जैनी लोग वैश्य जाति की एक शाखा के नामसे जाने जाते हैं जिस के भेद ये हैं:-

अग्रवाल, महेश्वरी और जैनी पहिले दो कट्टर हिन्दू हैं और तीसरे (जैनी) हिन्दू धर्म से गिरे हुये हैं.................. जैनी हिन्दुओं से केवल सिद्धान्त में ही नहीं किन्तु व्यवहारमें भी भिन्न हैं वे मृतकको गाडकर कोई अन्तिम संस्कार नहीं करते ....जैनधर्म बौद्धधर्म का बच्चा है, जैनधर्म वास्तवमें बौद्धधर्म और हिन्दूधर्म दोनों के मिले हुये सिद्धान्तों से बनाहै, जैन धर्म ने अपने सिद्धान्त और धार्मिक रीतियां बुद्धधर्म से नकल की हैं

इत्यादि, इसी के सम्बन्ध में डॉक्टर गौड ने और भी ऐसी युक्तियां दी हैं 'जो अक्षर बहुत और अर्थ थोडा,' इस कहावत को चरितार्थ करती हैं उपर्युक्त पेरेग्राफ में लेखक ने शब्दाडम्बर की ओर इतना ध्यान दिया है कि उनका तर्क और उनके शब्दों का गूढार्थ सहसा साधारण मनुष्यों की समझमें आना कठिन है।

यों तो डॉक्टर साहब के आक्षेपों को हम कोई महत्व नहीं देते क्योंकि केवल भारतीय विद्वान् ही नहीं वरन योरोपियन विद्वानोंने भी जैनधर्म की प्राचीनता औरजैनसिद्धान्तकी श्रेष्ठता स्वीकार की है परन्तु भविष्य में विचारशील और विद्वान् लेखक फिर कभी जैनधर्म के सम्बन्ध में अपनी कलम उठाने के समय भ्रम में न पडें, इस हेतु से हम संक्षिप्त में डॉक्टर गौड के आक्षेपों का उत्तर देना आवश्यक और समयोपयोगी समझते हैं।

जैनधर्म, हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म का परस्पर सम्बन्ध।

सबसे पहिले हम जैनधर्म की स्थितिपर विचार करेंगे। जैन शास्त्र के अनुसार तो जैनधर्म अनादि माना गया है परन्तु तोभी यह आवश्यक प्रतीत होता है कि जैनधर्म की प्राचीनता पर केवल जैनागम प्रमाण ही न मानकर आजकल जिसे ऐतिहासिक दृष्टि कहते हैं उससे विचार किया जाय। यहतो निर्विवाद सिद्ध है कि प्रत्येक जाति और प्रत्येक देश के इतिहासकी एक सीमा होती है जिससे आगे इतिहासकार अपना मसाला केवल हस्तलिखित पुस्तकों से ही नहीं पा सक्ता, किन्तु प्राचीन हिंदू–शिला–लेख आदि व कभी २ पीढियों से चली आई हुई दन्तकथाओं पर भी उसे विश्वास करना पडता है. भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास

जाननेके लिये संस्कृत, वैदिक. प्राकृत आदि भाषाओं मे हमको बडी सहायता मिलती है। जिन्होंने भारतवर्ष का इतिहास पढा है वे जानते हैं कि भाषा और इतिहास दोनों ही दृष्टिसे वेद अत्यंत प्राचीन और महत्वशाली समझे गये हैं सच तो यह है कि इतिहास की दृष्टि से भारत की प्राचीन स्थिति बतलाने के लिये वेदोंसे प्राचीन कोई सामग्री नहीं है. इतिहास में वैदिक साहित्य आजसे लगभग ३१०० वर्ष का प्राचीन माना जाता है वेदों में सबसे पहिले ऋग्वेद लिखागया जिसमें लगभग १००० मंत्र हैं भारतीय इतिहास लेखकों की दृष्टिसे ऋग्वेद कमसे कम ईसाके १०००वर्ष पहिले बनाया गया होगा इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं.

ऋग्वेद में एक स्थानपर ऐसा मंत्र है:—

अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन्निदम् दयसे विश्वभवं भुवं नवा ओजियो रुद्रत्वदस्ति ॥

(अ २ अ ७ वर्ग १७)

ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थकरान् ।
ऋषभाद्या वर्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये ॥

ऋग्वेद अष्टक २ अध्याय ६ वर्ग १६

भावार्थ:—ऋषभादि चौवीस तीर्थकरों की, जिनकी प्रतिष्ठा तीनों लोकमें है. मै शरण लेता हूं।

यजुर्वेद मे भी अ. ९, म. २५ में लिखा है:—

वाजस्यनुप्रस्व आव भूप माच विश्व भुवनानि सर्वतः ।
सनेमिराजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिवर्धयमानो "अस्मैस्वाहः"

इसमें नेमिनाथ स्वामी (जैनियोंके २२ वें तीर्थंकर) को आहुति दी है।

ओर भी यजुर्वेद मे लिखा है

। ॐनमो अर्हतो ऋषभो ॐ ऋषभ पवित्र पुरुहूत मध्वर यज्ञपु नग्नं परमं माहसंस्तु वरं शत्रु जयंत पशुरिंद्रमाहुतिरिति स्वाहः

इस से सिद्ध होता है कि ऋग्वेद. यजुर्वेदके समय बल्कि उनसे भी पहिले जैन धर्म का अस्तित्वथा (यही बात हिन्दूधर्म के अन्य सर्वोत्तम ग्रंथकारो ने भी स्वीकार की है)

योग वशिष्ठ रामायण वैराग्य प्रकरण अ. १५ श्लोक ८ मे श्रीरामचन्द्रजी कहते है ।

॥ नाह रामो न मे वाञ्छा भावेषुच न मे मनः
शान्तिमास्थातुमिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा ।

अर्थात:— रामचन्द्रजी जिन समान होनेकी इच्छा करते है दक्षिणामूर्ति सहस्रनाममे कहा है ।

शिवोवाच·
जैनमार्गरतो जैनो जितक्रोधो जितामय.
मनुस्मृति मे कहागया है । .
" कुलादि बीज सर्वेपा प्रथमो विमल वाहनः "
चक्षुष्मान् यशस्वी चाभिचन्द्रोऽथ प्रसेनजित् ॥ १
मरुदेवीच नाभिश्च भरते कुल सत्तमाः ।
अष्टमो मरुदेव्यांतु नाभेर्जात उरुक्रमः ॥ २ ॥
दर्शयन् वर्त्म वीराणां सुरासुर नमस्कृतः
नीतित्रितयकर्तायो युगा दौ प्रथमो जिनाः ॥ ३ ॥
भागवतके पंचम स्कंधमे ऋषभावतार का वर्णन है ।

महाभारतके शान्ति पर्वमे लिखा है ।:—

" ऋषभादिनाम् महायोगि नामाचोर
दृष्टाश्च अर्हतादयो मोहिता "

इन सब बातोंसे सिद्ध होता है कि जैन धर्मके संस्थापक प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथही थे, न कि महावीर । यह बात हिंदू धर्म के प्राचीन ग्रंथकारोंने एक मतसे स्वीकार की है। महाभारतका काल इतिहासकी दृष्टिसे आजसे ३००० वर्ष पूर्व माना गया है, अब यह तो निर्विवाद सिद्ध होता है कि जैनधर्म हिंदूशास्त्र-कारोंकी दृष्टिसे ही कम से कम३००० वर्षका प्राचीन तो है ही।

प्रसिद्ध विद्वान लोकमान्य बालगंगाधर तिलकने सन् १९,१० में ३० नवम्बर को श्वेतांबर कानफ्रेन्समें व्याख्यान देते हुए तथा १३ दिसम्बर १९,१० के केसरी के लेखमें भी यह बिचार प्रगट किये हैं कि " वैदिक धर्म को भी 'अहिंसा परमो धर्मः' आदि सिद्धान्तोंके लिये जैनधर्मका ऋणी मानना चाहिये............... प्राचीन धर्मों में जैनधर्म वास्तव में बहुत ही पुराना धर्म है " । विद्वान् प्रोफेसर मेक्समूलर का मत है कि " विशेषतः प्राचीन भारतमें किसी धर्मांतरसे कुछ ग्रहण करके एक नूतन धर्म प्रचार करने की प्रथाही नहीं थी, जैनधर्म हिन्दूधर्मसे सर्वथा स्वतंत्र है उसकी शाखा या रुपान्तर नहीं "

डॉक्टर फ़ुहररने मथुरा के शिलालेखोंसे जो खोजकी उससे पता लगता है कि पूर्व काल में जैनी ऋषभदेव की मूर्तियां बनातेथे (देखो एपीग्रेफीका इंडिका व्हाल्यूम १—२ पृष्ट ३८९ व्हा २ पृष्ट २०६ –२०७) महावीर—स्वामीका मोक्ष काल ईसवी सन् से ५२६ वर्ष पहिले और पार्श्वनाथ का ७७६ वर्ष पहिले निश्चित है यदि ये जैन धर्म के प्रथम प्रचारक होते तो

उपर्युक्त शिलालेख में ऋषभदेव की मूर्तियाँ बनानेका जिक्र नहीं आता क्योंकि यह शिलालेख २,००० वर्ष पूर्व कनिष्क हुवष्क, आदि राजाओंके राजत्वकाल में खोदेगये हैं।

जैनियोंके २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ ऐतिहासिक पुरुष माने गये हैं। भगवद्गीताके परिशिष्ट में श्रीयुत बरवे स्वीकार करते हैं कि श्रीनेमिनाथ श्रीकृष्ण के भाई (Cousin) थे। जब कि जैनियों के २२ वें तीर्थंकर श्रीकृष्ण के समकालीन थे तो शेष २१ तीर्थंकर श्रीकृष्ण से कितने वर्ष पहिले होने चाहिये यह पाठक स्वयं अनुमान करसक्ते हैं.

इस विषयमें समय २ पर दिगम्बर जैन, जैनहितैषी आदि पत्रोंमें तथा अनेक ट्रेक्टोंद्वारा अजैनोंके भ्रमको दूर करनेका प्रयत्न किया गया है। इसलिये हम पाठकोंका विशेष समय नष्ट करना नहीं चाहते।

यह तो हुई हिन्दू धर्म की दृष्टिसे जैन धर्म की प्राचीनता:—

अब जैनधर्म और बौद्धधर्म के समय की तुलना कीजाय तो पाठकों को विदित होगा कि जैनधर्म बौद्धधर्म, का बचा है यह कहना बिलकुल असत्य है। यह तो सभी मानते हैं कि गौतमबुद्ध और महावीर समकालीन थे इतिहासकार यह भी मानते हैं कि महावीर का मोक्ष गौतम–बुद्ध के पहिले हुवा। गौतम बुद्ध ईस्वी सन् के ४८२ वर्ष पहिले स्वर्ग को प्राप्त हुये ऐसा कई शिला- लेखों के आधारपर इंपीरियल गेजीटीयर ऑफ इंडिया व्हाल्यूम२ में पृष्ट ५४ पर लिखा है कोई २ इतिहासकार तो यह भी मानते हैं कि गौतम–बुद्ध को महावीर स्वामीसे ही ज्ञान प्राप्त हुवा था. जो कुछ भी हो यह तो निर्विवाद स्वीकार

ही है कि गौतम बुद्धने महावीर स्वामीके बाद शरीर त्याग किया। यह भी निर्विवाद सिद्ध ही है कि बौद्ध धर्मके संस्थापक गौतम-बुद्ध के समय से पहिले जैनियों के २३ (तेईस) तीर्थंकर और हो चुके थे तब यह कैसे सम्भव है कि जैनधर्म बौद्धधर्म से निकला हो.

मि. विन्सेन्ट. ए. स्मिथ भारतके प्राचीन इतिहास में जैन धर्म के सम्बन्ध में बहुत सी महत्वकी बातें लिखते हैं। उनके मतानुसार महावीर तथा गौतम–बुद्ध दोनों बिंबसार और अजात-शत्रु के समकालीन रहे है महावीर के नवें पट्ट--अधिकारी स्थूल-भद्र जो नवें नन्दके मंत्रीथे महावीर निर्वाणसं. के २१५ या २१९ वर्ष पीछे मरे थे। और इसी वर्ष नंद को चन्द्रगुप्त ने मारा था।

चन्द्रगुप्त मौर्य, जैन था १२ वर्ष के दुष्काल में अंतिम-श्रुतकेवली भद्रबाहु के साथ मैसूरके अन्तर्गत श्रवणबेलगोलमें मुनी के तौर पर रहे थे और अन्त में वहीं पर उन्होंने प्राण त्याग किये। इस बातके लिये भी ऐतिहासिक तथा पौराणिक प्रमाण हैं।

राइस साहबका मत है की ईस्वी सन् से प्रथम १००० वर्षों में मैसूर में जैन मत का जोर रहा और वह वहां का मुख्य धर्म रहा है. यह भी माना गया है कि जैनी उत्तर से दक्षिण में गये और उन्होंने बौद्ध प्रचारकों के पहुंचने से ५० वर्ष पहिले महावीरके मतको फैलाया. कहते हैं कि अशोक के पोते संप्रति को सुहस्ति ने जैन बनाया था। रमराजतरंगिनीमें अशोक के जैनी होने का जिक्र है। राजा खार जैनी थे जिनका पता हाथी गुफा के शिलालेख से लगता है तथा शिलालेखों से ईस्वी सन् २ शताब्दी पूर्व जैन मंदिरों के होनेका भी पता लगता है।

प्रसिद्ध विद्वान प्रोफेसर जेकोबी ' सेक्रेडबुक्स ऑफदी ईस्ट' की व्हाल्यूम २२. ४५ की भूमिका में लिखते हैं कि यदि जैन-धर्म और बुद्धधर्म में से किसी एकने दूसरे धर्म की नकल की थी, तोवह नकल करने वाला कमसे कम जैनधर्म तो नहीं था। डॉक्टर जेकोबीने अनुसन्धान करके बौद्धधर्म की अपेक्षा जैनधर्म की प्राचीनता सिद्ध की है जिसका संक्षिप्त विवरण 'आउटलाइन्स् ऑफ जैनी-इम' के इन्ट्रोडक्सन् के पृष्ठ ३०-३२ पर लिखा गया है।

मि. वासुदेव गोविंद आपटे B. A. अपने व्याख्यान में जो कर्नाटक प्रेससे मुद्रित हुवा है कहते है कि महावीर जैन धर्म के संस्थापक नहीं थे। वे तो २४ तीर्थंकरों में से एक प्रचारक थे।

स्वत: अशोक मूलमें जैनधर्मी होकर पश्चात् बौद्धधर्मी हुवा ऐसा मि. टामस के मत का उल्लेख उस व्याख्यान में किया गया है. " बौद्धधर्म शून्य वादी है तो जैन स्याद्वादी है, बौद्ध नग्नताका निषेध करते है और दिगम्बर जैन नग्नताको अन्त: शुद्धता की साक्षी समझते हैं " हमारे हाथ से जीव हिंसा न होने पावे इसके लिये जैनी जितने डरते है उतने बौद्ध नहीं डरते, बौद्ध धर्मी देशमें मांसाहार अधिकता के साथ जारी है। बौद्ध आत्माको नित्य नहीं मानते जैन मानते हैं. कर्मबन्ध से मुक्त होकर जिस अवस्था में आत्मा अक्षय सुख को प्राप्त करता है उस अवस्था को जैनी निर्वाण मानते हैं बौद्ध शास्त्रानुसार निर्वाण आत्माकी शून्यता का नाम है इत्यादि बातों से मि. आपटेने स्थिर किया है कि जैनधर्म बौद्धधर्म से प्राचीन है। इस विषय में हम जैन ग्रन्थों

का आधार बताकर पाठकों का समय लेना नहीं चाहते. डॉ. सतीशचन्द्र ने स्याद्वाद महाविद्यालय काशीके महोत्सव पर भाषण देते हुये कहा था कि " बौद्धों के त्रिपाटिक जैसे धर्म ग्रन्थों में जैन धर्म के सिद्धान्तोंका उल्लेख मिलता है। और जैनियोंके धर्म ग्रन्थो में बौद्धोंके सिद्धान्तों का विवेचन (गुण दोष विचार) पाया जाता है "

(Mr. T. W. Rhys Davids) मि. टी. डबल्यू राइस डेवीड साहबने (इंसाइ-क्लोपीडिया ब्रिटेनिका व्हा. २९) नामकी पुस्तक में लिखा है " यह बात अब निश्चय है कि जैन-मत बौद्ध-मत से निःसन्देह बहुत पुराना है और बुद्ध के समका-लीन महावीर द्वारा पुनः संजीवन हुवा है, और यह बात भी भले प्रकार निश्चय है कि जैनमतके मन्तव्य बहुत ही जरूरी और बौद्धमत के मन्तव्यों से बिल्कुल विरुद्ध हैं ये दोनों मत न केवल प्रथम ही से स्वाधीन हैं बल्कि एक दूसरे से बिल्कुल निराले है।

(Dr A. Guernot of Paris) पेरिस के डॉ. ए. गिरनाट अपने पत्र ता. ३-१२-१९११ में लिखते हैं कि " मनुष्यों की तरक्की के लिये जैन धर्म का चरित्र बहुत लाभकारी है यह धर्म बहुत ही असली, स्वतन्त्र, सादा, बहुत मूल्यवान् तथा ब्राह्मण मतसे भिन्न है। और बौद्ध धर्म के समान नास्तिक नहीं है। (Jainism is a very original independent and systematical doctrine. It is more simple, more rich and varied than Brahmanical system and not negative like Budhism.)

जर्मनी के डा. जान हर्टल ता. १७-६-१९०८ के पत्र में लिखते है कि मैं अपने देसवासियों को दिखाऊंगा की कैसे उत्तम नियम और विचार जैनधर्म और जैनाचार्यों में है, जिनका साहित्य बौद्धों से बहुत बढकर है और ज्यों २ मैं जैनधर्म और उसके साहित्य को समझता हूं त्यों २ मैं उन्हें अधिक पसन्द करता हूं। ("What noble Principles and lofty thoughts are in Jain Religion and in Jain writers. Jain literature is by far superior to that of the Buddhists and the more I become acquainted with Jain religion and Jain literature the more I love them.")

हम समझते है कि इस विषयमें अधिक विवेचन अनावश्यक है, विचारशील पाठक उपर्युक्त आधारों से स्वयं परिणाम पर पहुंच सकेंगे कि डॉक्टर गौडका लिखना कितना मिथ्या और भ्रान्त है.

आत्मा के विकास तथा अहिंसाके सिद्धांत में तो जैनधर्म अद्वितीय है. यहबात कई अजैन विद्वानों ने मुक्त कंठ से स्वीकार की है. जैनियों का विश्वास है कि आत्मा का विकास यहां तक होताहै कि वह कर्म बंधनोंसे मुक्त होकर स्वयं परमात्म-पद को प्राप्त करलेता है. जैन सिद्धान्तानुसार सृष्टी अनादि है और ईश्वर का सृष्टी बनाने में कोई भाग नहीं है। "प्रमत्त योगात् प्राण व्यपरोपणं हिंसा" इस सूक्ष्म दृष्टी से अहिंसा तत्व का प्रतिपादन करनेवाले तथा 'अहिंसा परमो धर्मः' का मनन करने वाले यदि कोई हैं तो जैनी ही हैं जैनधर्म से यज्ञार्थ पशु हिंसा मदिरा-पान आदि विषयोंमें वैदिक धर्म ने बहुत कुछ सीखा है यह अजैन विद्वान (लोकमान्य तिलक आदि) स्वीकार करचुके हैं।

असली की अपेक्षा नकल किसीन-किसी अंशमें कमही रहती है. यदि जैनधर्म, हिंदूधर्म और बौद्धधर्म के सिद्धांतों की नकल करने वाला होता तो उसके सिद्धांत कभी अजैन विद्वानों को मुग्ध करने वाले अद्वितीय और मनन अथवा पालन करने योग्य न होते।

यहांतक तो हमने डॉक्टर गौडके उन आक्षेपोंपर विचार किया है जो पहिले भी कई बार अजैन विद्वानों तथा लेखकोंनें भ्रम वश होकर प्रकाशित किये थे. चूंकि भूल या गलती बार २ दोहराई जानेपर भी भूलही रहती है इसलिये हमने इस दुहराई हुई भूलको सुधारनेका प्रयत्न किया है। अब हम डॉक्टर गौड के ऐसे वाक्यों पर विवेचन करेंगे जिनका शब्दार्थ तथा भावार्थ कमसेकम साधारण बुद्धिके लोगोंपर भी डॉक्टर साहब की पंडिताई का सिक्का जमाने में असफल हुये हैं। आप लिखते हैं ' जैन जाति वैश्य जाति की एक मशहूर शाखा है ' आप इस जाति को अग्रवाल, महेश्वरी और जैनियोंमें विभाजित करते है और लिखते हैं कि पहिली दो अर्थात अग्रवाल, महेश्वरी कट्टर हिंदू है तथा तीसरी अर्थात् जैनी (Hindoo heretics) है "

डॉक्टर साहब के मतानुसार अग्रवाल, महेश्वरी और जैन ये वैश्य जाति की शाखाएँ हैं। यदि डॉक्टर साहबका यह मत है तो हम उन्हें बतलाना चाहते हैं कि वैश्य जाति की शाखाएँ केवल अग्रवाल, महेश्वरी, और जैनी ही नहीं हैं बल्कि अग्रवाल महेश्वरी के अतिरिक्त खंडेलवाल, ओसवाल, पोरवाल, लमेचू, आदि अनेक शाखाएँ हैं। ' जैनी ' यह कोई वैश्यजाति की शाखा विशेष का नाम नहीहै। अग्रवाल, खंडेलवाल आदि जो वैश्यजातियां जैनधर्म का मनन करती हैं व्यवहार में उन्हीं को

जैन जाति कहते हैं। डॉक्टर साहब को मालूम होनाचाहिये कि धर्म, जाति की शाखा नहीं होसक्ता। जैनधर्म के पालनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सभी जैनधर्मी हैं परंतु सभी वैश्यजाति में गर्भित नहीं हो सक्ते। वैश्य यह जाति या वर्ण विशेष का नाम है और "जैन" यह धर्म विशेषका नाम है। जैन ब्राह्मण, जैन क्षत्रिय, जैन वैश्य, अभी भी दक्षिणमें मौजूद हैं।

सच तो यह है कि जैनधर्म वास्तव में प्रथम क्षत्रियों ने अंगीकार किया था। जैनियों के अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर विदेहान्तरगत कुन्दग्राम के क्षत्रिय थे यह बात प्रायः सभी इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ श्रीकृष्ण के भाई थे, यह ऊपर दिखायाही गया है। श्रीकृष्ण क्षत्रिय थे, यह बात किसीसे भी छिपी नहीं है. इसी प्रकार जैनियों के इतर तीर्थंकर भी क्षत्रिय कुल दीपक थे. यह श्रीयुत वर्तेने उनकी भगवद्गीताके परिशिष्ट में स्वीकार किया है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि जैनधर्मपर क्षत्रियों का विशेष अधिकार रहा है और आज भी जैनी क्षत्रिय मौजूद हैं ऐसी हालत में 'जैनी वैश्य जाति की शाखा हैं' यह युक्ति कितनी निर्मूल और हास्यास्पद है इसको पाठक स्वयं विचार करें।

सचतो यह है कि हिन्दू कोड के लेखक ने इस विषयपर विचार ही नहीं किया. इसी विचार हीनता का यह परिणाम है कि डाक्टर साहब ने लिखमारा कि जैनियोंमें मुर्दे गाडे जाते हैं.

जैनी हिन्दू हेरेटिक्स (Hindoo heretics) है या नहीं यह बात भी विचार करने योग्य है.

'हेरेसी शब्दके उपयोगसे डॉक्टर साहब का यह मत होना चाहिये कि जैनियोंने अपने स्वाभाविक धर्म (अर्थात हिन्दूधर्म) को छोडकर

उसके विरुद्ध सिद्धांतों को स्वीकार किया है परन्तु इन्हीं शब्दों के कुछ ऊपर डाक्टरसाहब लिखते हैं कि जैनी अभीतक हिन्दू हैं. और उनको हिन्दू धर्मशास्त्र (Law) लागू होताहै. हम नहीं समझते कि "Who still remain Hindoos" और हिन्दू हेरेटिक्स (Hindoo heretics) इन दोनों वाक्यों में लेखक सादृश्य समझते हैं अथवा विभिन्नता ! पेरेग्राफ २०.७ वें में डॉक्टर साहब लिखेत हैं "कि जैनी हिन्दुओं से केवल सिद्धांत में ही नहीं वरन व्यवहार में भी भिन्न हैं". यदि डॉक्टर साहबके सिवाय और लेखक ऐसी परस्पर विरोधकारी बातें लिखता तो पाठक यह कह देते कि लेखक तर्क और कानून की पाबंदी से शून्य है किंतु हिन्दू कोडके लेखक के नामके आगे जो अनेक उपाधियां लगी हैं उन्हें देखकर हम ऐसा कहने का साहस नहीं करसक्ते, हमारे विचारमें कदाचित लेखकने विषयकी गंभीरता पर और अपनी उक्तियों के भावार्थ पर उतना ध्यान नहीं दिया जितना कि एक सुयोग्य लेखक को किसी भी विषयपर कलम उठाने के पहिले देना चाहिये.

हम लेखक पर कोई दोषारोपण करने की अवश्यकता नही समझते । किस किस पर दोषारोपण किया जाय क्योंकि जैनी लोग शताब्दियोंमें ऐसे आक्रमण सहन करते आये हैं.

जैनधर्मपर डॉक्टर साहब का यह हमला पहिला नहीं है इतिहास बतलाता है कि सातवीं शताब्दि में दक्षिण भारत में जैनधर्म पर आक्रमण हुए और जैनियों का घात किया गया. इसवी सन् ११७४–७६ में गुजरात के अयजदेव नामक शैव राजानें जैनों का बडी निर्दयता से वध करवाया और उनके गुरु को मरवाया.

८००० हजार जैनों को जिन्होंने शैव होने मे इन्कार किया, शूलीपर चढवाकर मरवा डाला. पल्लव राजा महेंद्र वरमन ने जोआरंभ में जैन था शैव होकर अरकाट में एक बडे भारी जैन मठ को बर्वाद कर, उसकी जगह शैव मंदिर बनवा दिया इत्यादि ऐतिहासिक घटनाओं को दृष्टि में रखते हुए यह कहना पडता है कि जैन धर्म पर निर्मूल दोपारोपण करनेवाले लेखकों का आक्रमण पूर्वकाल के आक्रमण की अपेक्षा बहुतही सौम्य तथा साधारण है.

पर दु:ख यह है कि यह सौम्य आक्रमण इस विद्या बुद्धि प्रधान समय में उन लोगों के द्वारा होता है जो कहते है कि हमें सब धर्म एक समान आदरणीय प्रतीत होते है।

कोई सज्जन तो जैन धर्म पर नास्तिक होनेका दोपारोपण करतेह इसके उत्तर में हम उनका ध्यान केवल श्रीयुत आपटे के व्याख्यान की ओर ही आकर्षित करना उपयुक्त समझते हैं. पाणिनि ऋषीके इस मूत्र के अनुसार कि············"पर लोको ऽस्तीति मतिर्यस्यास्तीति आस्तिक: परलोको नास्तीति मतिर्यस्या स्तीतिनास्तिक:"

जैनी परलोकका अस्तित्व मानने वालेहं; तथा स्वर्ग, नर्क; व मृत्यु इन तीनों को ही मानते हैं अतएव जैनी नास्तिक नही हैं.

'ईश्वर सृष्टि का कर्ता, शास्ता और संहार कर्ता न होकर अत्यंत पूर्णावस्था को प्राप्त हुवा आत्मा ही है केवल इसी सिद्धांत से यदि जैनियों पर नास्तिकता का आरोप लगाया जाता है तो हम पाठकों का ध्यान भगवद्गीता के पंचम अध्याय के निम्न लिखित १४-१५ श्लोकों की ओर आकर्पित करते है।

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफल संयोगम् स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ १४ ॥
नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जंतवः ॥ १५ ॥

उपर्युक्त कथन के अनुसार श्रीकृष्ण पर भी नास्तिकता का दोषारोपण करना पडेगा. इस विषयमें हम पाठकों का ध्यान "Jainism not Atheism" by H. Warran. व आत्मानंद जैन सोसायटी का ट्रेक्ट नं. ३ — जैनमत नास्तिक मत नहीं है की ओर आकर्षित करते हैं.

" जैनियों में मुर्दे को गाड़कर कोई अंतिम संस्कार नहीं करते " डाक्टर साहब की यह उक्ति उनकी विद्वत्ता और अनुभव का पूर्ण परिचय देती है हम समझते हैं कि इस उक्ति को खंडन करने के लिये हमें पाठकों का समय लेने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रत्येक ग्राम के निवासी, जहां जैनी रहते हैं, यह जानते होंगे कि जैन मृतक का दाह-संस्कार करते हैं.

डॉ. गोड़के, गाड़ने शब्द का प्रयोग तो केवल हास्यास्पद ही नहीं वरन् लज्जास्पद भी है. " प्रत्यक्षं किमप्रमाणम् " की उक्ति के अनुसार हम डाक्टर साहब से अनुरोध करते हैं कि वे किसी जैन शव के साथ स्मशान में जाकर अपनी आंखों से अपने कथन की निर्मूलता देखलें. जैनी मात्र के लिये ऐसे वाक्य लिखना उतना ही सत्य है जितना यह कहना कि ' ब्राह्मणों में अथवा क्षत्रियों में मुर्दे गाड़े जाते हैं '

अंतिम संस्कारों के विषयमें हम जैनियों के ' क्रियाकोष ' नामक ग्रन्थमें निम्नलिखित व्यवस्था पाठकों के सामने रखते हैं.

क्रियाकोष.

जन्म मरण क्रिया पेज नं. ९५-९६

थानें जैन धर्म प्रतिपाल, जे शुभ क्रिया अशूटी चाल,
तिनहिं भूल मत करियो कोय, जो आगम दृढ हिरदे होय ॥६५॥
पूरी आयु करि जब जिय मरें, ता पीछें जैनी इम करें ।
घड़ी दोयमें भूमि मशान, ले पहुंचे परिजन सब जान ॥ ६९ ॥
पीछे तास कलेवर मांहि, त्रस अनेक उपजे शक नाहिं ।
मही जीव विन लखि जिह थान. सूको प्रासुक ईंधन आन ॥७०॥
दग्ध करहिं आवें निज गेह. उष्णोदक स्नान कराहिं ।
वासर तीन वीत हैं जब, कछु इक शोक मिटन को तब ॥ ७१ ॥
स्नान करवि आवें निज गेह, दर्शन करिनिज घर पहुंचेह ।
निज कुल के मानुष जे थाय, ताकेघर तें असन लहाय ॥ ७२ ॥
दिन द्वादश वीते हैं जबे, जिन मंदिर इम करि हैं तबे,
अष्ट द्रव्यतें पूज रचाय, गान नृत्य वाजित्र बजाय ॥ ७३ ॥
शक्ति जोग उपकर्ण कराय. चंदोवादिक तासु चढाय ।
करवि महोच्छव इह विधि सार, पात्र दान दे हर्ष अपार ॥ ७४ ॥
परिजन पुरजन न्योति जिमाय, यथा शक्ति इम शोक मिटाय ।
अरु परिजन सूतक की बात, सूतक विधिमें कही विख्यात ॥७५॥
ता अनुसार करें भविजीव, हीन क्रिया को तजो सदीव ।
इह विधि जैनी क्रिया कराय, अवर कुक्रिया सबहि तजाय ॥७६॥

अब प्रश्न केवल यह है कि ' क्या जैनी हिन्दू हैं और हिन्दू कानून के पाबंद हैं?' ऊपर जो विवेचन किया गया है उससे पाठकों को बोध होगा कि जैन धर्म स्वतंत्र और प्राचीन धर्म है। हिन्दू धर्म, जिसे सनातन धर्म भी कहते हैं उससे जैन धर्म का कोई विशेष संबन्ध नहीं है. यदि हिन्दू शब्द का अर्थ हिन्दू धर्म

अथवा वैदिक धर्म के मानने वाले हैं तो जैनी हिन्दू नहीं हैं, यदि, हिन्दू शब्द से प्रयोजन आर्यों अथवा अहिंसक धर्मावलंबी भारत वासियों से है तो जैनी अवश्य हिन्दू हैं अर्थात जैनी हिन्दू हैं यह बात एक प्रकार से सत्य और एक प्रकार से असत्य है. सत्यता, असत्यता हिन्दू शब्द के अर्थ पर ही निर्भर है.

कानून का अवलंबन विशेष कर धर्म व जातीय रीति रिवाजों पर होता है जबकि जैनधर्म और जैन जाति की रीति रिवाजें स्वयं डाक्टर साहब के मतानुसार हिन्दू धर्म और हिन्दू रीति रिवाजों से भिन्न हैं तो जैन कानून और हिन्दू कानून स्वभावता ही अलग २ होने चाहिये। जैनियों में कानून के चार मुख्य ग्रन्थ हैं भद्रबाहूसंहिता, अरहन्नीति, वर्द्धमानूनीति और इन्द्र-नंदीजिनसंहिता।

हम यह कहे बिना नहीं रह सक्ते कि इस विषय में अधिक दोष जैनियों का ही है, क्योंकि इन्होंने इस ओर जैसा चाहिये वैसा ध्यान नहीं दिया है।

डॉ. टामस ने जे एच नेलसन्स " साइन्टिफिक स्टडी ऑफ हिन्दू लॉ." नामक ग्रन्थ में लिखा है कि यह कहना काफी होगा कि जब कभी जैन धर्म का इतिहास बनकर तय्यार होगा तो हिन्दू कानून के विद्यार्थी के लिये उसकी रचना बड़े महत्व की होगी क्योंकि वह निःसंशय यह सिद्ध कर देगा कि जैनी हिन्दू नहीं हैं और वे कायदे से हिन्दू (संस्कृत) कानून के पाबंद नहीं ठहराये जा, सक्ते हम समझते हैं कि इन प्रमाणों से डॉ. साहब यह बात अच्छी तरह समझ जावेंगे कि उनका लिखना भ्रमपूर्ण है. और उससे एक महत्वशाली समाज के साथ अन्याय होता है. तथा जिस न्याय के लिये, इतना प्रयत्न कर रहे हैं उसी न्याय

के नाम पर वे अपने ग्रन्थ मे से सब वाक्य जो जैन धर्म के लिये अनादर और अन्याय कर रहे हैं, शीघ्र निकाल देंगे. हम यह मानते हैं कि डॉ. साहब ने जो कुछ लिखा होगा वह किसी द्वेष भावसे नहीं लिखा होगा, किन्तु पाश्चात्य और पौर्वात्य विद्वानों के भ्रमसे कुछ दिनों पहिले जैन धर्म के सम्बन्धमें जो अज्ञानता पूर्ण साहित्य प्रकाशित हुआ है उसी का वह फल होगा और डॉ. साहब ने अपनी युवावस्था में पढे हुए उस साहित्य के आधारपर ही अपने ग्रथ में कलम चलाई होंगी. परन्तु करीब २५ वर्षों में अब इतना अधिक साहित्य इस सम्बन्ध में प्रकाशित हो चुका है कि उससे साफ २ यह सिद्ध होता कि:—

१ जैन धर्म किसी भी धर्म की शाखा न होकर स्वतंत्र और प्राचीन है.

२ बौद्ध धर्म जैनधर्म से पीछे निकला है.

३ जैनधर्म नास्तिक नहीं है.

४ जैनधर्म की रीति रिवाज स्वतंत्र. पवित्र और आर्यधर्मों के अनुसार ही है.

५ उसके अनुयायी किसी अन्य धर्म के कानून के पाबन्ध नहीं हो सक्ते.

आशा है कि डॉ. साहब भी हमारे लेखपर ध्यान देकर अपनी भूल सुधार लेने की कृपा करेंगे.

यदि इस सम्बन्धमें डॉ. साहब को और कुछ प्रमाणादि जानने की आवश्यकता हो तो इस पुस्तिका की लेखक तथा प्रकाशक. समिति सहर्ष उनकी शंकाओंका समाधान करनेको सर्वथा प्रस्तुत है ।

सार्वजनिक-हित

पहिला भाग

लेखक—

श्री मुनिमाणिक

प्रसिद्धकर्त्ता

जैनमित्र-मंडल सभा—मांडल

द्रव्यसहायक

सेठ केसरीचंद दीपचंद
नया बाज़ार अजमेरवाले

पं० अनन्तराम शर्मा के प्रबन्ध से
सेठ रामगोपाल पं० अनन्तराम के सद्धर्मप्रचारक प्रेस
देहली में मुद्रित।

प्रथमावृत्ति ५०० प्रति } वीर संवत् २४४१ सन् १९१५ { कीमत =) प्रति

प्रस्तावना।

जैनी लोगों का क्या मन्तव्य है वो जैन और अन्य बंन्धु जानकर आत्महितैषी हो कर इस लोक में सुख मिलावें और परलोक में सुख पावे इसलिए सार्वजनिक हित लिखा है जो ग्रन्थ कितनेक भाग में छपेगा। हमारे सब भाई इस ग्रन्थ को अच्छी तरह से पढ़ कर उसका लाभ उठावें।

चारों भाग छपने की तैयारी पर है कीमत =) प्रत्येक भाग की है।

समाधि--शतक संस्कृत श्लोक हिंदी भाषान्तर के साथ छपता है कीमत ≶) है।

आदिनाथचरित्र, पांडवचरित्र छपने का है कीमत १०० पृष्ट के ॥) आठ आना रहेगी। पुट्ठे पर लिखे पते से मिल सकेगी।

लिखनेवाले की माफिक छपानेवाले भी परमार्थ के लिये ही कार्य करते हैं। इसलिये प्रत्येक विद्याप्रेमी भाइयों को उसमें द्रव्य सहाय करनी चाहिए।

मुनिमाणिक

जैन-धर्म ।

प्रश्न—जैन धर्म किस को कहना ?

उत्तर—सब जीवों का भला करना, दया रखनी, क्षमा रखनी, शान्ति धारण करनी, पीड़ा देने वाले पर क्रोध नहीं करना, हितशिक्षा श्रवण करनी, कटु वचन न बोलना, मन निर्मल रखना, कुसंगति न करना, मा बाप बड़े भाई राजा अमलदार गुरु महाराजों की आज्ञा माननी, अपने दूषणों को दूर करना, अज्ञानता से प्रमादसे विस्मृति से जो भूल होवे दूसरे को हानि होजावे तो एकान्त में बैठ कर उसका पश्चात्ताप करना, और फिर भूल न होवे ऐसा दृढ़ निश्चय करना, किसी धर्म वाले की निन्दा न करना, नीच जाति का भी तिरस्कार न करना, अहङ्कार को हटाना, अनाथ अपंग रोगी पीड़ित दुःखित मनुष्य पशु पक्षी जन्तु को सताना नहीं, सहायता देकर बचाना, अपने जीव को कष्ट पड़े तो सहन करना किंतु दूसरे को पीड़ने का विचार भी न करना, अनीति अधर्म से धन न लेना, पराई वस्तु बिना पूछे लेना नहीं, बल जबरी से कोई भी चीज़ न लेना, लुटेरे बदमाशों दुराचारियों का सहवास न करना, वक्त व्यर्थ न गंवाना, जूआ न खेलना, पानी में रात दिन न खेलना, भांग, गांजा, चुरट, हुक्का, बीड़ी, मदिरा, (दारु) अफीम वगैरह नशा की वस्तु की टेव न रखना, तास, सोगटे (चौपड़) बाज़ों में वक्त न गंवाना, कपट न करना, विश्वासघात न करना, किसी की गुप्त बातको प्रकट

न करना, अन्धे लंगड़े काने को कटुवचन न कह कर दुःख न देना, ऐसे जो उत्तम काम हैं उनके करने में तत्पर होना और जिसमें दूसरे को दुःख होवे निन्दा होवे राज्य दण्ड होवे दुराचार बढ़ आवे आपस में क्लेश होवे धर्म की हानि होवे पाप की वृद्धि होवे वैसा भी अनर्थ अकार्य अनाचार छोड़ना चाहिये।

प्र०—ऐसा उपदेश आप कहां से करते हो, क्या आप सर्वज्ञ हो?

उ०—मैंने जो शास्त्र जैनमत के पढ़े हैं और सद्गुरु महाराज की सेवा की है, परमात्मा का ध्यान किया है उस कारण से और मेरे हृदय में से अज्ञानरूपी अन्धकार दूर होने से सम्यग्ज्ञान रूप प्रकाश होने से मेरे ये वचन निकलते हैं अनुभव में भी उसका अच्छा फल मेरे को मिल रहा है। जो लोग जैन नहीं हैं ऐसे वे भी भीतर से ऊपर लिखे हुए गुणों को पसन्द करते हैं और दुर्गुणों को छोड़ने को चाहते हैं। जिससे मैं अल्पज्ञ होने पर भी मैंने यह ग्रंथ लिखने की चेष्टा की है जो महाशय उसको अच्छा माने सो ग्रहण करे और उसमें अनुचित देखे वह छोड़ देवे तो और भी अच्छा है क्योंकि सज्जन और हंस समान हैं—

सज्जन सद्गुण धारकर, दुर्गुण करत है दूर।
हंस क्षीर का पानकर, पानी राखत दूर॥

गृह्णाति सुज्ञः सुगुणान् स्वचित्ते, विमुच्य बुद्धया कटुदुर्गुणान् यत्।
यथैव हंसश्च जलं विमुच्य यः क्षीरपानं विमलं विधत्ते॥

प्र०—आपका सद्बोधदाता कौन है और उसका चरित्र और उपदेश क्या है ?

उ०—मेरे सद्बोधदाता इस दुनियां के उत्तम पुरुष हैं और उन्होंका चरित्र और उपदेश जगत् में हितोपदेश रूप होने से सर्वव्यापी हो रहा है, जहां २ आप सद्गुण परोपकार सज्जनता निस्पृहता क्षांति शांति जिस में देखें वे उत्तम गुणधारक मेरे गुरु हैं सद्बोधदाता हैं और जिसके लेख में वा उपदेश में हितोपदेश दीखे वे लेख सभी मेरे शास्त्र हैं।

प्र०—हितोपदेश दुराचारियों को भी फायदा पहुंचा सक्ता है या नहीं ?

उ०—पहुंचा सक्ता है किन्तु समय ज्यादा चाहिये, जैसे शरीर में रोग बहुत फैल रहा होवे तो उत्तम वैद्य भी धीमे २ दूर करता है किन्तु रोगी को धीरज धारण करना चाहिये, जो रोग असाध्य कहने में आते हैं वे भी दैविक औषधों से दूर होजाते हैं ऐसी ही रीति से ऐसे पापी दुराचारी अधर्मी अकृत्य करने वाले को भी आशा (यक़ीन) होजाने से सद्गुरु के वचन और उनको शास्त्र हितकारी होते हैं और उनको पवित्र बनाकर सन्मार्गमें लाकर पूज्य पदवी तक पहुँचा सक्ते हैं।

प्र०—आस्था श्रद्धा यक़ीन विश्वास सब मज़हब वाले पुकारते हैं किन्तु सबके वचन में भिन्नता होने से आस्था

कहां रक्खे, और ऐसी आशा रखने से एक बाड़े में पशु की तरह बन्धन में आजाते हैं और धर्म के नाम पर परस्पर झगड़ा करते हैं, युद्ध करते हैं, गालियाँ देते हैं, निन्दा के पुस्तक छपाते हैं और अनेक झूठ कपट वग़ैरह पाप करते हैं जिससे हमारे जैसे सामान्य बुद्धि वालों को कहीं भी श्रद्धा नहीं होती ।

उ०—आपका कहना ठीक है । मेरे को भी अनुभव हुआ है । इस दुनियां में ऐसे अनर्थ करने वाले अज्ञानता से किं वा दुर्बुद्धि से किं वा स्वार्थभ्रष्टता से ऐसे बाड़े बांधकर बिचारे भोले लोगों को फँसाते हैं, उनकी संपत्ति छीन लेते हैं, परस्पर झगड़ा कराते हैं, आप डूबते हैं औरों को डुबाते हैं जिससे श्रद्धा नहीं होती तो भी एक सुगम मार्ग है कि जहां दूसरे की निन्दा न होवे, परमार्थ का पोषण होवें, सद्वर्त्तन की रीति होवे वहां परीक्षा कर सहवास कर अपनी श्रद्धा रखने में कोई नुकसान नहीं है ।

प्र०—परीक्षा ज्ञान विना नहीं हो सकती तो पहिले ज्ञान पढ़ना चाहिये तो ज्ञान कैसे पढ़ना और क्या ज्ञान पढ़ना ?

उ०—अपने मा बाप किं वा परमार्थी पुरुष वा राजा ने जो पाठशाला बनाई है वहाँ लिखना पढ़ना गणित भूगोल इतिहास, ज्योतिष (खगोल) पढ़ना और बारह वर्ष से लेकर २० वर्ष की उम्र तक सृष्टि का अनुभव करना गुरु नाम धारक महात्माओं से परिचय में आकर अपनी

निर्मल बुद्धि से उन सब बातों का निर्णय कर पीछे श्रद्धा करना चाहिये ।

प्र०—आपकी उम्र कितने बरस की है और आपने क्या अनुभव प्राप्त किया है ? ।

उ०—मेरी उम्र इस समय ५२ बरस की है और मैंने हिंद में बम्बई से लेकर कलकत्ता आगरा देहली तक बम्बई से सूरत, सूरत से नासिक तक १२ बरस साधुपने में रहकर यह अनुभव मिलाया है और ३० बरस की उम्र तक मारवाड़ गुजरात दक्षिण वराड़ में फिर कर अनुभव किया है जिससे अनेक धर्म वालों से उनके गुरुओं से बात चीत का मौक़ा मिला है और सहवास होजाने से मेरा निश्चय हुआ है कि दुनियां में जिसके हृदय के चक्षु खुल गये हैं और रात दिन ज्ञान ध्यान में जिस की आत्मशक्ति फैल रही है उन सभी सज्जनों का एकही मन्तव्य है कि जीवों की रक्षा करना हितकारक मित और सत्य वचन बोलना चोरी त्यागना ब्रह्मचर्य की प्रधानता रखनी परिग्रह की मूर्छा छोड़कर परमार्थ करना स्त्री पुरुषों को परस्पर परिचय कम रखना ज्ञान को प्रधान स्थान देना नीच जाति का अपमान न करना दुर्बल को भी न सताना ।

प्र०—फिर वे लोग आख़िर में सब धर्म वाले एक क्यों नहीं होजाते और दुनियां में धर्म नाम से जो नाश होता है वह क्यों दूर नहीं करते ?

उ०—इस समय अपने पुण्योदयसे नामदार न्यायी पवित्र अंग्रेज़ सरकार का राज्य हुआ है और जगह जगह पाठ-

शाला खुल रही हैं और छापाखाने में हर एक धर्म की पुस्तकें छपी हुई मिलती हैं उस दिन से लोग परस्पर के उत्तम अभिप्रायों को देख कर परस्पर सहवासकर शान्तिगुण धारक हुए हैं और ऐक्यता करने को चाहते हैं तो भी विद्वान् से कुपढ़ ज्यादा होने से और कुपढ़ों से भिन्न हो जाने से वे लोगों का विशेष अहित होने का संभव होने से जाहिर में ऐक्यता का वचन विद्वान् नहीं बोलते किंवा अपना साफ़ साफ़ मत नहीं देते तो भी मेरे अनुभव से मेरे को मालूम होता है कि भविष्य में मतान्तर के झगड़े कम होते जावेंगे और ज्यूं ज्यूं विद्या बढ़ेगी त्यूं त्यूं शान्ति ज्यादह फैलेगी और जाहिर में भी स्पष्ट वचनें में ऐक्यता की बात कहेंगे यहां पर भी मुमुक्षुओं को धीरज रखना चाहिये ।

प्र०—मुमुक्षु शब्द का अर्थ आप खुले शब्दों में बतावें ।

उ०—जिसको आत्मज्ञान है वह पुरुष मुमुक्षु कहा जाता है और आत्मज्ञान होने से अपनी इंद्रियों को अपने वश रखता है और इंद्रियों के वश होने से स्वपर का कल्याण कर सकता है उत्तम गुणों को धारण कर सकता है क्रोध उससे दूर भागता है अहंकार विमुख होता है कपट नज़-दीक में नहीं आता लोभ दूर ही रहता है तृष्णा समीप नहीं आती वह पुरुष इस जगत् में पूज्य होता है और संपूर्ण आत्मज्ञान प्रकट हो जाने पर जीवन्मुक्त सर्वज्ञ केवली कहलाता है उसका वचन सर्वमान्य होता है नि-रीह (निःस्पृह) होने से दुनियाँ के लोग उस के चरण में

शीश झुकाते हैं लोग रात दिन उस की उपासना करते हैं उस के नाम का जाप करते हैं वह पुरुष जगदीश कहलाता है उस के नाम से उपद्रव नाश होते हैं उस के वचन श्रवण करने से संसार में जो आधि व्याधि उपाधि पीड़ा देती है सो सब दूर हो जाती हैं उस की माता रत्नकुक्षी रत्नप्रसु रत्नगर्भा कहलाती है उस को लोग अपना बान्धव, मित्र, त्राता, धाता पालक कहते हैं उस को उत्तम उपमायें दी जाती हैं जैसे कि हे जगत् में चिन्तामणि रत्न समान! हे जगत् में कल्पवृक्ष तुल्य! हे जगत् में काम कुम्भ समान! हे जगत् में कामधेनुसमान! हे जगत् में देववैद्य तुल्य! ऐसी जगत् में उपद्रव हरने वाली सुख देने वाली जो वस्तु है वह सभी वस्तुओं की उपमायें उस महापुरुष को देते हैं और वही साकार ईश्वर है उसी की मूर्त्ति बनाते हैं और पूजते हैं ध्यान करते हैं राजा महाराजा देव देवेन्द्र उसकी पूजा करते हैं जैन लोग उसी को अर्हन् जिन वीतराग कहते हैं। उस को कोई शङ्कर कोई महादेव कोई विष्णु कोई ब्रह्मा कोई खुदा कोई परमेश्वर कहते हैं और वह पुरुष जन्म मरणादि से रहित हो जाने से निराकार भी हो जाता है।

प्र०—मुमुक्षु नहीं होने से क्या नुक़सान है?

उ०—जो आदमी बुद्धिमान् है उसको मालूम होता है कि मैं शरीरमें क़ैद में पड़ा हूं बन्धन तोड़ना मेरा फरज है बन्धन में पड़ने में अनेक रोग पीड़ते हैं रोग में प्रवेश होने से सुख भी सुखाभास याने परिणाममें दुःख रूप ही हो जाता है नये नये शरीर बदलते समय माता के गर्भ में अनेक

कष्ट सहन करने पड़ते हैं और एक पेटके पराधीन हो जाने से अनीति से धन मिलाना पड़ता है विश्वासघात करना पड़ता है इस लिये मुमुक्षु होना अच्छा है जिस से सब अनर्थ मिट जावें।

प्र०—सुख और सुखाभास का भेद क्या है ?

उ०—जो सुख निश्चल है स्थायी है निरन्तर है अव्याबाध है निर्भय है वह सुख है और अल्प कालका, पीड़ा से मिश्र, भय से भरा सुख है सो सुखाभास है।

प्र०—दृष्टान्त देकर वह आप समझाइये।

उ०—जो निराकार अवस्था में सुख है वह सुख है और साकार अवस्थामें जो सुख है वह सुखाभास है इस लिये मुक्ति सुख है सो सुखकी गिनती में है और सांसारिक सुख सुखाभास की गिनती में है इस लिये आत्महितचिन्तक मुक्ति सुख को चाहते हैं और मुमुक्षु बनते हैं और आत्मज्ञान से विमुख बाल, मन्द बुद्धि वाले मुक्तिसुख से अज्ञान होने से सांसारिक सुख को चाहते हैं।

प्र०—सांसारिक सुख प्रत्यक्ष देखने में आते हैं आप उस को सुखाभास कैसे कहते हैं ? ।

उ०—वह उस सुख को भोगने वाले स्वयं अनुभव करके कहते हैं कि वह सुखाभास हैं मधुर गायन श्रवण करने से वो पुरुष फंस जाता है अच्छा रूप देख कर अपनी पूर्वावस्था भूल जाता है अच्छी सुगंधि सूंघने में अनेक कष्ट सहन करने

पड़ते हैं जीभ के स्वाद से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं स्त्री के कोमल स्पर्श से मुग्ध हो कर दुराचारिणी वेश्या के प्रेमी होते हैं इस लिये सांसारिक सुख अनर्थ के मूल दूसरे को पीड़ा करने वाले और अस्थिर अल्प काल के हैं और निरंतर भय देने वाले हैं। कहा है कि—

भार्या रूपवती शत्रुर्माता च व्यभिचारिणी।
ऋणकर्त्ता पिता शत्रुर्बान्धवः कलह प्रियः॥

प्र०—सांसारिक प्रत्यक्ष सुख को छोड़ कर परोक्ष मुक्ति सुख को बुद्धिमान् कैसे ग्रहण करेगा? और आपके कहने पर भी श्रद्धा कैसे होवेगी?

उ०—आप सांसारिक सुख को नहीं छोड़ोगे तो मृत्यु आपको बल जबरी से छुड़ावेगा, बुढ़ापा व्याप्त होने पर आप खुद छोड़ देंगे, रोगों से पीड़ित होने पर आपको गाना नाटक रमणी (औरत) वाड़ी बागीचे खाना पीना सोना बैठना उठना फिरना अच्छा नहीं लगेगा, आपके मित्र भी शत्रु होवेंगे, आप का बेटा पैसे के लिये जान लेने को तय्यार होगा। जो आप मेरे किंवा कोई मुमुक्षु का कहना मानोगे तो यहां पर भी निर्भय हो जाओगे नहीं तो दुराचार में फंस कर आप की अकल पर हंसने वाले एक युवक की तरह दुःख पाओगे।

प्र०—उस युवक ने कैसे दुःख पाया?

उ०—एक पैसे वाले श्रीमान् गृहस्थ ने मरने के समय अपने युवक बेटे को बुला कर कहा—"बेटा! यदि जो तू मेरे

को सच्चा पिता माने तो कभी भी पर औरत का मुंह न देखना।" बेटा बोला—"क्या होगा"? बापने कहा—"मेरी पूंजी बरबाद हो जावेगी, घर में सुख नहीं दीखेगा और रोगों से सड़ सड़ कर मरेगा" : इतना कहने से लड़का हंसने लगा कि मैं क्या कम अक्ल हूं कि बाप मेरे को समझाता है। तो भी बापने कहा-"बेटा! मेरा कहना ज़रूर याद रखना"। बाप मर गया, बेटा गाड़ी घोड़े में फिरने लगा और सेठ साहब की गिनती में आ गया। एक दिन किसी विदेश गये हुए पुरुष की औरत गोख में खड़ी थी उसे देख कर सेठ का बेटा मोहित हो कर खड़ा हो गया। औरत ने चिट्ठी डाल सूचना दी कि रात के नव बजे पर यहां इकले चुप चुप चले आओ। बिचारा वह जवान अपनी बुद्धि को दूर कर उसकी खूबसूरती से अन्धा हो कर रात को वहां कपड़ा गहना पहन कर आया। घरमें घुसा, वह औरत प्रसन्न हुई। बातें करने में घटे चले गए। रात्रि को मध्य रात होने पर उसका पति परदेश से एकदम आकर घर में दाखिल हुआ। देखते ही क्रोधित हो कर अपने घरमे से छुरा ले कर उस युवा को जान से मार डाला। औरत की नाक काटी और अपनी जान ले कर जैसा आया था वैसा ही चला गया। औरत पश्चात्ताप करके अपघात करके वहां ही मर गई। आप भी ख्याल रखो संसार का सुख कैसा अच्छा लगता है।

प्र०—वह मूर्ख था कि पर औरत में प्रीति करने को गया। अपनी औरत खूबसूरत होने से सब सुख मिल सकता है।

सभी में सन्तोष रखकर गृहस्थ होवे तो क्या दुःख है क्योंकि जो आदमी अपनी औरत में संतोष रखता है वह भी ब्रह्मचारी की गिनती में सुनते हैं और यहां पर भी उस को सुख मिलेगा ।

उ०—आपका कहना बहुत अच्छा है । आप ऐसी सद्-बुद्धि धारण करके जो स्वदारसंतोषी हो जाओगे तो ज़रूर सुख प्राप्त करोगे और ब्रह्मचारी की गिनती में आओगे । आपकी आबरू, घर की दौलत, शरीरकी शक्ति और मगज की तीक्ष्णता ज़रूर बढ़ाओगे तो भी आपको एक बात का ख्याल रखना कि घर की औरत से मोहित हो कर अपना धार्मिक नैत्यिक व्यवहार नहीं भूलजाना ।

प्र०—धार्मिक नैत्यिक व्यवहार कैसे भूल जाते हैं ?

उ०—औरत में मुग्ध होने वाले पुरुष परमेश्वर को भूल जाते हैं, परमार्थ को दूर करते हैं, अत्याचार को स्वीकार करते हैं और जिसका आप पालक है उसको भी भूल जाता है जिस से वह पुरुष अपने आधार पर रहे हुए बा-लक किंवा प्रजा किंवा माता पिता चाकर बन्धु सबों का नाश कर डालता है और आप भी बुरे हालसे मरता है ।

प्र०—दृष्टान्त दे कर आप समझाइये ।

उ०— आपको मालूम होगा कि पहिले हिंद में हिं-दुओं का राज्य था दिल्ली ही राजधानी थी, पृथ्वीराज चहुआन राज्य करता था जिसने सात वक्त बादशाह को हराकर यशोवाद का डंका दुनिया में बजाया था । उस

पृथ्वीराज ने अपनी खूबसूरत पटरानी में मोहित होकर इतना अनर्थ कर डाला कि आप बुरे हाल से अंधा हो कर गज़नी में विदेश में मरा और अपनी प्रजा को बुरे हाल से मरवाया और हिन्दु राज्य और धर्मका नाश करडाला। सज्जनोंको एकही दृष्टान्त बहुत है। और विशेष देखना हो तो प्रेक्षक होकर जगत् में घूमो तो जगह जगह देखोगे तो कोई युवक औरत के वश होकर अपने माता पिता को कटु वचन कह कर घर में से निकाल देता है, अपने भाइयों को भर्तृहरि की तरह निर्दोष को भी दोषित कह कह कर शिक्षा देता है, कोई तो पूर्व की स्त्री के बच्चों को सताता है। ऐसे अनर्थ औरत मुग्ध लोकों से होता है। पवित्र दिनों में परमार्थ करना, परमेश्वर की भक्ति करना और उत्तम उत्तम ग्रन्थ पढ़ना वे सब औरत मुग्ध लोकों से नहीं होते। पशुओं में अमुक समय संग होता है किंतु बुद्धि से विमुख होकर कितनेक युवक अपने वीर्य की क़ीमत भूल कर रात दिन अपनी स्त्री का सहवास रख कर अपने भविष्य सुख का नाश करते हैं। रोगों की वृद्धि और कम ताकत हो जाती है। पूर्ण आयु होने से पहले ही अपना सत्व नाश कर बूढ़े जैसी कम ताकत मिला कर थोड़े काल में मृत्यु के वश होते हैं। यह सब बातें अपनी औरत के संग करने वालों को भी दुःख देने वाली होती हैं इस लिये स्त्री भी भय से भरा हुआ सुख देने वाली है। आप ख्याल करके सांसारिक सुख को चाहें।

प्र०—आप साधु हो गये हैं इस लिये आप सब को साधु बनाना चाहते हैं।

उ०—बन्धुओ ! साधु होना दुर्लभ है। साधुता का अंश भी मिल जावे तो मैं शीघ्र मुक्ति में चला जाऊं। धन्य है सच्ची साधुता को धारण करने वाले खंधक मुनि जैसे महात्माओं को कि जिसने प्राणान्त कष्ट आने पर भी क्रोध को धारण न किया उनके चरणों की रजःस्पर्श करने से भी मेरा कल्याण हो जावे।

प्र०—खंधक मुनि का दृष्टान्त सुनाइये जिससे हमारा काम हृदय और जन्म पवित्र हो और सच्ची साधुता आवे।

उ०—एक राज पुत्र सद्बोध पाकर दीक्षा लेकर आत्म-ध्यान करते हुए एक शहर में आ गये। अङ्ग पर जीर्ण वस्त्र थे और तपश्चर्या करने से लोहू मांस सूख गया था सिर्फ हड्डी चमड़ी अङ्ग पर रही थी तो भी मुखमुद्रा बड़ी प्रसन्न थी। राजा की रानी महल की बारी में से देख कर मुनिराज की प्रशंसा करने लगी कि धन्य है कि ऐसे महात्माओं को जो तपश्चर्या करके अपने पूर्वपापों का नाश कर देते हैं और किसी को पीड़ा नहीं देते हैं। फटे जीर्ण मलिन वस्त्र पर जिस को दुःख नहीं होता इत्यादि गुणों से रंजित हो कर रानी कुछ प्रसन्न मुख वाली हुई। हर्ष के उद्गार निकालने लगे और रोम राजी उस की विकस्वर हो गई। राजा थोड़ी देर में आया, रानी ने उसका ख्याल भी नहीं किया जिस से राजा क्रुद्ध हो कर तपास करने लगा कि रानी बेमर्याद कैसे हो गई। तपास करने से मालूम हुआ कि एक कोई साधु थोड़ी देर पहिले यहां से गया जिस को देख कर रानी बेमर्याद हुई है। राजा ने

शीघ्र सिपाहियों को भेज कर अनर्थ के करने वाले साधु की चमड़ी उतारने का हुक्म दिया। राजा का हुक्म होते ही सिपाहियों ने साधु जंगल में खड़ा रख कर कहा 'हे साधु! अपने इष्ट देव को स्मरण कर हमारे राजासाहिब से हुक्म हुआ कि तेरी चमड़ी उतार लेनी, साधुने कहा 'बहुत अच्छा उतार लो मेरे इष्टदेव का स्मरण पहिले ही मेरे को हो गया है किन्तु आप सभाल रखें कि मेरी चमड़ी कोमल नहीं है आप के हाथ को आप की छुरी न लग जावे, ऐसा कह कर मुनिराज ने आत्मतत्त्व म ध्यान लगाकर शरीर की ममता छोड़ दी। जैसे पुराने कपड़े को उतारने पर बुद्धिमान् पुरुष को आंख में आंसू नहीं आते इसी तरह से मुनिराज ने आत्मा से भिन्न शरीर को पुराने कपड़े की समान मान कर उतारने दिया। न सिपाही पर क्रोध किया न राजा पर क्रोध किया, न मन में भी दुःख माना--आत्मस्वरूप का चिन्तवन कर पूर्व कर्म को भोग कर कैवल्य ज्ञान पाकर मुक्ति को गये। जन्म रोग बुढ़ापा की उपाधि से मुक्त हो कर मुक्ति का अनुपम अचल निरुपद्रव सुख को भोगने लगे।

प्रश्न—ऐसी स्थिरता आज के समय में होती है कि नहीं?

उत्तर—धर्मकार्य में शरीर से निर्मोही होकर ऐसा कष्ट सहन करना और क्रोधित नहीं होना आज के समय में होना दुर्लभ है जिससे केवल ज्ञान और मुक्ति दोनों इस समय नहीं मिलती न ऐसे दृढ़गुणधारक तपस्वी मुनिराज देखने में आते हैं।

प्रश्न—पूर्व में थे उस को कैसे संभावना ।

उत्तर—युद्ध में जो वीरपुरुष राज्य के लिये किंवा देश के हितार्थ जो आत्मसमर्पण करते हैं और युवा स्त्री बालक पुत्र किंवा करोड़ों रुपये की मूर्छा उतार देते हैं जैसे आज युद्ध में वीरपुरुष रणक्षेत्र में वीरता धारण करते हैं वैसे ही पूर्व में तपस्वी वीरपुरुष आत्मसमर्पण करते थे किन्तु युद्ध में वीरता धारण करनी सुलभ है और तपश्चर्या में शत्रु पर भी क्रोध न कर समताभाव धारण करना बहुत दुर्लभ है इसलिये हजारों सुभटों को जीतने वाला वीरपुरुष को जितनी शाबाशी है उससे करोड़ों गुनी शाबाशी एक क्रोध को जीतने वाले वीरपुरुष की है ।

प्रश्न—क्रोध जीतने से क्या मुक्ति शीघ्र हो जाती है ?

उत्तर—क्रोध से भी अधिक शत्रु मान है जो क्रोध नहीं करने वालों को भी सद्गुण नहीं लेने देता क्योंकि जब मान छोड़ेगा तब वही नमस्कार करेगा और नमस्कार करने से विद्या प्राप्त होगी विद्या से आत्मज्ञान और चारित्र मिलेगा—और चारित्र से कैवल्य ज्ञान प्राप्त करते हैं पीछे मुक्ति होती है ।

प्रश्न—चारित्र किस को कहते हैं ?

उत्तर—आत्मा का स्वरूप समझ कर बाह्य इंद्रियों के विषयों की रमणीयता का राग छोड़ कर अप्रियता का द्वेष छोड़ कर समता धारण करना उसको चारित्र कहना । उस के दो भेद हैं व्यवहारचरित्र और निश्चयचरित्र ।

प्रश्न—व्यवहारचरित्र किस को कहते हैं ?

उत्तर—ज्ञान प्राप्त करने के लिये गुरु के पास रहना सेवा करना और इंद्रियों के विषयरस छोड़ने का दृढ अभ्यास करना दिन पर दिन त्याग दशा में वृद्धि करना २२ परिषहको सहन करना वो व्यवहारचरित्र कहलाता है ।

प्रश्न—२२ परिषह का स्वरूप बताना चाहिये ।

उत्तर—(१) क्षुधा (२) तृषा (३) ठंड (४) ताप (५) डाँस मच्छर का उपद्रव (६) वस्त्र की जीर्णता (७) प्रतिकूल वस्तु का दुःख सहना (८) स्त्री संग त्याग (९) पैदल विहार (१०) अयोग्य मकान (११) प्रतिकूल शय्या (१२) योग्य वस्तु न मिलना (१३) रोग (१५) काँटेवाले घास का स्पर्श । (१५) शरीर पर मैल का उपद्रव (१६) सत्कार में अहंकार न लाना (१७) आक्रोश (१८) वध (१९) याचना (२०) विशेष विद्या से नम्रता रखनी (२१) अज्ञानता में अदीनता (२२) धर्म में दृढ़ श्रद्धा रखनी ।

प्रश्न—निश्चयचारित्र क्या है ?

उत्तर— आत्मा में दृढ़ भाव रख कर आत्मा को ही अपना हित करने वाला जानकर आत्मा से अतिरिक्त पदार्थों पर राग द्वेष हटाना सो निश्चयचारित्र है और निश्चयचारित्र पाकर जीव शीघ्र कैवल्य ज्ञान पाता है इस लिये निश्चयचारित्र मुख्य है ।

प्रश्न—व्यवहारचारित्र आप गौण क्यों बताते हो और आपने कौनसा चारित्र धारण किया है ?

उत्तर—व्यवहारचारित्र गौण बताने का सबब है कि उस में जगह जगह अपना मंतव्य सिद्ध करके बुद्धिनिधान साधु भी परस्पर क्लेश बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं जैन मंतव्य का स्याद्वाद रहस्य न समझ कर गच्छों का झगड़ा खड़ा करना, परस्पर कटुवचन कहना, आत्महित के ग्रंथ बनाना पढ़ना छोड़कर जिससे परस्पर विरोध होवे वीतराग के निर्दोष धर्म में दूषण स्थापन करावे अपनी अज्ञानता से सिद्धान्त के गूढ़ रहस्य को न समझ कर कुयुक्ति से परस्पर खंडन मंडन करे और जैनधर्म की हेलना कराये ऐसे कार्य व्यवहारचारित्र से बनते देख कर उस को गौण बताया है और व्यवहारचारित्र निश्चयचारित्र का सहायक है। जो व्यवहारचारित्र से निश्चयचारित्र न पावे तो उस का व्यवहारचारित्र सिर्फ उस को बोझा रूप ही है जैसे चंदन को उठाने वाला गधा चंदन को शीतलता का भागी नहीं होता इसी तरह से साधु व्यवहारचारित्र धारण करके भी आत्महित नहीं कर सकता वो सिर्फ लोगों में ही साधु कहाता है। आत्मज्ञान बिना किंवा आत्मतत्त्व में लीन नहीं होवे वहां तक उसको यहां पर शान्ति प्राप्त नहीं होती तो परलोक में सद्गति कैसे मिलेगी? इसलिये व्यवहारचारित्र गौण है और निश्चय चारित्र प्रधान है—मैंने बाहर से व्यवहारचारित्र धारण किया है और आत्मा में आभ्यंतर दृष्टि से निश्चयचारित्र धारण किया है।

प्रश्न—एक समय एक पुरुष को दो चारित्र कैसे हो सकते हैं?

उत्तर—समय शब्द के दो अर्थ होते हैं--जो सूक्ष्म समय जैन लोगों ने माना है वो समय का ज्ञान केवल ज्ञानी ही जानते हैं और मैं केवल ज्ञानी नहीं हूं इस लिये मैं वो समय का बयान नहीं कर सकता और लौकिक वर्तमानकाल का मेरे को ज्ञान है जिससे मैं कह सकता हूं कि एक समय में मेरे को दो चारित्र हो सकते हैं।

प्रश्न—दृष्टान्त देकर समझाइए।

उत्तर—जैसे एक क्लार्क (मुनीम) अपने सेठ की तरफ से व्यवहार करता है और सेठ के लिये रात दिन प्रयास कर रहा है और सेठ के नफ़ा नुक़सान से अपना हर्ष शोक दिखाता है जिससे सेठ प्रसन्न होकर उसको इनाम भी देते हैं और क्लार्क की इज़्ज़त भी बढ़ती है जो अच्छी तरह से सेठ उसकी खबर रखे तो दोनों को फायदा पहुंच सकता है नहीं तो दोनों का अहित है इस तरह वीतराग प्रभु ने मन्द बुद्धि वाले भव्यात्माओं के हितार्थ यह व्यवहारचारित्र बताया है जिससे सद्गुरु के आश्रय पर मन्द बुद्धि वाले भी आत्महित कर सकें और सद्गुरु और सुशिष्य को परस्पर फायदा हो सके और वे दोनों आराधक होकर मुक्ति मिला सकें और जब योग्य ज्ञान संप्राप्त होजावे तब सद्गुरु सुशिष्य को समझाते भी हैं—हे महानुभाव ! देख व्यवहारचारित्र से भी अधिक सुखदाई निश्चयचारित्र है वो भूल मत जाना एकान्त में बैठ कर उसको स्मरण कर । जिस समय तू सर्वथा निर्मोही हो जावेगा उस समय केवल ज्ञान पावेगा और मुक्ति प्राप्त

करेगा जैसें वीर प्रभु ने गौतम गोत्र के इन्द्रभूति गणधर को बताया था।

प्रश्न—इन्द्रभूति महाराज का अधिकार क्या है?

उत्तर—जिस समय महावीर प्रभु को कैवल्य ज्ञान हुआ उस समय इन्द्रभूति आदि ११ वैदिक ब्राह्मण चौदह विद्या के पारगामी यज्ञ कर रहे थे देवों ने समवसरण (सभामण्डप) बनाया हज़ारों मनुष्य महावीर प्रभु की वाणी सुन कर प्रसन्न होते चले आते थे वह देख कर इन्द्रभूति जो सब से बड़े थे वो आश्चर्य देखने को आये वहां केवल ज्ञान से इन्द्रभूति जी के अभिप्राय को जान कर उन के मन में जो जीव का संशय था वो वेदपदों का सम्यगर्थ समझाया था जिससे वे प्रथम शिष्य हुए। अनुक्रम से ग्यारहों ब्राह्मणों ने आकर प्रश्नोत्तर करके शिष्यपद प्राप्त किया। उनके साथ ४४०० ब्राह्मणों ने भी दीक्षा ली किन्तु सब से गुरुभक्ति में दृढ़राग गौतम इन्द्रभूति जी को था हर वक्त महावीर महावीर पुकारते थे और एक समय में भी नहीं भूलते थे। गुरु श्री महावीर प्रभु ने एक समय कहा कि हे सुशिष्य! केवल ज्ञान की इच्छा हो तो निश्चयचारित्र की एकान्त में भावना कर। सुशिष्य ने कहा कि आप मेरे साक्षात् केवल ज्ञानी गुरु बैठे हो मेरे को क्या ज़रूरत है मैं तो आप की सेवा में ही आनन्द करूंगा ऐसी गुरु पर दृढ़ भक्ति से इन्द्रभूति जी को अनेक लब्धियें चमत्कारी विद्यायें प्राप्त हो गईं और जो शिष्य इन्द्रभूति जी के चरण का शरण लेता था वह भी केवल ज्ञान को प्राप्त करता

था किंतु दृढ़ भक्ति का प्रशस्त राग इन्द्रभूति जी का दूर न होने से कैवल्य ज्ञान महावीर प्रभुके अन्त समय तक भी उन इन्द्रभूति जी को न हुआ। दिवाली के दिन जब महावीर प्रभु का निर्वाण (मोक्षगमन) हुआ उस समय देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध करने को इन्द्रभूति जी गये थे वो आये और पहले तो सद्गुरु के वियोग का विलाप किया और थोड़ी देर पीछे आत्मज्ञान प्रकट होने से आत्मसत्ता में दृढ़ भावना कर शुद्ध चिदानन्दस्वरूप का ध्यान करने से केवल ज्ञान प्राप्त किया। आज भी जैन लोग भगवान् महावीर प्रभु का निर्वाण महोत्सव का तप जप महिमा करते हैं और एकम के रोज गौतम इन्द्र-भूति का रास पढ़ते हैं जिस में गौतम स्वामी का चारित्र मालूम होता है।

अंगूठे अमृत बसे, लब्धि तणो भंडार।
ते गुरु गौतम समरिये, मनवांछितफल दातार ॥

प्रश्न--आप के जैसे और भी साधु साध्वी विद्यमान हैं?

उ०--मैं केवलज्ञानी नहीं हूं मैं दूसरे के अन्दर की बात कैसे कह सकता हूं और ऊपर से मेरे जैसे वेषधारक बहुत मिलेंगे जिसे गुजरात मारवाड़ दक्षिण में संवेगी साधु बोलते हैं और कुछेक भिन्नता वाले अपने को साधु मार्गी कहते हैं और कितनेक अपनेको जति नामसे कहते हैं यह सब श्वेताम्बर सम्प्रदाय के हैं और दिगम्बर सम्प्रदाय में भट्टारक क्षुल्लक ब्रह्मचारी एलक नाम से प्रसिद्ध हैं।

प्रश्न—उन लोगों के वेष में ही भेद है कि मन्तव्य में भी भेद है ?

उत्तर—मन्तव्य में भेद होजाने से ही वेषभिन्नता हुई है।

प्रश्न—क्या भेद है जो मेरे को योग्य समझो तो संक्षिप्त से बताइये।

उत्तर—वास्तविक रीति से आभ्यन्तर दृष्टि से मैं मेरी बुद्धि के अनुसार देखता हूं तो मेरे को भेद नहीं दीखता क्योंकि रागद्वेष को हटा कर पांच इन्द्रियों के और मन के विषय को रोक कर क्रोध मान माया लोभ को जीत कर पञ्च महाव्रत पाल कर मुक्ति में जाना और पूर्व में बताये हुए अर्हन् जिन तीर्थङ्कर की शरण लेना, उन का जाप करना, ध्यान करना, स्तुति करना, पूजन करना सब को मंजूर है और इस रीति से चलने वाले आत्मध्यान में रक्त होकर कर्मबंधन तोड़ने को समर्थ भी हो सकेंगे। जितनी त्याग दशा, जितना निर्मोहीपना, जितनी आत्मा की निर्मल भावना उतना ही मुक्ति का परम श्रेय कारण है और राग द्वेष बढ़ाने वाली जितनी क्रिया किंवा उपदेश किंवा ध्यान है सो संसारवृद्धि का कारण है।

प्रश्न—आपके वचनों से वे सब एक हैं तो भिन्नता कैसे रह सकती है ?

उत्तर—बाड़ेके बन्धन में पड़े हैं, योग्य ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई, संसार की मान दशा छूटी नहीं और राग द्वेष के वश में पड़े हैं इस लिये एक नहीं हो सकता।

प्रश्न—आपको कैसे मालूम हुआ ?

उत्तर—मैंने उनके परस्पर के छपे हुए ग्रन्थ देखे और बात चीत से जानता हूं। आप की इच्छा हो तो अनुचित शब्दों से भरे हुए ग्रन्थ देखलें जिससे स्वयं जान लेंगे। बेचारे भोले श्रावकों का पैसा धर्मकार्य में नहीं लगाने देते किन्तु तत्वज्ञान से विमुख, परमार्थ से रहित, और कुयुक्ति से भरे हुए ग्रन्थ बना कर परस्पर झगड़ा फैलाते हैं। कोरट में जाते हैं, कपटतन्त्र से अपनी जीत बताते हैं, दूसरे पर अयुक्त कलंक डालते हैं, असत्य आक्षेप करते हैं, अर्थ का अनर्थ करते हैं, द्रव्य क्षेत्र काल भाव के अनुसार वर्त्तन नहीं करते। ये सब देख कर मेरे को मालूम हुआ है और उन के नायक समूह में मैंने भी अपना थोड़ा सा अमूल्य समय व्यर्थ गमाया है और अब मैंने वे सब जैननामधारक महात्माओं से मध्यस्थ भाव धारण कर मित्रभाव रक्खा है और समय मिलने पर ऐक्यता करने का मार्ग लिया है।

प्रश्न—आपको सम्भव है कि वे सर्व एक होयेंगे ?

उत्तर—उम्मेद है कि जो ज्ञानप्रकाश जिस के हृदय में होगा भवभ्रमणता के भय से डरेगा, आत्महित में रक्त होगा, अन्दर का कुछ प्रेम चरित्र पर होगा, स्याद्वाद रहस्य समझा होगा तो वह पुरुष ज़रूर समभावी होकर ऐक्यता रखेगा किंवा निन्दा की पुस्तक पढ़ने लिखने से दूर रहेगा, राग द्वेष मानदशा से रहित होकर आत्मध्यान में लीन होकर बाह्य (व्यवहार) में गौणता

रखकर निश्चयचारित्र में प्रधानता रखकर मुक्ति का अनुयायी होगा। सब जीव के भाव एक साथ[सदृश] नहीं हो सकता भिन्न से कोई मिलेगा कोई भिन्न भी रहेगा तो भी आगको लकड़ी नहीं मिलने से जैसे बुझ जाती है ऐसे उत्तम श्रावक और उत्तम साधु झगड़े में सहायता नहीं देवेंगे तो झगड़े में रक्त पुरुष भी शान्त हो कर आत्मसाधन करेंगे और कोई भी नहीं करेगा तो मेरे को कुछ नुकसान नहीं है मेरी करनी मेरे साथ है। करनी पार उतरनी।

प्रश्न—साधुमार्ग में परिषह सहना बहुत कठिन है, क्या गृहस्थ धर्म से मुक्ति नहीं हो सकती?

अगर साधु धर्म में परिषह है तो भी गृहस्थ के दुःखों से बहुत कम है; क्योंकि युद्ध मे प्राणान्त कष्ट सहन करना पड़ता है और द्रव्य संग्रह से रात दिन चोरकी भीति रहती है, खून होते हैं, पड़ोसी ईर्ष्या करते है, राजा अमलदार पीड़ा देते हैं और घर के बेटे भी मारने को तैयार होजाते हैं। जहां तक प्रबल पुण्य है वहाँ तक पैसा औरत बेटे नौकर चाकर बाड़ी बगीचे सत्ता अधिकार मान और पूज्य पदवी है। जहां पुण्य कम हुआ कि सब लीला दूर हो जाती है। रावणका राज्य, कौरवों की रिद्धि, हिन्दुओं की राज्य सत्ता, बादशाहों की हाकमी, आप इतिहास से देख लेवें कि संसार में गृहस्थवास में कितना सुख दुःख है और साधुपने की शान्ति कैसी सुख देने वाली है जिस से गृहस्थों की मुक्ति होनी असम्भव तो नहीं किन्तु दुर्लभ तो ज़रूर है।

प्रश्न—तब भगवान् ने गृहस्थ धर्म का स्वरूप क्यों बताया ?

उत्तर—जो साधुधर्म पालने को असमर्थ हैं गुरु महाराज उनको योग्य नहीं समझते। पूर्वभव का भोगावली कर्म है वह बिना भोगे नहीं छूट सकता। वृद्ध माता पिता पत्नी पुत्र देना राज्य नौकरी और: अनेक कारणों से जो साधु धर्म नहीं ले सकते उन के लिये गृहस्थधर्म भगवान् ने बताया जो पालन करना आवश्यक है।

प्रश्न—गृहस्थ धर्म का संक्षिप्त स्वरूप समझाइये।

उत्तर—गृहस्थ धर्म में जीवदया हृदयमें रखकर निरपराधी जीवोंको बिना कारण दुर्बुद्धिसे हलते चलते (त्रस) जीवों को मारे नहीं, संतावे नहीं और बिना निरन्तर उपयोग में आने वाले पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वन, वनस्पति स्थावर जीवों को बिना कारण हिंसा न करे और बिना कारण विशेष उपयोग में न लेवे और दूसरे का अहित करने वाला असत्य वचन न बोले, राजदण्ड की चोरी न करे, अपनी स्त्री में सन्तोष रखे, वस्तुसंग्रह का परिमाण करे, दिशाओं का व्यापार के लिये परिमाण करे, खाने पीने की वस्तु के व्यापार का परिमाण करे, अनर्थ दण्ड छोड़ देवे, दो घड़ी तक शान्त वृत्ति रख कर समताभाव से सामायिक करे, एकाद दिन रात एक जगह बैठ धर्म ध्यान करे, पर्वदिनों में साधुवृत्ति स्वीकार करे, साधुओं को भोजन देकर भोजन करे, अपना पैसा धर्म कार्य में लगाये, शरीर से गुरुओं का विनय कर वीतराग देव का पूजन स्मरण ध्यान करे।

प्रश्न—मूर्त्तिपूजन करना कहां तक ठीक है?

उत्तर—राग द्वेष की भीति दूर करने को मूर्त्तिपूजा ठीक है और मूर्त्तिपूजा से जो राग द्वेष बढ़े तो मूर्त्तिपूजा निरर्थक है इसलिए मूर्त्तिपूजन करने वालों को हर समय क्षमा गुण प्रधान रखना चाहिये। तीर्थ क्षेत्रों में, मन्दिरों में सांसारिक राग द्वेष दूर करके आना चाहिये। खींचंग छोड़ना चाहिये, अन्दर के क्लेश मिटाना चाहिये, सब जीवों पर मित्रदृष्टि से देखना चाहिये और मन्दिर में जाकर वीतराग के साथ तल्लीन मन रखकर स्वयं वीतराग होने की भावना रखनी चाहिये तो वह मूर्त्तिपूजन नहीं है किन्तु परमात्मा वीतराग तीर्थङ्कर का पूजन है जो मुक्तिसुख का मुख्य कारण है।

प्रश्न तीर्थस्थलों में झगड़े होते हैं, लाखों रुपये का नाश होता है, कोरट में कितने बरसों तक टंटे चलते हैं, मारा मारी भी होती है, श्रावक लोक मन्दिर का पैसा बरबाद करते हैं, कोई स्वयं भी खाजाते हैं तो मूर्त्ति-पूजन क्या फ़ायदा कर सकता है और मुसलमानों को द्वेष होता है, हिन्दुओं में परस्पर भी झगड़े होते हैं वो क्या शान्तिदायी आप मानते हैं? मेरे को तो समाजी साधु-मार्गी मुसलमान जो मूर्त्ति नहीं मानते और सनातनी संवेगी मानते हैं सो दोनों बराबर दीखते हैं।

उत्तर—आप को बराबर दीखते हैं तो आप चाहें सो कहें या करें मेरा कुछ नुक़सान नहीं किन्तु मेरे अभिप्राय से तो आपको ज्ञात हो जायगा कि मूर्त्तिपूजा अपने को

शान्ति देनेवाली और दूसरे को भी शान्ति वाली होवे सो मूर्त्तिपूजा ठीक है। तीर्थस्थल में झगड़े का कारण है वह धर्म राग नहीं है किन्तु स्वार्थ भृष्टों का प्रपञ्च जाल है उनके फांसे में भोले जीव फँसकर झगड़ा करते हैं। आत्मार्थी जीव टंटे से हज़ार कोस भागते हैं और गाली देने वाले पर भी क्षमा गुण रखते हैं उन की पूजा सफल है। आप भी तीर्थक्षेत्र किंवा मन्दिर में जाकर शान्ति से वीतराग दशा का ख्याल रख कर शान्ति मिलावें। मूर्त्ति की आपको ज़रूरत न दीखे तो पहाड़ों के वा जंगल के एकाद गुप्त भाग मे ध्यान करें तो भी हरकत नहीं है। चक्षु स्थिर करने के लिये दृश्य पदार्थ मूर्त्ति है बिना मूर्त्ति आर्यसमाजी नहीं है, साधुमार्गी नहीं हैं, मुसल्मान भी नहीं है। फोटो चित्र अक्षर निशानों ये सब मूर्त्तिपूजा के सम्बन्धी हैं। बाल जीवों को मूर्त्ति का ध्यान आकार अवस्था मे ठीक है। स्कूल में चित्र फोटो पुतले (खिलौने) उसी के लिये रखे हैं। अगर कभी झगड़े करने वाले, कोर्ट में जाने वाले, पैसे खाने वाले मूर्त्तिपूजक देखें तो उनकी अवस्था समझ कर करुणा बुद्धि से देखें और योग्य देखें तो उपदेश भी देवें कि हे भव्यात्मन्! क्यों अपना अमूल्य जन्म बरबाद करता है फिर मनुष्य जन्म कब मिलेगा, कब सद्गुरु की सगति मिलेगी। घर छोड़ के तीर्थ में आये बोझे से बचने के लिये मन्दिर का शरण लिया फिर क्यों आत्महित का चिन्तवन नहीं करता। हृदय में सच्चा जैन धर्म हो, मुक्ति की अभिलाषा हो तो राग द्वेष दो चोरों को दूर कर इन्द्रियों को क़ब्ज़े में लेकर पूजन ध्यान श्रवण गुण गान कर आत्मा निर्मल कर पापों का पश्चात्ताप कर

प्रश्न—आप उन के लिये क्या सुगम मार्ग बताते हो?

उत्तर—ज्ञान वृद्धि होनी चाहिये, जहां मंदिर हो जहाँ तीर्थक्षेत्र हो वहां पाठशाला होनी चाहिये, जिसने का बंदोबस्त होना चाहिये, पुस्तकसंग्रह होना चाहिये, विद्वानों का सन्मान करना चाहिये, जैन किंवा जैनेतर को जैनतत्त्वज्ञान सिखाना चाहिये जो ज्ञानवृद्धि होगी तो आपस के टंटे मिटेंगे।

प्रश्न—ज्ञानी हो कर लड़ने को तैयार होवे तो क्या कहना?

उत्तर— ज्ञानी दो प्रकार के हैं— एक विद्या का बोझा उठाने वाला जो झगड़े में राजी होता है और दूसरे को सताने में संतोष मानता है, अपने को बड़ा बहादुर मान कर दूसरे की हेलना करता है और जो सच्चे ज्ञानी हैं वो तो अपने को कोई गाली भी देता है, तो भी अत्यन्त शान्ति रख कर उस की उपेक्षा करते हैं. ज्ञानी का भूषण क्षमा है और क्षमा सब सुखों का कारण है इस लिये झगड़े करने वाले ज्ञानी से आप दूर रहें वो शांतिप्रिय ज्ञानी का समागम करें।

प्रश्न— जैनियों की संख्या बहुत कम क्यों है?

उत्तर—जैनियों की संख्या बहुत कम नहीं है किन्तु सब से ज्यादा है। आप एक भी जहां अच्छा गुण देखें वहाँ जैनी का अंश जान लेना क्योंकि जैन धर्म की चार भावना वोही बात सूचन करती हैं, देखिये—

प्रमोद, मैत्री, करुणा, माध्यस्थ नाम से चार भावना हैं। गुणी पुरुषों का अल्प गुण भी पहाड़ के समान कर उस का वारंवार अनुमोदन करना और उन की प्रशंसा कर मन को पवित्र करना। जहां आप समानभाव देखें वहां पर भी जैनधर्म का याद करना क्योंकि मैत्रीभावना में सब जीवों को समान मान देकर सब का रक्षण करना वीतराग देव ने फरमाया है और जहां दया की प्रधानता देखें वहां भी जैनधर्म स्मरण में लाना क्योंकि दुःखी जीवों पर तन मन धन दे कर करुणा करने का बताया है और अधर्मी अनाचारी हृदय के मलीन दुर्गुण से जलने वाले एकान्त अनुचित कार्य में लगे पुरुषों पर उपकार नहीं बनने से उस के ऊपर भी द्वेष न लाकर उपेक्षा कर राग द्वेष छोड़ कर उदासीन होना सो माध्यस्थ भावना जैनियों की मानी हुई है। आप अनेकान्त दृष्टि से देखोगे तो करोड़ों सच्चे जैनी भी जगत् में सर्वत्र देखोगे।

प्रश्न—जैनधर्म में सम्यक्त्व किस को कहते हैं?

उत्तर—आत्मा में दृढ़ श्रद्धा होना और शरीरादि को भिन्न मानना सो निश्चय सम्यक्त्व है और सद्बोध देने वाले जीवन्मुक्त केवली प्रभु को देव और निःस्पृह हो कर परमार्थ वृत्ति से जगत् के जीवों को ब्रह्मचारी हो कर सन्मार्ग में लावे वो गुरु मान कर उन की सेवा करे और राग द्वेष छोड़ने का प्रयत्न हो धर्म माने सो व्यवहार सम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न—जैनों में परमेष्ठि मन्त्र क्या है?

उत्तर—दूषणों से मुक्त सद्गुण के भंडार देवों सेन-रेन्द्रों में पूजित देवाधिदेव को साकार शरीरधारी अवस्था में अरिहंता कहते हैं और मागधी भाषा में "नमो-अरिहन्ताणं" प्रथम मंत्र है और वो परमात्मा मुक्त होने पर निराकार होने से "नमोसिद्धाणं" पद से पूजित है ये दोनों नाम देववाची हैं- जो जैनों का इष्टदेव है और मोह दशा छोड़नेवाला निःस्पृही साधु को साधु, विद्या पूर्ण पढ़ने से उपाध्याय, सब शास्त्रों का ज्ञानी होने पर आचार्य्य कहते हैं "नमोआयरियाणं नमोउवज्झायाणं सव्व साहूणं" नाम से प्रसिद्ध है वे तीन गुरु नाम से प्रसिद्ध हैं।

प्रश्न—वह कौनसी भाषा का मन्त्र है और उस का फल क्या है?

उत्तर—पहिले हिन्द में मागधी भाषा चलती थी सो प्राकृत भाषा कहलाती थी संस्कृत से मिलती है वो भाषा में परमेष्ठिमन्त्र और जैनों के सूत्र रचे हुए हैं कि मन्दबुद्धि वाले भी अच्छी तरह से पढ़ें उस का फल निचले श्लोक से जान लेना—

> एसो पंच नमुक्कारो सव्व पाव प्पणासणो।
> मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं॥
> एष पञ्च नमस्कारः सर्वपापप्रणाशनः।
> मङ्गलानाञ्च सर्वेषां प्रथमं भवति मङ्गलम्॥

अर्थ—अरिहंत सिद्ध आचार्य्य उपाध्याय और सब साधुओं को नमस्कार करने से सब पापों का नाश हो जाता है- सब मंगल कारणों में पहिला मंगल यह है।

प्रश्न—जैनी लोग संध्या करते हैं या नहीं ?

उत्तर—करते हैं, किन्तु उस का परमार्थ और नाम न्यारे हैं ।

प्रातःकाल में और सायंकाल को एकान्त में बैठ कर स्थिरचित्त से अपने कृत्यों को स्मरण में लाकर किसी जीव को दुःख दिया होवे, कटु वचन कहा होवे, अपमान तिरस्कार किया होवे, दुर्ध्यान किया होवे और निन्दित कार्य प्रमाद से हो गया होवे ये सब याद करके आत्मा में पश्चात्ताप करना चाहिये, गुरु के पास दण्ड लेना चाहिये फिर पाप न करने का दृढ निश्चय प्रतिज्ञा करनी चाहिये इस कार्य्य को आवश्यक क्रिया किंवा प्रतिक्रमण भी कहते हैं आवश्यक क्रिया में छः विभाग हैं-"सामायिक चौवीसथ्य [चितुर्वंशतिस्तव] वंदनक प्रतिक्रमण कायोत्सर्ग प्रत्याख्यान ।"

प्रश्न—गृहस्थों का नित्य नियम भी आप मानते हैं या नहीं ?

उत्तर—जैनी लोग सब मानते हैं, क्योंकि गृहस्थों को श्राद्ध श्रावक श्रमणोपासक कहते हैं उन्हों के लिये श्राद्ध दिनकृत्य श्राद्धविधि श्रावकप्रज्ञप्ति वगैरह अनेक ग्रन्थ मैंने देखे हैं पढ़े हैं उन में आप की इच्छानुसार ज्ञान मिला सकते हैं ।

प्रश्न—पाप क्यों होते हैं, उन को रोकने का क्या उपाय है ?

उत्तर—पूर्वकर्मानुसार बुद्धि में मलीनता आती है और पाप हो जाते हैं। जैनी लोग उस को घाती कर्म बोलते हैं। मोह उन में मुख्य है अन्य लोग उस मोह को शैतान कहते हैं। यह मोह जीतने से पाप सब दूर होते हैं। पूर्व के भी नाश होते हैं नये नहीं होते हैं उस का उपाय सम्यक् रीति से ज्ञान पढ़ना चाहिये आत्मा बलवान करने से मन भी स्थिर होता है मन स्थिर होने से वचन विचार पूर्वक निकलता है और काया भी कब्ज़े में आती है।

प्रश्न—मन स्थिर करने का सर्वोत्तम ग्रन्थ कौन है ?

उत्तर—ग्रन्थ मात्र मन स्थिर करने वाला है तो भी शांतरस से भरा हुआ ग्रन्थ अधिक सुखदायी है। समाधिशतक ग्रन्थ बहुत अच्छा है भगवद् गीता भी ठीक है वेदान्त उसी से भरा है जैनियों के आध्यात्मिक ग्रन्थ उस विषय से भरे हुए हैं। [समाधिशतक ग्रन्थ हिंदी छपने को गया है]

प्रश्न—वेदान्त क्या वस्तु है ?

उत्तर—परमात्मा के शुद्ध निर्मल स्वरूप में अद्वितीय भाव धारण करना, शरीर इंद्रियों पुत्री पुत्रादि राज्य संपत्ति सबको माया प्रपंच असत्य मानना, कष्ट सहन करना, कायाको स्थिर करना उस तत्वको वेदांत कहते हैं।

प्रश्न—जीवतत्व क्या सूचन करता है ?

उत्तर—जो बाह्यपदार्थ अनुभव में आते हैं सो क्षीण होकर नष्ट हो जाते हैं इस लिये उन सबों का मोह नहीं

करना, परमार्थ को उसके होवे सो लेलेना, समुद्र में भरती होने से किनारे पर पानी आता है और फिर वो वापिस चला जाता है इस तरह से इस दुनियां में जो मोह करा-ने वाली वस्तु है सो भी नाशवंत है आयेगी और चली जावेगी आप उस का सदुपयोग करो यह बौध तत्व का सारांश है।

प्रश्न—जैनदृष्टि से बौध और वेदांत में क्या भेद है ?

उत्तर-कुछ भेद नहीं, समझ भेद है। उदार दृष्टि से देखें तो जैन भी यही कहते हैं कि शरीरादि नाशवंत है और आत्मा अचल है तो नाशवंत चीज का मोह छोड़ अचल आत्मा में दृढ भावना रक्खो।

प्रश्न—स्याद्वाद नाम किस का है ?

उत्तर—पदार्थ को अनित्य मानने वाला क्षणिक बौध मत है और पदार्थ को नित्य मानने वाला वेदांत मत है। परस्पर युक्ति से सिद्ध भी करते हैं और अपने को सत्य-वादी बताते हैं जैनी लोग वस्तु के पर्याय को अनित्य कहते हैं और वस्तु के द्रव्य को नित्य कहते हैं सो उभय ग्राहक स्याद्वाद है।

प्रश्न—द्रव्य पर्याय का दृष्टान्त देकर नित्य अनित्य समझाइए।

उत्तर-आत्मा (जीव) द्रव्य है और शरीर पर्याय है। शरीर की अनित्यता बौध बता कर रागद्वेष छुड़ाते हैं और वेदान्ती आत्मा की नित्यता सिद्ध कर आत्मभावना

दृढ कराते हैं ये दोनों साथ मिलाने से द्रव्यपर्याय होता है आत्मा द्रव्य है शरीर पर्याय है। आत्मा बदलता नहीं नये नये शरीर बदलते हैं जो बदले वो पर्याय है और मूल वस्तु कायम रहे वह द्रव्य है।

प्रश्न-पर्याय अनन्त होते हैं। द्रव्य कितने हैं ?

उत्तर-द्रव्य जाति की अपेक्षा से सिर्फ दो हैं। जीव और अजीव- जीव अपने शरीर में व्याप्त है, अनुभव से मालूम होता है। अजीव शरीर उससे मिला हुआ है। जहां मिला हुआ है वहां सुख दुःख का ज्ञान भी होता है और जहां आत्मा व्याप्त नहीं है ऐसे बाल नाखून में प्रत्यक्ष अनुभव होता है काटने से दुःख भी नहीं होता जो ज्ञान होता है सो जीव का लक्षण है और जो ज्ञान नहीं होता वो अजीव का लक्षण है।

प्रश्न जीव अमर है कि मरता है ? और अमर है तो जीवहिंसा का निषेध क्यों कराते हो ?

उत्तर-जीव अमर है उसने जो सम्पत्ति प्राप्त की है सो छीन लेने से उस को दुःख होता है वो दुःख का नाम हिंसा है और जीव के साथ सम्बन्ध रखने से जीवहिंसा कहते हैं। किसी की सम्पत्ति छीन लेने का अधिकार किसी को नहीं है। आप देखोगे तो मालूम होगा कि सब जीव भय से कांपते हैं, बचाने वाला देखकर धीरज लाते हैं और अभयदान मिलने पर सन्तुष्ट होते हैं—आप ज्ञानचक्षु से देखें।

प्रश्न—जीव की सम्पत्ति क्या है और कैसे मिलती है?

उत्तर—जीव की सम्पत्ति प्राण है पांच इन्द्रियें तीन बल श्वासोश्वास और आयु मनुष्य पशु पक्षी जलचर देव नारकी को दश प्राण हैं। बिना गर्भ होने वाले मेढक वगैरह को मन बल न होने से नव, मच्छर वगैरह के कान न होने से आठ और कीड़ों के चक्षु न होने से सात, कृमि वगैरह के नाक न होने से छै और वनस्पति वगैरह को जीभ और वचनबल भी बिना न होने से चार प्राण हैं। प्राण ज्यादा और उत्तम मिलना सो पुण्य प्रकृति है और अशुभ प्राण मिलना पाप प्रकृति है। आत्मा के साथ दूध पानी की तरह एक हो जाने से आत्मा को साक्षात् अनुभव होता है। अनुकूल पदार्थ मिलना वह भी पुण्य है और प्रतिकूल पदार्थ मिलना वह पाप का फल है। जीव जैसा कृत्य करता है वैसा फल भोगता है। जो मिरच खाता है उसका मुँह जलता है, जो गाली देता है वह तमाचा (थप्पड़) खाता है, जो खून करता है वह फांसी जाता है। जो कृत्य करते हैं वो ही भविष्य में भोगते हैं। एक वक्त दुख देने से सौ वक्त भोगना पड़ता है। कर्म जीव ने किया और जीव ही भोगेगा, मा बाप भाई मित्र औरत कोई भाग नहीं ले सकते इसलिये उत्तम पुरुष को चाहिये कि किसी के लिये भी दूसरे जीवों को दुःख न देवे, किसी की सम्पत्ति छीन न लेवे दूसरे को शान्ति देवे, अपने आत्मा को दमन करे।

प्रश्न—जीव तो सर्वत्र है तो जीवरक्षा कैसे होगी और बिना क्रिया संसार व्यवहार कैसे चलेगा?

उत्तर—साधु और गृहस्थधर्म यथायोग्य स्वीकार करने से जीवरक्षा होवेगी। साधु कोई भी जीव की हिंसा नहीं करते प्रयोजन भी नहीं है। गृहस्थों को प्रयोजन से हिंसा होगी अप्रयोजन से मिटेगी और साधु को भी ध्यान अवस्था में क्रिया की भी जरूरत नहीं और यतना से प्रवर्त्तन करने से क्रिया में भी जीवरक्षा होगी।

प्रश्न यतना किसको कहते हैं?

उत्तर समिति गुप्ति का पालन करना, देखके पांव धरना, दौड़ना नहीं, विचार पूर्वक बोलना, देखके प्रकाश में दिन में खाना, अपने कपड़े चीजें देख के रखना, शरीर का मल मूत्र निर्जीव स्थान पर रखना-ये पांच समिति कहते हैं और मन वचन काया को स्थिर करना ये तीन गुप्ति हैं।

प्रश्न—लेश्या किसको कहते हैं

उत्तर—लेश्या के अनेक भेद हैं? यहांपर बाल बुद्धि वाले के लिए छै भेद समझाते हैं-कृष्ण नील कापोत तेजु पद्म शुक्ल। दूसरे का सर्वथा नाश करना वो कृष्ण, कुछ बचाना नील उससे अधिक अधिक बचाना वो अनुक्रम से उत्तम लेश्या है और बिलकुल नुकसान किये बिना अपना कार्य साधन करलेना वो अन्तिम सर्वोत्तम शुक्ल लेश्या है। जैसे की छै लड़के जांबु (जामन) खाने के लिये एक वृक्ष समीप गये एक बोला मूल में से पेड़ उखेड़ दो अपनी कार्यसिद्धि होजावे। दूसरे ने कहा मूल रहने दो धड़ काटो। तीसरे ने कहा शाखा काट लो। चौथे ने कहा लुम तोड़ दो।

पांचवें ने कहा जाबु ही तोड़ लो। छटे ने कहा पेड़ पर चढ़ने की क्या जरूरत है जमीन पर जो गिरे हुवे हैं वे ही ले लो। इस दृष्टांत से अध्यात्माओं को ज्ञानी भगवान् समझाते हैं कि इस दुनियां में सब जीव छै प्रकार की लेश्या धारण कर अपनी कार्यसिद्धि करते हैं जो उत्तम हैं वे तो दूसरे को हानि करते नहीं और मध्यम हैं वे दूसरे की हानि कम करके अपनी स्वार्थसिद्धि करते हैं। अधम अपनी स्वार्थसिद्धि में दूसरे का सब नाश करदेते हैं। इस लिये आप जो कल्याण चाहो तो अपनी सिद्धि के लिये दूसरे की हानि नहीं करनी।

प्रश्न—शीघ्र तरने का क्या उपाय है?

उत्तर—परमार्थवृत्ति में निरन्तर चित्त रखना वीतराग प्रभु ने भी वोही कहा है जो संसारसमुद्र से तरने को चाहते हैं उनको चाहिये कि तन मन धन सम्पत्ति जो मिले वो शीघ्र परमार्थ में लगा देना जो प्रमाद किंवा विलम्ब हो जावेगा-तो फिर सम्पत्ति चली जावेगी-कहा है कि

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं संनिहितो मृत्युस्तस्माज्जागृत जागृत ॥

विद्युत् अंधेरी रात में मेघ में क्षणमात्र प्रकाश कर लोप हो जाती है, बादल अनेक प्रकार के रंग बताकर शीघ्र बिखर जाते हैं, फूल एक दिन शोभा सुगन्धि देकर सड़ जाते हैं, वृक्षों के पत्ते एक बरस में सूख कर गिर जाते हैं। इस तरह से इस दुनियां मे किसी की सम्पत्ति एक

क्षण में, किसी को एक दिन में, किसी को बरस में, किसी को थोड़े बरस में नाश होता है किंवा अन्त में आप खुद छोड़कर अपने कृत्यों का फल भोगने को आप चला जाता है।

प्रश्न—धन संपत्ति कौन परमार्थ कार्य में अधिक फल-दायी है?

उत्तर जैसा समय—इस समय विद्यादान की खास जरूरत है विद्या पढ़ने से धर्म-स्वरूप जान सकता है, विद्या पढ़ने से द्रव्य उपार्जन कर सकता है, विद्या पढ़ने से परमार्थ भी कर सकता है, विद्या पढ़ने से सदसत् का विवेक भी जान सकता है, मा बाप गुरु राजा की पुत्र प्रजा पति अपना यथायोग्य वर्तन कर सकता है, राजा महाराजा उसकी बहुत मानता करता है, देव उसके आधीन होते हैं। भर्तृहरिनीतिशतक में भी कहा है—

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं,
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं,
विद्या राजसु पूजिता नहि धनं विद्याविहीनः पशुः॥१॥
विद्वत्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥२॥

प्रश्नोत्तरी में भी लिखा है कि:—

ज्ञातुम् शक्यं च किमस्ति सर्वै-
र्योषिन्मनो यच्चरितं तदीयम्।
का दुस्त्यजा सर्वजनैर्दुराशा,
विद्याविहीनः पशुरस्ति को वा॥

जैन में भी कहा है कि—पढमं नाणं तओ दया।

ज्ञान बिना पशु सारिखा, जाणो इण संसार।
ज्ञान आराधन थी लहे, शिवपद सुख श्रीकार॥

ज्ञानं च वित्तं जगति प्रधानं विना च तेनैव सुखं किमस्ति।
अन्धस्य दुःखं जनता प्रवेत्ति मूर्खस्य दुःखस्य कथा न कस्या॥
माता च शत्रुर्यदि पाठितो न बालः स्वकार्या अनुभावनेन।
वंध्यापि शस्या च विषस्य दात्री मूर्खस्य माता ननु दर्शनीया॥
त्राता च तातः स ददाति विद्यां आलस्य यस्माद्भवति प्रपूज्यः।
जनस्य शोभा न च भूषणानि सत्या च भूषा विनयश्च विद्या॥

प्रश्न–जैन लोग में दान कौनसा उत्तम कहा है?

उत्तर–जिस समय जिसकी जरूरत–वीतराग प्रभु ने कहा है कि द्रव्य क्षेत्र काल भाव के ज्ञाता गीतार्थ मुनिराज उपदेश के अधिकारी हैं गीतार्थ न मिले तो अगीतार्थ साधु एक जगह बैठकर धर्म ध्यान करे। गीतार्थ मिलने पर उनकी आज्ञा से विहार करे जिससे मालूम होता है कि ज्ञानी गुरु महाराज समय देखकर धनाढ्य को उपदेश करते हैं आज के समय में ज्ञान की अधिक जरूरत होने से आत्माराम जी जो विजयानन्द सूरि नाम से प्रसिद्ध हो गये हैं उन्हों ने अच्छे ग्रन्थ बनाकर विद्या पढ़ने का उपदेश दिया है जगह जगह प्रसिद्ध पाठशालायें खुल रही हैं जिस का नाम विलायत अमेरिका तक मशहूर है।

प्रश्न—आप के दीक्षा गुरु ने भी विद्या के लिये कुछ किया है?

उत्तर-उन की तो रात दिन यही अभिलाषा है कि विद्या का सर्वत्र प्रचार होवे। पन्यास हर्ष मुनिजी जिनका नाम है मुम्बई में जैन सेण्ट्रल लाइब्रेरी और संस्कृत पाठशाला लालबाग पिंजरापोल में चल रही है और मोहनलाल जी जो उन के गुरु हैं उन के नामके साथ यह लाइब्रेरी पाठशाला अलङ्कृत है जहां रोज ५० बांचने वाले आते हैं २५ विद्यार्थी भी अभ्यास कर रहे हैं।

प्रश्न—मोहनलाल जी जो उन के गुरु थे उनका कैसा अभिप्राय था ?

उत्तर-वे भी बड़े विद्याप्रेमी थे मुम्बई में जो पन्नालाल जैनहाईस्कूल चल रही है गोकल भाई मूलचंद जैन बोर्डिंग है वे उन का ही उपदेश था जैन श्वे० कॉनफरन्स में शोभा थी और लाखों रुपये का दान हुआ था वह उन की ही कृपादृष्टि थी। उन की शान्त मुद्रा जिसने देखी है किंवा हजारों तस्वीरें (फोटो) दुनिया भर में फैल रही हैं वह महात्मा का अभिप्राय एक ही था कि सब जगत् में ज्ञान का प्रकाश होजावे। अमदाबाद् राधनपुर पालीताना वगैरः में पाठशाला लाइब्रेरियां जो चलती हैं वह उनका ही उपदेश है।

प्रश्न—आपने कोई ग्रन्थ भी लिखे हैं।

उत्तर-जैन साधु हमेशा बाल जीवों के लिये ग्रन्थ लिखते रहते हैं आप पहिले गुरु महाराज की सेवा करें शास्त्र पढ़े समय देखे और अपनी शक्ति के अनुसार ग्रंथ

लिखे पूर्वाचार्यों के उत्तम काव्य ग्रन्थ रासा देखकर मेरे को भी लिखने की इच्छा हुई और लिखे जो पुण्यवान् पुरुषों ने छपाकर प्रसिद्ध किये हैं अप्रसिद्ध लिखे हुए भी हैं माडल जैनमित्र मण्डल सभा ने छपाये हैं वह ग्रन्थ मिल सक्ते हैं। सती शीलवती, धम्मिल चरित्र, माणिकमाला चंपक श्रेष्ठि चरित्र, चरित्रमाला १ भाग वगैरः है और सुविद्यानन्द की प्रथम जिंदगी जैनतत्वप्रकाश भोमीयो गुजराती में लिखे हुए हिंदीसमाधिशतक पर विवरण जैन साहित्य की उत्तमता फार्बस सभा के लिये दो निबन्ध गुजराती में लिखकर भेजे हैं। संस्कृत में विजयानन्द द्वात्रिंशिका लब्धिविजय जी महाराज की सहायता से और मोहनमहर्षिगुणमाला, सप्त विंशतिका अष्टकं बनाई है संशोधक लब्धिविजय जी हैं जो दोनों छप गई है देहली में सुधर्मज्ञानभंडार आत्मानन्द लाइब्रेरी छोटा दरीबा में मिल सक्ती है।

प्रश्न—लब्धिविजय श्री मुनिराज का क्या अभिप्राय है?

उत्तर—विद्या को सर्वत्र बढ़ाना खुद वे भी विद्या पढ़ने पढ़ाने में बड़े उत्सुक हैं मैंने भी उनके पास से स्याद्वाद रत्नाकर से रत्नावतारिका टीका पढ़ी है और मूर्तिमण्डन दयानन्दकुतर्क तिमिरतरणि देहली व्याख्यान वगैरह ग्रन्थ बनाये हैं जाहिर व्याख्यान भी देते हैं।

प्रश्न—जैनों को क्या जरूरत है वह आप जैनपत्रों में कभी लिखते हैं?

उत्तर—बन्धुओ ! मेरा तन मन धन और जो कुछ स्वत्व है सो मैंने प्राणीमात्र के हित के लिये अर्पण किया। जैन, जैनविजय कच्छकेसरी जैनशुभेच्छक जैनशासन जैनएडवोकेट आनन्द आत्मानन्द वगैरह में भी सरल भाषा में लिखा है और जहां समय और स्थान की योग्यता मिलती है वहाँ जाहिर व्याख्यान भी देता हूं विद्या पढ़ाना परमार्थ व्रत धारण करना ऐक्यता करना परमेश्वर माता पिता गुरु राजा अमलदारों का शासन मानना सत्य अभिप्राय निडरपने से बताना इत्यादि मेरे प्रधान विषय हैं।

प्रश्न—विद्या पढ़नी कौन अच्छी है ?

उत्तर—रसायन [सायन्स] पदार्थ विज्ञान सब से प्रधान विद्या है।

प्रश्न—सायन्स विद्या पढ़ कर लड़ाइयों में जो नाश होता है उससे आप क्या धारते हैं ?

उत्तर—सायन्स विद्या दूसरे का अनहित करने को नहीं कहती है दुर्बुद्धि अहंकार क्रोध ये पाप कराते हैं। आप ऐसे दुर्गुणों से दूर होकर सायन्स विद्या से प्राणी मात्र को अनुपम सुख भी दे सकते हैं। धन जीवित बुद्धि शक्ति जैसे मार्ग में ले जाओ वैसा परिणाम में काम आती है चाहे परमार्थ करो चाहे अनर्थ करो किन्तु इतना तो ज़रूर है कि दुष्टों का सामना हो तो विद्वान् अपनी विद्या से हजारों की रक्षा करता है। हिन्द की निर्धनता अविद्या से बढ़ी हुई है और जो सर्वत्र अपमान होता है वह भी अविद्या से।

प्रश्न-शरीर कैसे नीरोग रह सकता है ?

उत्तर—ब्रह्मचर्य की प्रधानता रखने से मिताहार से रात्रिभोजन त्यागने से मांस मदिरा भांग वगैरह नशा की चीज त्यागने से तीर्थगमन बड़े लोगों का विनय करने से मध्यम निद्रा से शांतरस के ग्रन्थ पढ़ने से परमार्थ वृत्ति में भावना रखने से।

प्रश्न—शृङ्गाररस कवियों ने प्रधान क्यों माना है ?

उत्तर—मुमुक्षु कवि शृङ्गारस प्रधान नहीं बताते वैराग्यरस प्रधान बताते हैं। आप शृङ्गार शतक वैराग्यशतक दोनों भर्तृहरि कृत पढ़ें और देखलेवें कि आनन्द किस में आता ., और आनन्दाभास किस में आता है।

प्रश्न—आप की आज्ञानुसार पढ़ेंगे तो भी आप समझाइये कि आनन्दाभास और आनन्द किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्थायी आनन्द को आनन्द और कृत्रिम आनन्द को आनन्दाभास कहते हैं। आत्मरमणता से जो आनन्द होता है और विषयों की तृष्णा नष्ट होजाती है शत्रु मित्र पर समान दृष्टि हो जाती है चन्दन की शीतलता और सर्प के डङ्क पर मध्यस्थभाव होजाता है आत्मा से अतिरिक्त शरीर पुत्र पत्नी पैसा घर बाड़ी बगीचे महल सब से जिस का भाव उठ गया है ऐसे अध्यात्मज्ञानिओं का आनन्द है सो आनन्द है और खाने पीने में गान तान में नाटक चेटक में उत्सव तमाशों में जो आनन्द होता है सो कृत्रिम और अल्पकाल का आनन्दाभास है।

प्रश्न—विषयानन्दी लोग विषयास्वाद को आनन्द कैसे कहते हैं ?

उत्तर—जो कटु औषधों का स्वाद लेते हैं उन को अच्छी तरह मालूम है कि बुख़ार आने में अजीर्ण में कुपथ्य से जो जीभ का स्वाद किया था वो कैसा दुःखदायी हुआ है इसी प्रकार से पांच इन्द्रियों के स्वाद लेनेवाले अल्पकाल सुख आनन्द लेकर जिन्दगी तक दुख पाते हैं। एक इन्द्रिय के वश होकर मृग भ्रमर पतंग मत्स हाथी प्राण गमाते हैं तो पांच इंद्रियों को छुटी रख कर जो स्वाद भोगे वे कहां से सुख पावेंगे अलबत्ता आपातरम्यता तो ज़रूर देखेंगे ।

प्रश्न— आपातरम्यता किस को कहते हैं ?

उत्तर— पानी में परपोटे होते हैं दूध में फेन होता है बीलोरी कांच में हीरा का देखाव होता है उष्ण रेती में पानी का देखाव होता है वेश्या में प्रेम का देखाव होता है खल पुरुष के जीभ में अमृत होता है ये सब देखने मात्र इन्द्रजाल के सदृश फांसे में फंसाता है ।

प्रश्न—इन्द्रजाल किसे कहते हैं ?

उत्तर—सुनने में आता है कि पूर्व में ऐसी विद्या वाले थे कि वे लोग समुद्र का देखाव ज़मीन पर बताते थे और पानी से ज़मीन बनाते थे आग से शहर जलने का देखाव दिखाते थे महल वाड़ी ,औरत पुरुष बच्चों का रुपये का ढेर बताते थे और थोड़ी देर में वे सब लोप हो

जाता था। आज भी खेल करने वाले जादूगर आम का पेड़ बनाकर आम भी छोटे छोटे लगाते हैं रुपये भी बना कर छोटे बच्चे के हाथ में देते हैं किन्तु वे सब झूठा है जो सच्चे रुपये बच्चों को देवे तो फिर वे बिचारे खेल देखने वालों के पास भीख का पैसा क्यों मांगते इसलिये वह सब इंद्रजाल है। देखने में आनंद देवे पीछे कुछ नहीं। भले आदमियों को उस में फंसना नहीं चाहिये कीमियागर में फसने वाले भोले लोगों की तरह घर की पूंजी नहीं गमाना चाहिये।

प्रश्न—कीमियागर कौन है, भोले लोग क्यों फंस जाते हैं?

उत्तर—निरुद्यमी मुफ्त का माल खाने को चाहते हैं उन को लोभ में फंसाने वाले धोले दिन के लुटेरे कीमियागर होते हैं वे लोग अनेक प्रकार के वेष बनाते हैं। शहर किंवा गांव के एकान्त भाग में जहां देवल किंवा मठ होवे वहां थोड़े पैसे अपने ख़र्च कर लोगों को खुश करते हैं। गांजा पीते हैं दूसरों को पिलाते हैं लड्डू भी खिलाते हैं ध्यान भी करते हैं एकाद चेला भी रखते हैं भोले लोगों के आगे चेलाजी बड़ी २ बातें बना कर कहते हैं कोई घर का पैसे वाला जो आजावे तो बाबा जी बातें मीठी मीठी सुनाते हैं जहाँ विश्वास पड़ा कि एकाद चलम में से गिन्नी निकाल कर पैसे वाले की मार्फत ग़रीबों को दान में दिलाते हैं अब दुनियां दीवानी होकर शीश झुकाती है बाबा जी बोलने का भी बंद करते हैं. और

निःस्पृहता बता कर गाँव मात्र के लोगों को राज़ी करते हैं एकाद् समय चेला सब के सामने गुरुजी की कीमियां की भी तारीफ़ करते हैं भोले लोग बड़ी खुशी से सुनते हैं तो भी लोग अधिक उपासना करते हैं। ऐकांत में प्रार्थना भी करते हैं पक्षी के लिये जाल बिछाने की समान बाबाजी जाल बिछाकर हज़ार के लाख बनाने की तजबीज में रुपये लेकर रातों रात रास्ते पड़ते हैं। शास्त्रों में वनस्पति पारस पत्थर रस कुपी की बातें सुन कर लोग ठगते हैं किन्तु अकलमन्द आदमी ऐसी बातों में फसते नहीं हैं।

प्रश्न—शास्त्र में लिखी बात सत्य है वा झूठ है?

उत्तर—शास्त्र पर विश्वास रखना चाहिये और अकल का भी उपयोग करना चाहिये छोटे बच्चे को ठगने को जैसे लड्डू की लालच देकर बदमाश लोग गहेना निकाल लेते हैं ऐसे ही गुरु भी लालच में डाल कर भोले लोगों को फंसाते हैं इसलिये हर जगह पर विचार पूर्वक विश्वास लाना चाहिये शास्त्र भी परीक्षा से सच्चे झूठे मालूम होंगे।

प्रश्न—संसार भ्रमण कैसे मिटे?

उत्तर— जिस का आश्रय लेकर बैठे उस की शक्ति तपासनी चाहिये पैसे पर प्रेम होता है और अनर्थ कराता है अनाचार में तत्पर बनाता है वह पैसा मरने वाले के साथ जाता नहीं सुख से रोटी खाने देता नहीं

निद्रा में भी चोरों का भय होता है एं से पैसे का मोह छोड़ कर जो पैसे से परमार्थ कर लेवे तो निःस्पृहता आजाती है और पैसे से प्रेमी बने हुए पुत्र पत्नी मित्र कुटुम्ब का भी मोहनष्ट होता है इस लिये भवभ्रमण किंवा संसारबन्धन मिटाने को पैसे का मोह अवश्य छोड़ना चाहिये ।

, का पता—
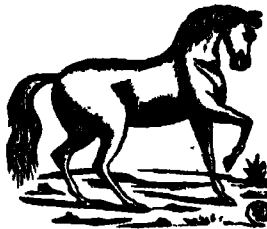
आत्मलब्धि पब्लिक-जैन-लाइब्रेरी मेरठ.
तहसील के निकट ॥

देहली छोटा दरीबा आत्मानन्द जैन लाइब्रेरी
आत्मानन्द पुस्तक प्रचारक मण्डल नौघरा,
देहली
और रोशन मुहल्ला, आगरा ॥

जीरा (पंजाब) नत्थूराम जैनी ॥

सरस्वती लाइब्रेरी हापुड़ ॥

जैन मित्र मंडल सभा मांडल जि० अहमदाबाद
यहां ग्रन्थकर्त्ता के दूसरे ग्रन्थ भी मिल-
सक्ते हैं ॥

भीमसिंह माणिक मुम्बई पोस्ट नं० ३
जैन बुकसेलर ॥

मांडल स्नेही मित्रमण्डल जि० अहमदाबाद

विधवा-विवाह चर्चा

अर्थात्

ब्रह्मचर्याणुव्रत, अहिंसा, कर्मसिद्धांत

इत्यादिकांच्यायोगें विधवाविवाहाचें

सशास्त्र मण्डन.

लेखक व प्रकाशक,

सी. जे. हाडोळे.

एस्. पी. रणदिवे.

मुद्रक,

दा. रा. माळ्याळकर

सच्चिदानंद प्रेस, सोलापूर.

आवृत्ति पहिली. प्रती १०००

सन १९२७, वीरसंवत् २४५३

किंमत ६ आणे.

विधवा-विवाह चर्चा

(मोहोळची हकीकत)

ज्यांचें नांव आज बरेंच दिवस श्रावकांच्या कर्णपथावर आदळत होतें असे शांतिसागर महाराज एकदां सोलापूर येथें आले; व त्यांचें सर्वांना दर्शन झालें. शांतिसागर महाराजांच्या विपरीत व प्राचीन-आगमाविरुद्ध मतांविषयीं आह्मी बऱ्याच मोठमोठ्या लोकांकडून ऐकिलें होतें ह्मणून सोलापुरीं आल्यानंतर कांहीं प्रश्नांचा निकाल लागल्यास लावून घ्यावा व खरोखरींच त्यांचीं मतें- प्रगमनशील आहेत कीं समाज-विध्वंसक आहेत, लोकसंग्रहकारी आहेत कीं लोकांना आपल्या धर्मापासून विन्मुख करून टाकणारीं आहेत. याचा छडा लावावा असा विचार होता. परंतु सोलापुरीं महाराजांच्या अंधभक्तांची प्रभावळी इतकी मोठी झाली व त्यांनीं त्यांच्या भोंवतीं एवढा प्रचंड तट उभारला कीं जणूं काय शांतिसागर ही व्यक्ति ह्मणजे त्यांची खासगी इस्टेटच आहे! असली परिस्थिति उत्पन्न झाल्यामुळें साधारण गरीब लोकांना कांहीं शंका विचारणें ह्मणजे त्यानें आपण होवून आपल्या अंगावर द्वेष ओढून घेणें व कांहीं लोकांच्या क्रोधास बळी पडणें होय. यांत बिलकूल शंका नाहीं !

वरिल कारणास्तव आमची मनीषा सोलापुरीं साध्य झाली नाहीं व त्यामुळें आमच्या मनास सारखी तळमळ लागून राहिली. परंतु दैवयोगच चांगला ह्मणून ही इच्छा सफल होण्याचा एक सुप्रसंग आम्हांस लाभला. शांतिसागर महाराजांनीं सोलापूरचा मुक्काम सोडला व ते मोहोळगांवीं गेले तेथील आमचे उत्साही मित्र श्री० अनंतराज सुमतिनाथ गुमते यांनीं मुद्दाम आह्मांस- विधवाविवाहाच्या बाबतींत शंका विचारून समाधान करून घेणें असल्यास ही संधि गमावूं नका असें लिहिलें व ते लिहूनच [illegible]

नाहींन तर स्वतः बोलावण . आले म्हणून आम्हीं मोहोळ मुक्कामीं ता. ७।१।२७ रोजीं गेलों.

त्या दिवशींच संध्याकाळीं सुमोरें ९ वाजतां श्री० पायसागर (ऐनापुर) यांचें धर्मोपदेश या सदराखालीं पांच अणुव्रतें या विषयावरील प्रवचन झाल्यानंतर श्री० अनंतराज यांनी शांतिसागर महाराज यांना कांहीं शंका विचारावयाच्या आहेत तरी त्या आतां विचारण्यास महाराजांची परवानगी आहे काय ? असें विचारलें. त्यानंतर सर्व संघानें आपसांत विचार करून उद्ईक सकाळीं ८ ते १० या दरम्यान शंका विचाराव्यांत असें कळविलें; नंतर आम्हीं सर्व जण आपापल्या स्थानीं गेलों.

दुसरें दिवशीं ठरल्याप्रमाणें आह्मी सर्व मंडळीसह महाराजाकडे गेलों. दर्शन वगैरे विधिझाल्यानंतर चंदाप्पा जिनप्पा हाडोळे यांनीं महाराजांस "माझी एक शंका आहे, तरी ती विचारूं कां ?" असा प्रश्न केला. शांतिसागर महाराज यांनीं " असें इकडे समोर येऊन उभे रहा व विचारा असें उत्तर दिलें" नंतर त्यांनीं खालीलप्रमाणें शंका मांडली.

काल श्री० पायसागरस्वामी यांचे पांच अणुव्रतांवर जें प्रवचन झालें त्यांत त्यांनीं ब्रह्मचर्याणुव्रताचें वर्णन करताना वेश्येचा व त्याचप्रमाणें परस्त्रीचा त्याग केला पाहिजे असें सांगितलें. यांच्या सेवनांत किती भयंकर पातक आहे यांचें रसभरित वर्णन झाल्यानंतर त्यांनीं लोकांना वेश्या व परस्त्रीत्याग करण्याचा नियम घ्या असा आग्रह धरला. व ज्यांना हे नियम घ्यावयाचे आहेत त्यांनीं हात वर करावें असें सांगितलें. ज्यांना या संबंधी व्रतें घेण्याचीं इच्छा होतीं त्यांनीं त्यांच्यापुढें जावून हातजोडून प्रतिज्ञापूर्वक व्रतें घेतलीं परंतु या बाबतींत महाराज ! आमची एक शंका आहे सोमदेवसूरींनीं लिहिलेल्या यशास्तिलकचंपूमध्यें ब्रह्मचर्याणुव्रताचें विधान करतांना स्वस्त्री आणि वेश्या यांच्या शिवाय इतरांशीं संबंध न ठेवणारा माणूस ब्रह्मचर्याणुव्रती होय असलें उद्गार काढलें आहेत ! तरी यावरून पाहतां कालरोजीं पायसागर यांनीं वेश्या आणि परस्त्रीचा त्याग करण्यास जें आ-

ग्रहपूर्वक्च सांगितलें तें अनाठायीं दिसतें ! यावर चंद्रसागर यांनीं ग्रंथ दाखविण्यास सांगितलें त्याप्रमाणें त्यांच्या पुढें ग्रंथ ठेवला व खालील श्लोक त्यांना वाचून दाखविला.

" वधू-वित्तस्त्रियौ मुक्त्वा सर्वत्रान्यत्रतज्जने।
माता स्वसा तनूजेति मतिर्ब्रह्मगृहाश्रमे ॥ "

[उत्तरखंड, उपासकाध्ययन प्रकरण]

नंतर चंद्रसागर यांनीं त्या श्लोकाचा अर्थ करण्यास सांगितलें त्या श्लोकाचा अर्थ जसा होता तसा त्यांना करून सांगितला; व विचारलें कीं वेश्यासेवन करणारा माणूस ब्रह्मचर्याणुव्रती होवूं शकतो काय ?

चंद्रसागर यांच्या कानावर हा अर्थ जावून आदळल्यावर ते उडवा उडवीची भाषा बोलूं लागले. व्यसनत्याग वगैरे विषय काढला समंतभद्राचार्यांच्या ब्रह्मचर्याणुव्रताविषयीं व त्याच्या अतिचारांविषयींही विषय निघाला. त्यांत ' इत्वरिका गमन ' या शब्दांत गमन याचा अर्थ संभोग असा त्यांनीं केला. परंतु हा त्यांचा अर्थ मूळ ब्रह्मचर्याणुव्रताच्या विधानावर कसा कुऱ्हाड घालणारा आहे हें सांगितल्यावर ते भानावर आले ! जेव्हां यांतून त्यांना पळवाटच दिसेना तेव्हां "शेषं कोपेन पूरयेत्" या म्हणीप्रमाणें त्यांनीं तुम्हांस हा ग्रंथ अक्षरशः मान्य आहे कीं नाहीं ? तुमचें शिक्षण कोठपर्यंत झालें आहे ? पुढच्या मागच्या २५।३० श्लोकांचा अर्थ करा पाहूं ? इत्यादि प्रकृत विषयाशीं ज्यांचा संबंध नाहीं अशा गोष्टी बोलण्यास सुरुवात केली ! तेव्हां पुनः चंदाप्पा यांनीं ठासून सांगितलें कीं इकडच्या तिकडच्या गोष्टी आम्हांस नको आहेत मूळ श्लोकाच्या अर्थावरून तुम्हांस जो कांहीं बोध होतो व त्यावरून आपणांस जें वाटतें तें आम्हांस स्पष्ट आणि सरळपणें सांगा; नंतर हा ग्रंथ आम्हांस अक्षरशः प्रमाण नाहीं असें सांगून चंदाप्पा यांनीं शेठ हिराचंद नेमचंद यांनीं प्रसिद्ध केलेल्या " आगमप्रमाणतासंबंधमें शास्त्रार्थ " या पुस्तकांतील " **वेश्या सेवन करनेवाला ब्रह्मचर्याणुव्रती हो सक्ता है क्या ?** " या मथळ्याखालील मजकूर वाचून दाखविला

वाचून दाखविलेल्या मजकुरांत सोमदेवसूरींच्या ब्रह्मचर्याणुव्रतांचा व त्याच प्रमाणें पंडित आशाधरकृत सागारधर्मामृतातील **"वेश्याच नव्हे पण सधवा व विधवा कुलांगना भोगणाऱ्या गृहस्थाच्या ब्रह्मचर्याणुव्रताचा भंग न होतां फक्त अतिचार घडतो"** असल्या विधनाचाही उल्लेख होता !

वरील सर्व प्रकार चालला असतां. शेठ हिराचंद नेमचंद यांचे चि० गुलाबचंद व पुतणे रावजी सखाराम वगैरे मधून मधून कांगावा करून आह्मांस विरोध करीत होते व इतर कांहीं धमकीची भाषाही बोलत होते. चंदप्पा हाडोळे यांस शंकर रणदिवे मधून मधून कांहीं सूचना करीत असत श्री. रावजी सखारामहि त्यांना जरब घालून धमकी देत होते पण रणदिवे यानी त्यांच्या धमकीस मुळींच भीक घातली नाहीं. इतकें चाललें असतांना शांतिसागर महाराज स्तब्ध बसले होते: नंतर विरुद्ध बाजूची मंडळीही आपल्या पक्षसमर्थनार्थ बोलूं लागली त्यानंतर सोलापूरच्या मंडळींनी आपल्या धर्मग्रंथांतलि राड बहुजनसमाजापुढें मांडली जाणें व त्यांच्याकडून छी: थू: होणें बरें न वाटल्यामुळें कसा तरी हा वाद टाळला जावा ह्मणून गोंधळ घालण्यास सुरुवात केली ! शेवटीं चंद्रसागर व महाराज यांनीं 'आमचें संस्कृत शिक्षण झालें नाहीं, हें आह्मांस कांहीं समजत नाहीं, तुह्मी पंडितांकडे वाद करण्यासाठीं जा ' असें सांगितलें ! पंडितांशीं वर्तमानपत्रांतून चर्चा झालेली आहे व बऱ्याच पंडितांनीं हा शिथिलाचार आहे व हे ग्रंथ पाठशाळेच्या शिक्षणक्रमांतून काढून टाकावेत अशी कबूली दिलेली आहे ! तुह्मी शंका विचारा असें ह्मणाला ह्मणून तुमच्या पुढें शंका मांडली आहे. तुह्मांस जर कांहीं समजत नव्हतें तर शंका विचारण्यास कशास सांगितलें ? असें चंदाप्पा त्यावर ह्मणाले. या सर्व भाषणांत चंद्रसागर यांची भाषण करण्याची पद्धत सरळपणाची नव्हती हें येथें अवश्य लिहिलें पाहिजे.

यानंतर ग. अनंतराज गुमते हे उठले व ह्मणाले– महाराज, काल

सकाळीं चंद्रसागर, मंदिरांत— " **विधवाविवाह करून घेणाऱ्यांनीं आहार देण्यासाठीं उभे राहूं नये व त्यांनीं जिनप्रतिमेस स्पर्श करून पूजाहि करूं नये** " असें ह्मणालें होते. तरी याला कांहीं शास्त्राधार आहे कीं काय ? व तो असल्यास आह्मांस कळवा व आपलें ह्मणणें चंद्रसागर यांच्याप्रमाणेंच आहे काय हें कृपा करून सांगा असें विचारलें. त्यावर शांतिसागर ह्मणाले. " मी आणि चंद्रसागर दोन नाहींत आह्मीं जें सांगतों तें शास्त्राधारेंच सांगतों, आह्मीं सांगतों त्यावर तुह्मी विश्वास ठेवला पाहिजे चंद्रसागर यांनीं सांगितलें तें बरोबर आहे. **विधवाविवाह करून घेणाऱ्यास पूजेचा (प्रतिमेस स्पर्श करून) अधिकार नाहीं व त्यांनीं आहार देण्यासाठींही उभे राहतां येत नाहीं.**

" आपण शास्त्राधारें बोलतों असें ह्मणतां परंतु **कोणत्या शास्त्रांत हें असलें विधान आहे** तें सांगा ह्मणजे आह्मांस तें शास्त्र पाहून त्याबद्दल विचार करण्यास बरें पडेल. " असें चंदाप्पा ह्मणाले.

कोणत्या शास्त्रांत आहे हें आह्मी सांगूं अगर न सांगूं. तुमचा आमच्यावर भरवंसा आहे कीं नाहीं ? आमच्या भाषणावर तुह्मी भरंवसा ठेवला पाहिजे असें शांतिसागर महाराज उद्गारले ! पुनः अनंतराज यांनीं विधवाविवाह करून घेणारे किती पिढ्यांनीं शुद्ध होतात ? असें विचारलें त्यावर शांतिसागर ह्मणाले **सातपिढ्यांनीं विधवाविवाह करून घेणारा माणूस शुद्ध होतो.**

मग तुह्मीं तरी असें वागत काय ? कारण विधवाविवाह करून घेतल्यानंतर ज्यांची एकापिढी देखील लोटली नाहीं अशांच्यां हातून आपण बऱ्याच ठिकाणी आहार घेत आला आहांत ! तर याची वाट काय ?

तें आह्मांस कळण्यास मार्ग नाहीं, त्यावर रा. गुमते पुनः ह्मणाले कीं आहाराला निघण्याच्या अगोदर मंडळींना ज्यांच्या **सातपिढ्यांत विधवाविवाहाची चाल बंद आहे अशांनींच आहार देण्यासाठीं उभे रहावें अशी ताकीद तुह्मी कां देत नाहीं ? व अशी ताकीद न दिल्यामुळें**

तुम्हांस वारंवार प्रायश्चित घेण्याची पाळी येतच राहणार !

यावर महाराज निरुत्तर झाले ! तुम्हास शास्त्राधारच पाहिजे आमच्यावर तुमचा विश्वास नाहीं ? यावर चंदापा हाडोले म्हणाले- मी पुनः विचारतों कीं हें विधान कोणत्या शास्त्रांत केलें आहे तें सांगा? कारण " मी शास्त्राला गुरुपेक्षां अधिक मान देतों सबब मला शास्त्रवचनावरच विश्वास ठेवणें बरें वाटतें. शिवाय आतांच आपणांकडून असेंही सांगण्यांत आलें कीं " आमचें विशेष अध्ययन झालें नाहीं " यानंतर महाराज म्हणाले— " तुमचा माझ्या भाषणावर विश्वास नसेल तर मग सांगण्यांत तरी काय फायदा ? "

तेंही खरेंच ! मग येथें बसून भलभलतें ऐकण्यांत तरी कोणता फायदा ! असें म्हणून चंदापा, शंकर रणदिवे, अनंतराज व मोहोळची सर्व जैन-मंडळी उठून गेली. **मोहोळच्या सर्व जैनबंधूनी श्रीशांतिसागर महाराज यांच्यावर कडकडीत बहिष्कार घातला व एकही जैन पुनः महाराजांच्या दर्शनास गेला नाहीं. कित्येक जैनस्त्रियांनीं देखील " हे आमचे गुरु नव्हत "** असले आवेशयुक्त उद्गार काढले ! हे उद्गार द्वेषाचे नसून त्यांच्या अंतःकरणावर महाराजांनीं जो आघात केला होता त्याचेंच निदर्शक नाही असें कोणता सुज्ञ म्हणणार नाहीं ! महाराज महाव्रती आहेत तरी त्यांच्या तोंडून या बाबतींत त्यांना जें स्पष्ट दिसतें तें उत्तर येईल अशी आमची अपेक्षा होती; परंतु महाराजांनीं देखील आपल्या बुद्ध्यनुसार सरळ उत्तर न देता पंडिताकडे जेव्हां बोट दाखविलें ! तेव्हां सर्वच ग्रंथ आटोपला असें समजून आमची निराशा झाली !

विधवा-विवाह चर्चा.

अर्थात् ब्रह्मचर्याणुव्रत, अहिंसा, कर्मसिद्धांत इत्यादिकांच्या योगें केलेलें विधवाविवाहाचें मंडन.

विधवाविवाह या विषयावर आह्मी व इतर लोकांनीं वेळोंवेळीं वर्तमानपत्रांतून जाहीर चर्चा केलेली आहे व ती वर्तमानपत्रांच्या वाचकांना विदित असेलच. चर्चा झाली असून देखील पुनः हा विषय पुस्तकरूपानें मांडण्याचें कारण ह्मणजे शांतिसागर महाराज व त्यांच्या संघाचें दक्षिणी जैनांबद्दलचें अनुदारपणाचें व त्यांना स्वधर्मापासून विन्मुख करणारें वर्तनच होय. या विषयांची सांगोपांग माहिती आमच्या दक्षिणी जैनबांधवांस असावी व त्यांचें धर्मस्खलन होवूं नये एवढाच एक हेतु हा लेख लिहिण्यांत आहे.

विधवाविवाह हा शब्द पुढें आल्याबरोबर जर कोणत्या गोष्टीची प्रामुख्यानें चर्चा करणें असेल तर ती **गृहस्थांच्या ब्रह्मचर्याणुव्रताची व जैनधर्माचें सारभूत तत्व जें अहिंसा याची आणि तशीच जैनकर्मसिद्धांताची व या शिवाय शिष्टसंमतलोकाचार आणि जैनांचा ऱ्हास इत्यादि गोष्टींचाहि विचार करणें जरूरीचें आहे.** हें अणुव्रत पाळणारांना धार्मिक पुण्य मिळतें पण त्याबरोबरच सामाजिक व शारीरिक ऱ्हास थांबविण्याचेंही मोठें श्रेय त्यांच्या वाट्यांस येतें हें विसरून चालणार नाहीं समाजाची नैतिकबंधनें शिथिल होवूं नयेत, कोणतेंहि कार्य करण्यासाठीं मनुष्याला उत्साह रहावा, जनसंख्येची योग्य ती वाढ व्हावी व कुमार्गाला लागून आपण वाऱ्याबरोबर उडून जाणारीं पाप्यांचीं पितरें होवूं नयेत एतदर्थ ब्रह्मचर्याणुव्रत पालन करणें अत्यंत आवश्यक आहे व हें आपलें कर्तव्य आहे; ही असलीच उदार व सर्वसंग्रहकारी दृष्टी ठेउनच मोटमोठ्या अधिकारी आचार्यांनीं या अणुव्रताची महती गायिलेली आहे.

अशा महत्वाच्या अणुव्रताविषयी आमच्या धर्मग्रंथांतून जो घोंटाळा दिसून येतो तो पाहिला ह्मणजे मनाला किळस येते व अशा घोंटाळ्यास मोटमोठे पंडित मान्यता देत असतांना पाहून त्यांची व त्यांच्या ज्ञानाची कींव करावीशी वाटते ! जैनसमाजांत सध्यां जें दिसेल त्याप्रमाणें स्पष्टपणें जनतेपुढें मांडणारें पंडितही नाहीत व साधुही नाहीत ही अत्यंत खेदाची गोष्ट आहे ! पंडित दुराग्रही बनले आहेत व साधु अज्ञानी असल्यामुळें "पंडित कहे सो प्रमाण" याप्रमाणें वागत आहेत ! त्यामुळें ज्या न्याय्य गोष्टी समाजांत प्रचलित झाल्या पाहिजेत त्या धर्मग्रंथांचा वेडावांकडा आधार देवून दडपून टाकण्यांत येतात आणि समाजाला भलतेंच वळण लावून समाज वरचेवर अधोगतीला पोंचविण्यात येतो.

जगांतील यच्चावत् धर्माकडे पाहिल्यास त्यांत आपल्या बुद्धीस न पटणारे असें बरेंच घोटाळे असतात. धर्मशास्त्रांतील हे असले घोटाळे मानणारा एकपक्ष व हें घोटाळे पार झुगारून द्यावेत असें ह्मणणारा एक पक्ष असे नेहमीं दोन पक्ष प्रत्येक धर्माच्या बाबतींत दिसून येतात वेड्यावांकड्या गोष्टींची संगतवार मांडणी मुळींच करतां येत नसल्यामुळें पंडितांची जी कांहीं त्रेधा उडते व " असले घोटाळे शहाण्या माणसांनीं लोकांपुढें मांडूं नयेत " ह्मणून जी सूचना वारंवार त्यांच्याकडून देण्यांत येते यावरूनच त्यांचा पाया किती पोकळ आहे हें दिसून येतें असो. आतां आपण ब्रम्हचर्याणुव्रताविषयीं सर्वांत अधिकारी आचार्य जे समंतभद्र ते आपल्या लोकप्रिय अशा रत्नकरंडक श्रावकाचारांत काय म्हणतात तें पाहूं स्वामी समंतभद्राचार्य म्हणतात—

न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसंतोष नामाऽपि ॥

पापाच्या भीतिस्तव जो स्वतः परस्त्रीशीं संभोग करीत नाहीं व दुसऱ्यास सांगत नाहीं त्याला परदारनिवृत्त अर्थात् परस्त्रीत्यागी म्हणावें व

याचेंच दुसरें नांव स्वदारसंतोषी— आपल्या भार्येचे ठिकाणीं समाधान ठेवणारा — होय. अर्थात जो परदारानिवृत्त आहे. त्याला वेश्या व परस्त्री- पूर्णपणें वर्ज्य आहे हेंच खरें ब्रम्हचर्याणुव्रत.

ही व्याख्या आमच्या वाचकांनीं पूर्णपणें चांगली ध्यानांत ठेवावी ह्मणजे या अणुव्रताच्या बाबतींत दोन भेद करून (स्वदारसंतोष व परस्त्री त्याग) जो शिमगा आमच्या इतर ग्रंथकारांनीं केला आहे तो ताबडतोब ध्यानांत येईल. या अणुव्रताविषयीं सोमदेवसूरि आपल्या यशास्तिलकचंपू उपासकाध्ययन प्रकरणांत काय ह्मणतात तें पहा——

" वधू-वित्तस्त्रियौ मुक्त्वा सर्वत्रान्यत्रतज्जने ।
माता स्वसा तनूजेति मतिर्ब्रह्मगृहाश्रमे ॥ "

स्वस्त्री आणि वेश्या यांना सोडून बाकीच्या ज्या स्त्रिया आहेत त्यां-च्या ठिकाणीं आई, बहीण आणि मुलगी अशी बुद्धि असणें याला गृहस्था-श्रमींचें ब्रह्मचर्याणुव्रत ह्मणतात.

वाचकहो ! या दोन ग्रंथकर्त्यांच्या ह्मणण्यांतील फरक तुमच्या ध्यानांत सहज येईल. एक ग्रंथकार यावत् परस्त्रियांचा त्याग कर-ण्यास सांगतात तर दुसरे वेश्या उपभोगिली तरी तो ब्रह्मचर्याणुव्रती होय असें ह्मणतात. धार्मिकदृष्टीनें वेश्या भोगणारा माणूस कसा ब्रह्मचर्याणुव्रती होवूं शकतो हें एक पंडितांनाच माहीत ! किंवा त्या ग्रंथ कर्त्यालाच माहीत. धार्मिकदृष्टी सोडून दिली तरी देखील सावारण मनु-ष्याला देखील वेश्यासेवन करण्यामुळें समाजांत किती हीन लेखण्यांत येते व त्याचा दर्जा किती नीच समजला जातो व त्याला समाजांत कशी खालीं मान घालावी लागते हें सर्वांना माहीतच आहे. वेश्यासेवन करणारा माणूस किती नीच असतो व त्याचा धार्मिक सामाजिक दर्जा किती हिणकस असतो याविषयीं मोठमोठ्या आचार्यांचीं पुष्कळ प्रमाणभूत वचनें आहेत; पैकीं कांहीं येथें आम्हीं देत आहोंत त्यांवरून या विषयावर चांगला प्रकाश पडेल.

तां वेश्यां सेवमानस्य मन्मथाकुलचेतसः ।
तन्मुखं चुंबतः पुंसः कथं मद्यव्रताप्यणुव्रतम् ॥ १ ॥
ततोऽस्यौपण्यरमणी चतुर्थव्रतपालिना ।
यावज्जीव परित्याज्या जातनिर्घृणमानसा ॥ २ ॥
(अमितगति आचार्य कृत सुभाषितरत्नसंदोह)

वेश्यादिपरनारीषु संगं कुर्वंति येऽधमाः ।
मातंगा इव तेऽस्पश्यां भवन्ति भुवनत्रये ॥ ३१ ॥
(सकलकीर्ति प्रश्नोत्तरश्रावकाचार)

कामशुद्धिर्मता तेषां विकामा ये जितेंद्रियाः ॥
संतुष्टाश्च स्वदारेषु शेषाः सर्वे विडंबकाः ॥
[जिनसेनकृत महापुराण पर्व ३९]

या वरील श्लोकांत अमितगति आचार्यांनीं ब्रह्मचर्याणुव्रतीला यावज्जीव-मरेपर्यंत वेश्यादिपरस्त्रीचा त्याग सांगितलेला आहे. तर दुसरे सकलकीर्ति आचार्य वेश्या व इतर कोणत्याही परस्त्रीशीं संग करणाऱ्यास मांगा प्रमाणें अस्पृश्य समजावें असें बजावून सांगतात; तर तिसरे जिनसेनाचार्य स्वदारसंतोषी लोकांशिवाय बाकी सर्व लोक विडंबक म्हणजे दांभिक व धूर्त होत असें म्हणतात! वेश्यासंगाविषयीं मोठमोठ्या आचार्यांनी कडक उद्गार काढले असतांना देखील तिकडे दुर्लक्ष करून आर्षप्रामाण्य मानणारे पंडित लोक शांतिसागर महाराज व त्यांचा संघ असल्या शिथिलाचाराला जाणून बुजून उचलून धरीत आहेत ही खरोखरच खेदाची गोष्ट आहे. सोमदेवसूरींनीं सांगितलेलें ब्रह्मचर्याणुव्रत म्हणजे वेश्यासेवन करण्याचा दिलेला परवाना असून गृहस्थाची नीतिमत्ता बिघडविण्यास कारणीभूत होणार आहे.

आशाधर पंडितांनीं सागारधर्मामृत नांवाचा एक ग्रंथ लिहिला आहे या ग्रंथांत श्रावकांचा आचार सांगितलेला असून तो श्रावकाकरितांच लिहिलेला आहे. या ग्रंथांत देखील ब्रम्हचर्याणुव्रताविषयीं बराच घोटाळा दिसून

येतो; सोमदेवसूरीपेक्षां आशाधरांनीं आपल्या ग्रंथांत नीतिमत्तेचें जें खोबरें उडविलें आहे तें पाहिलें व अशा धुळवडीची घाण आपल्या अंगास पुसून घेण्यांत पंडित लोकांना जी धन्यता वाटतें ती पाहिली ह्मणजे या लोकांना नीतीची व्याख्या तरी ठाऊक आहे कीं नाहीं याची शंका येते. विधवाविवाह करूं नये, तो व्यभिचार होय, तो करून घेणारे लोक शूद्र आहेत, त्यांना पूजेचा अधिकार नाहीं, साधूंना आहार देण्याची त्यांची धार्मिक पात्रता नाहीं,ते लोक सातपिढ्यानंतर शुद्ध होतात अशी बेजबाबदारपणें बडबड करणाऱ्या पंडितांनीं व याच पंडितांकडून मारले गेलेल्या शांतिसागरसारख्या साधूंनीं अशाधरानें ब्रह्मचर्याणुव्रती गृहस्थाला व्यभिचार करण्यांस जें धार्मिकसर्टिफिकेट दिलेलें आहे तें काळजी पूर्वक वाचण्याची तसदी घ्यावी व जें खरें दिसेल तें बोलण्याचे धाडस असल्यास तसें स्पष्टपणें बोलून दाखवावें. असें त्यांच्या हातून होत नसल्यास दाक्षिणात्य जैनांनीं यांच्या जिभेस आळा घालण्याचा प्रयत्न केला पाहिजे! आतां पंडित आशाधरांनीं ब्रह्मचर्याणुव्रताविषयीं जे तारे तोडले आहेत तें पाहूं. —

सागारधर्मामृत अध्याय ४ या मध्यें ब्रह्मचर्याणुव्रताचे अतिचार सांगतांना वेश्या अथवा रखेली स्त्रियांचें सेवन करणें एवढेंच नव्हें पण याही पेक्षां अधिक व्यभिचारपोषक हुकूम श्रावकांस दिलेला आहे " **अन्येत्वपरिगृहीतकुलांगनामप्यन्यदारवर्जिनोऽतिचारमाहुः** " ह्मणजे ब्रह्मचर्याणुव्रती गृहस्थानें अपरिगृहित [स्वामी नसलेली] कुलांगना स्त्रीचें सेवन करणें हा अतिचार आहे अनाचार नव्हें असें सांगितलें आहे याच ग्रंथकर्त्यानें स्वतः लिहिलेल्या टीकेंत " **अपरिगृहीता स्वैरिणी, प्रोषितभर्तृकाकुलांगना वा अनाथा** " ह्मणजे प्रोषितभर्तृकाकुलांगना [जिचा पति परदेशी गेला असून बेपत्ता आहे] आणि अनाथा या शब्दावरून विधवाकुलांगना अशा या दोन स्त्रियांना अपरिगृहीत या सदरांत घालून त्यांचें सेवन केलें तरी व्रतभंग न होतां फक्त अतिचार घडतो असें सांगितलें आहे. अर्थात आशाधर पंडितांनीं वेश्याच काय पण कुलीन अशा

सधवा विधवा स्त्रीयांशीं संभोग करून मौज लुटली तरी देखील व्रतभंग होत नाहीं असें ह्मटलें आहे! कसलें हें ब्रह्मचर्याणुव्रत!? कोणत्या दर्जाची ही नीतिमत्ता! अशा गृहस्थाला जर ब्रह्मचर्याणुव्रती ह्मणायचें तर व्यभिचारी कोणास ह्मणावें!? व्रतभंग होतो तरी केव्हां? साधारण गृहस्थाला देखील हें विधान वाचून नाकास पदर लावाला वाटेल, मग असल्या ग्रंथकारांना असली विधानें करण्यांत मनलज्जा नाहीं तरी जनलज्जा तरी वाटावयास नको होती काय?

पंडित आशाधरांचें हें विधान इतर ठिकाणीं त्यांनीं सांगितलेल्या वचनास कसें हरताळ फांसणारें व विसंगतपणाचें आहे तें पहा.—

पंडित आशाधरांनीं पाक्षिकश्रावकाला सप्तव्यसनांच्या त्यागांतच वेश्या व परस्त्री या दोन व्यसनांचा त्याग करण्यास सांगितलें आहे. नंतर पहिल्या प्रतिमेंत सप्तव्यसनाचे अतिचार देखील टाळण्यास सांगितलें आहे ह्मणजे वेश्येच्या घरीं जाणें येणें बोलणें देखील वर्ज्य सांगितलें आहे. अशा प्रकारें वेश्या व परस्त्री या दोन व्यसनांचा अगोदरच सातिचार त्याग करण्यास सांगून तेच पुढें दुसऱ्या प्रतिमेच्या वर्णनांत वेश्याच नव्हे पण सधवा अथवा विधवा कुलीनस्त्रिया संभोगिल्या तरी त्याचें तें व्रत भंग पावत नाहीं अतिचार लागतो असें ह्मणतात. यावरून त्यांच्याच पूर्वीच्या वचनाला तेच विरोध करीत आहेत व विसंगतता आणीत आहेत हें तुमच्या ध्यानांत आलें असेलच.

आशाधरांचेहि हें वचन किती विपरीत आहे व यांस मोठमोठ्या ग्रंथांत विरोध करणारीं वचनें कशीं सांपडतात यांचा थोडासा विचार केल्यास तें अस्थानीं होणार नाहीं 'पंचाध्यायी' नामक ग्रंथांत श्लोक ७२७ अध्याय २ मध्यें खालील वचन आहे—

यथाशक्ति विधातव्यं गृहस्थैर्व्यसनोज्झनं।
अवश्यं तद्व्रतस्थैस्तैरिच्छद्भिः श्रेयसीं क्रियां॥ ७२७॥

गृहस्थानें (अव्रती) शक्त्यनुसार सप्तव्यसनांचा त्याग केला पाहिजे आणि व्रती गृहस्थानें या व्यसनांचा अवश्य त्याग केलाच पाहिजे अर्थात् पंचाध्यायीकारांनीं व्रती गृहस्थाला वेश्या व परस्त्री यांचा त्याग आवश्यक आहे असें म्हटलें आहे, तर सोमदेव वेश्या सेवन करण्यास हरकत नाहीं असें म्हणतात ! व आशाधर स्वस्त्री प्रमाणेंच इतर कोणतीही स्त्री उपभोगिली तरी तो व्रती होय असें म्हणतात. या दोन ग्रंथकर्त्यांनीं रंडिबाज ब्रह्मचाऱ्यांच्या सोईचा एक वर्ग निर्माण करून समाजांत कुलीनस्त्रियांच्या पावित्र्यावर राजरोसपणें दरोडे घातले तरी तो ब्रह्मचर्याणुव्रती होय असें स्पष्ट म्हटलें आहे! हें साधारण बुद्धीच्या माणसाला देखील पटेल असें आम्हांस वाटत नाहीं. सत्याकडे ओढा असणाऱ्या बऱ्याच पंडितांनीं देखील हे ग्रंथ शिथिलाचारपोषक आहेत असें आपलें मत दिलें आहे ही गोष्ट ध्यानांत ठेवण्याजोगी आहे. सोमदेव हे सर्वसंगपरित्यागी मुनी होते असे पंडित म्हणतात. अशा सोमदेवसूरींनी ब्रह्मचर्याणुव्रता विषयीं असलें शिथिलाचारपोषक विधान केलें असून देखील त्याचा निषेध करीत नाहींत. परंतु ब्रह्मचारी जैनधर्मभूषण शीतलप्रसादजी हे विधवाविवाहाचे खंडन करीत नाहींत म्हणून त्यांच्यावर इतकी आग कां पाखडावी व त्यांच्याविषयीं निषेधात्मक ठराव तरी पास कां करावेत ! हे तरी सप्तमप्रति माधारी आहेत ! हा सर्व द्वेषाचा खेळ आहे व यांत खऱ्या तत्वाचा कोठेंही मागमूस दिसत नाहीं. सोमदेव आणि आशाधर यांनीं वर्णिलेला व्रती होवूं शकत नाहीं. परंतु त्याला अविरत नांवाच्या चौथ्या गुणस्थानांत जागा देणें इष्ट होईल. तेथें देखील सम्यक्त्वाची शुद्धता करण्यास्तव व्यसनांचा त्याग करावाच लागतो म्हणून रयणसारांत विधान केलें आहे.

भयवसणमलविवज्जी संसारसरीरभोगणिव्विण्णो ।
अट्ठगुणंगसमग्गो दंसणसुद्धो य पंचगुरुभत्तो ॥ ५ ॥

सातभय, सातव्यसनें, पचवीस मलदोष हीं ज्यांनी सोडली आहेत व जो संसारभोगापासून उदास असतो व संवेगादि गुणांनीं युक्त असतो तो

शुद्ध सम्यक्त्वी होय. अर्थात अविरत गुणस्थानांत देखील व्यसनत्याग सांगितला असल्य मुळे पांचव्या गुणस्थानवर्ती व्रतीश्रावकास वेश्या व परस्त्री उपभोगण्यास मोकळीक देणें हें आगमाच्या विरुद्ध आहे.

" इत्वरिका गमन " या शब्दांतील गमन याचा अर्थ तत्वार्थाचे टीकाकार श्रुतसागर व स्वामिकार्तिकेयानुप्रक्षेच टीकाकार शुभचंद्र यांनीं खालील प्रमाणें केलेला आहे. " गमन इतिकोऽर्थः -जघनस्तन वदनादि निरीक्षणं संभाषणं पाणिभ्रूचक्षुरंतादि संज्ञाविधानमित्येवमादिकं निखिलं रागित्वेन दुश्चेष्टितं गमनमित्युच्यते" ह्मणजे गमन याचा अर्थ—वेश्यादि परस्त्रियांबरोबर वाम भावनेनें बोलणें, त्यांचें अंगोपांग निरीक्षण करणें, हात डोळे स्वरूप इत्यादिकांनीं त्यांना खुणा देणें इत्यादि दुष्ट क्रिया करणें यास गमन असें ह्मणतात.

आतां " गमन " याचे समंतभद्र स्वामींनीं आपल्या रत्नकरंड श्रावकाचारांत दोन अर्थ केलेले आहेत. एक संभोग करणें व दुसरा वरील प्रमाणें; यांपैकी संभोग करणें हा अर्थ ब्रह्मचर्याणुव्रताचें विधान करतांना घ्यावयाचा असून दुसरा अर्थ अतिचारामध्यें इत्वरिकागमन ह्मणून जो शब्द त्यामध्यें वरील प्रकारानें ह्मणजे श्रुतसागर व शुभचंद्र यांनीं केलेल्या अर्थाप्रमाणें घ्यावयाचा आहे. एका शब्दाचे अनेक अर्थ होतात परंतु कोणता अर्थ कोठें योजावयाचा हें आचार्यांच्या मूळ वचनाला विरोध न आणील अशा पद्धतीनेंच योजणें अवश्य असतो. नाहींतर " मूले कुठारः " या म्हणीप्रमाणें सर्वत्र खेळखंडोबा उडावयाचा ! आशाधर पंडितांनीं या गमन शब्दाचा अतिचारांच्या जागीं संभोग असा अर्थ केल्यामुळें ब्रह्मचर्याणुव्रताच्या बाबतींत अनर्थ ओढवलेला आहे. तेव्हां यास अतिचार ह्मणावें कीं, अनाचार ह्मणावें हें सूज्ञ वाचकांनींच ठरवावें.

यावरून पहातां आशाधर व सोमदेव यांच्या ब्रह्मचर्याणुव्रताच्या विधानाविरुद्ध श्री. कुंदकुंदाचार्य, उमास्वामी, पूज्यपाद, अकलंक, समंतभद्र विद्यानंदि, जिनसेन, पद्मनंदि, अमितगति, सकलकीर्ति, स्वामिकार्तिकेय,

अमृतचंद्र, चामुंडराय, श्रुतसागर, शुभचंद्र इत्यादि आचार्यांच्या व ग्रंथकर्त्यांच्या वचनांचा आधार आहे. ज्यांना हे आधार पाहणें असेल त्यांनीं त्या त्या ग्रंथांत अवश्य पहावे म्हणजे खात्री होईल.

सोमदेव व आशाधर यांच्या वचनांत धडधडीत व्यभिचारवर्धक विचार दिसत असून देखील अशा ग्रंथ अक्षरशःप्रामाण्य मानणारे पंडित व या पंडितांचेच फानोग्राफ श्री. शांतिसागर व त्यांचा संघ हीं अभद्रवचनें समंतभद्र व पूज्यपाद या सारख्या मोठ्या आचार्यांच्या वचनांशीं वेड्यावांकड्या तऱ्हेनें कसें तरी करून जुळविण्याचा कसोशिचा प्रयत्न करीत आहेत! परंतु हें त्यांचें करणें शालजोडीला गोधडीचें ठिगळ देण्याप्रमाणें हास्यास्पद आहे. जर पंडितांना व त्यांच्याच शब्दास प्रमाण मानणाऱ्या साधूंना हीं वचनें प्रमाण असतील तर त्यांनीं अशा तऱ्हेचा उपदेश कधीं कोठें आपल्या शिष्यवर्गाला व बहु जनसमाजाला दिला आहे काय? कारण अशा तऱ्हेचा उपदेश देणें त्यांच्यामतें धर्म विरुद्ध ठरत नाहीं! अशा प्रकारची ब्रह्मचर्याणुव्रतें पाळून पुण्यप्राप्ति करून घेतल्याच्या कथा कोणत्याहि जैन ग्रंथांतून दाखऊन दिल्यास अथवा एकाद्या विधवास्त्रीनें पुनर्विवाह केला म्हणून ती अमक्या नरकास गेली असल्याचीं कथा दाखवून दिल्यास त्यांच्या शिष्यवर्गावर व बहुजन[illegible].

वरील सर्व विवेचनां[illegible] लक्षांत ब्रह्मचर्याणुव्रताविषयीं जो गोंधळ या [illegible] आहे तो पूर्णपणें ध्यानांत आलाच असेल. वाचकहो! य[illegible] तुम्ही व्यभिचार समजणार कीं व्रती समजण[illegible] गृ[illegible] त्याच्या हातून ज्यांना आहार चालत नाहीं [illegible] व्यभिचाऱ्याच्या हातून आहार चालतो हें एक मोठें [illegible]! [illegible] साधु जीं विधानें धडधडीत व्यभिचा[illegible] त्या[illegible] लोक निर्माण होणें शक्य आ[illegible] अशी

न ह्मणतां ज्यांत व्यभिचाराचा बिलकूल संबंध नाहीं जे संबंध देव पंच, व मंत्रोच्चार इत्यादिकांच्या साक्षीनें व विधानानें होतात अशा विधवाविवाहास व्यभिचार ह्मणणें अत्यंत धाडसाचें आहे व हें मेंदूच्या कमकुवतपणाचें लक्षण आहे. ज्यांना स्वतःला विचार करण्याची बुद्धि नाहीं अशा साधूंनीं पंडितांच्या सांगण्यावरून विधवाविवाहाविषयीं भलभलतीं विधानें करणें हें त्यांच्या इभ्रतीस शोभत नाहीं! आशाधर व सोमदेवांचा हा व्यभिचारी व्रती आहार देण्यास योग्य कीं विधवाविवाह करून घेणारा गृहस्थ आहार देण्यास योग्य? हें शांतिसागर महाराजांनीं शांतपणें विचार करून ठरवावें "स्वस्त्री शिवाय वेश्या व परस्त्री यांचें सेवन करणारा ब्रह्मचर्याणुव्रती माणूस "विडंबक" होय हें जिनसेनाचार्यांचें वचन व सकलकीर्तिचें "मातंगा इव तेऽस्पश्याः" हे वचन आधुनिक शांतिसागराचार्य ध्यानांत आणतील काय? व अशा अस्पृश्य शूद्र— मांग— असच्छूद्राच्या हातून मात्र महाराजाना आहार चालेलच कारण त्यांच्या मतें हा सशास्त्र रंडिबाजीहि ब्रह्मचारी ठरतो ह्मणूनच ना-

विधवाविवाहाची चर्चा करतांना ब्रह्मचर्याणुव्रत, अहिंसा व जैनांचा? कर्मसिद्धांत या तीन मुद्दयांचा प्रमुखपणें विचार करणें अत्यंत आवश्यक आहे व हें एकदां आह्मीं सुरुवातीस सांगूनही टाकलें आहे.

[illegible] जैनांत अर्थात् शेतवाळ, पंचम, चतुर्थ, कासार इत्यादि जातींत [illegible] होतो, शांतिसागर महाराजांचा जन्म देखील विधवाविवा[illegible] जातींतच झालेला आहे. असें असून देखील शांतिसागर महारा[illegible] कांहीं [illegible]स्तुतिपाठक व [illegible]मन्य [illegible]जींच्या व पंडितांच्या नादीं लागून वि[illegible] व्यभिचार [illegible] व [illegible] विधवाविवाहित आहेत त्यांच्या हातानें [illegible] त्यांचें घरीं आहार [illegible] असें ह्मणून दक्षिणी जैनांचा उघ[illegible] उपमर्द करीत आहेत [illegible] महाराज यांचें शास्त्राध्ययन [illegible] लेलें नाहीं ही गोष्ट [illegible] कबूल करावी लागेल बाकी कित्येक अल्पज्ञ पंडितांनीं [illegible] 'त्रिकाल सर्वज्ञ' (?) पदवी देवून

टाकलेली आहे ! पण त्यांत कांहीं राम नाहीं ! असें असून देखील शांति-सागर महाराज अशा तऱ्हेचे उद्गार काढून दाक्षिणी जैनांचा उपमर्द करतात ही खरोखरच खेदाची व अन्यायाची गोष्ट आहे विधवाविवाह कोणत्या परिस्थितींत स्वीकारला जातो ? कां स्वीकारला जातो ? त्यापासून फायदा आहे कीं तोटा आहे ? त्याच्या स्वीकारापासून धर्मपालन करण्यास आड-काठी येते कीं काय ? इत्यादि गोष्टींचा शांतपणें शांतिसागर महाराजांनीं विचार करावयास नको काय ? त्यांनीं निःपक्षपातबुद्धिपुरःसर व खऱ्या कळकळीनें या पूर्णब्रह्मचर्यव्रत धारण करण्यास असमर्थ असणाऱ्या विधवांचें " स्थितिकरण " करण्याविषयीं त्या दुराग्रही व अहंमन्य पंडितांच्या घो-ळक्याला सोडून कधीं विचार केला आहे काय ? !

श्रावकांची जी पांच अणुव्रतें सांगतलीं आहेत. त्यांत ब्रह्मचर्याणुव्रत हें एक अणुव्रत आहे; व हें अणुव्रत पुरुषाप्रमाणें स्त्रियांनीं देखील पाळावया-चें असतें. पुरुषाची एक बायको मेली तर तो दुसरी बायको अणुव्रताचें पालन आपल्या हातून योग्य प्रकारें व्हावें व वेश्यावांकड्या मार्गावर आ-पल्या आयुष्याची गाडी जावूं नये म्हणून करीत असतो; पुत्रसंतति असली तरी देखील तीन तीन, चार चार, बायका करून घेणारे लाल आपल्या जैनसमाजांत आहेत ! व हे असले लाल सध्यां शांतिसागर महाराजांबरोबर फिरत आहेत. या लोकांनीं हे जे इतके विवाह केले याचीं कारणें काय ? याचा शांतिसागर महाराज शांतपणें एखाद्या दिवशीं तरी विचार करतील काय ? जर हे विवाह ब्रह्मचर्य अणुव्रताचें पालन होण्यासाठींच केलेले आ-हेत किंवा केले जातात असें शांतिसागर महाराजांचें म्हणणें असेल तर ज्या तरुण स्त्रीचा पति मृत झाला असेल व ती आपल्या मनोविकारांना ताब्यांत ठेवण्यास असमर्थ असेल तर अशा स्त्रीनें ब्रह्मचर्याणुव्रताचें पालन कसें करावें? अशा स्त्रीनें जर आपलें पाऊल वांकडें पडूं नये व आपल्या हातून ब्रह्म-

चर्याणुव्रताचें पालन व्हावें व पुण्योपार्जन व्हावें म्हणून जर पुनः विवाह केला तर ती ब्रह्मचर्याणुव्रती समजली जाणार नाहीं काय ?

स्त्रीचा पति मेला असतांना पांच अणुव्रतांपैकीं चार अणुव्रतें राहतात व ती जर ब्रह्मचर्य महाव्रत पाळण्यास असमर्थ असेल तर तिनें अणुव्रत देखील पाळूंच नये कीं काय ? ! मनोविकार हे पुरुष आणि स्त्रियांना दोहोंनाही सारखाच त्रास देतात व या कामीं अज्ञान दशेमुळें पुरुषापेक्षां स्त्रियांच अधिक लौकर बळी पडतात; ही गोष्ट शांतिसागर महाराजानाही कबूल करावी लागेल. विधवास्त्रियांपैकीं सर्वच विधवा पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करण्यास खात्रीनें समर्थ असतातच असा शेरा कोणत्या तीर्थकरानें अगर प्राचीन मुनीनें दिलेला आहे ? ! समाजांत सर्वच लोक उच्च आचरण करण्यास समर्थ असे असते तर सर्व जणांनीं चार चार पांच पांच विवाह करून न घेतां शांतिसागर महाराजासारखी नग्न दीक्षाच घेतली असती ! शांतिसागर महाराज नग्न दीक्षा चालविण्यास समर्थ आहेत मग विधवाविवाहाचे कट्टे-द्वेष्टे रा० रावजी सखाराम, पं वंशीधर पं. जिनदास यांना तरी ती दीक्षा कां झेपूं नये ! ते ती दीक्षा कां घेत नाहीत? हे लोक ही दीक्षा घेत नाहींत याचें दुसरें तिसरें कोणतेंही कारण नसून ते ही दीक्षा चालविण्यास व पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रताचें पालन करण्यास असमर्थ आहेत हेंच होय ! आणि म्हणून ते गृहस्थाश्रमांत पत्नींना घेवून भोगोपभोगांत दंग राहून कालक्रमणा करीत आहेत ! यांना काय विद्वत्ता कमी आहे ? या दीक्षेत पुण्योपार्जन होत नाहीं असें त्यांना वाटतें ? कां या दीक्षेत कांहीं अर्थ नाहीं व विनाकारण हा कायक्लेश आहे असें त्यांना वाटतें ? किंवा "वृद्धा नारी पतिव्रता" या म्हणीप्रमाणें इंद्रियें शिथिल झाल्यावर दीक्षा घेणार ! ?

शास्त्रांत असा अनेक ठिकाणीं उल्लेख आहे कीं— आपल्या शक्ती-प्रमाणें कोणतेंही व्रत धारण करावें. व अशाच प्रकारें कांहीं कांहीं लोकांना

प्राचीन मुनींनी व्रतें दिलेली आहेत. त्यांचा उपदेश करण्याचा रोंख असाच दिसून येतो कीं– कोणत्याही प्राण्यांला कसेंतरी करून धर्ममार्गामध्येंच नेहमीं स्थिर करीत असावें व हा त्यांचा उद्देश पुरुषार्थसिद्ध्युपायग्रंथांत अमृतचंद्रांनीं व्यक्त केला आहे तो असा– **बहुशः समस्तविरतिं प्रदर्शितां यो न जातु गृण्हाति । तस्यैकदेशविरतिः कथनीयानेन बीजेन ॥** प्रथम आचार्य श्रेष्ठ दर्जाचें ह्म० मुनीचें चारित्र पाळावयास सांगतात. पण तो त्या गोष्टीस असमर्थ असल्यास त्यांच्या खालच्या पायरीचें ह्म० गृहस्थाश्रमीचें चारित्र पाळण्यास सांगतात. इतकेंही करून तो जर या गोष्टीसही खरोखरीच असमर्थ आहे असें त्यांना दिसून आल्यास सरतेशेवटीं याच्याहि खालच्या पायरीचें अनुकरण करविण्याच्या हेतूनेंच–'**अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः**' ह्म० मुळींच न करण्यापेक्षां अगदीं स्वल्प प्रमाणांत कां होईना करीत राहणें बरें, या नीतिखालीं धर्मबोध देवून होतांहोईलतों धर्ममार्गापासून अगदींच पराङ्मुख न होतां त्यांतच तो जेणें करून स्थिर होईल अशाच योजकबुद्धीनें व खऱ्या कळकळीनें तें पुनः पुनः प्रयत्न करीत असतात. उदाहरणार्थः — खादिरसार भिल्लाला संपूर्ण मांसाशनत्याग होत नव्हता ह्मणून मुनींनीं त्याला फक्त कावळ्याचें तरी मांस खावूं नकोस; असलें क्षोटेलानी व त्याला झेपेल असलें व्रत दिलें! त्याचप्रमाणें रावणानें खुद्द अनंतवीर्य केवलीभगवानाजवळ–' मी कोणत्याही स्त्रीवर बलात्कार [जबरी संभोग] करणार नाहीं ' असलें व्रत घेतलें होतें! व या गोष्टीला केवलीभगवानांची अनुमति होती. या गोष्टीवरून काय बोध घ्यावयाचा ? धर्मपालन जितकें शक्य असेल व जितकें झेपत असेल अर्थात् आपापल्या शक्तिस्थित्यनुरूप जेवढें पाळतां येणें शक्य असेल तेवढें पाळावें. हीं वरील जीं व्रतें देण्यांत आलेली आहेत त्यांचा उद्देश फक्त अहिंसेचें थोड्या अंशानें कां होईना पालन व्हावें एवढ्यासाठींच दिलेली आहेतनां?

यतीनां श्रावकाणां च व्रतानि सकलान्यपि ।
एकाऽहिंसा प्रसिध्द्यर्थं कथितानि जिनेश्वरैः ॥

जिनेश्वर भगवानांचा मुनींचीं व श्रावकांची व्रतें सांगण्यांत फक्त अहिंसेचें पालन व्हावें हा मुख्य उद्देश आहे. या दृष्टीनें पाहिल्यास पूर्ण ब्रह्मचर्य पाळण्यास असमर्थ असलेल्या विधवांनी गुप्त व्यभिचार करून गर्भपात, बालहत्या इत्यादि नाना तऱ्हेची हिंसेची कृत्यें करण्यापेक्षां विवाह करून राहणें यांतच अहिंसेचें पालन व त्याबरोबरच ब्रह्मचर्याणुव्रताचें पालन होवून धर्मवृद्धि होते हें नाकबूल करून चालेल काय ? !

हिंसा ही चार प्रकारची आहे—आरंभी. विरोधी (किंवा इन्साफी), उद्यमी. व संकल्पी, यांपैकीं गृहस्थाला ह्मणजे श्रावक व श्राविकांना संकल्पी हिंसेचाच फक्त त्याग करावा लागतो. कारण आरंभी, विरोधी (अथवा इन्साफी) व उद्यमी हिंसा प्रापंचिक लोकाना टाळता येणें शक्य नसतें. यासाठीं मनोविकाराला जिंकण्यास असमर्थ असलेल्या विधवा स्त्रियांनां गुप्त व्यभिचार करून गर्भपात. बालहत्या इत्यादि प्रकारची संकल्पी हिंसा टाळावयाची असेल तर त्यांना विवाहाशिवाय दुसरा योग्य असा मार्गच नाही ! कारण संकल्पी हिंसा टाळणें हें श्रावक श्राविकास्त्रींचें पवित्र कर्तव्य आहे. मनोविकारास ताब्यात ठेवण्यास असमर्थ असलेल्या विधवांना विवाहाशिवाय दुसरा एखादा न्याय्य मार्ग आम्हांस कोणी दाखवून दिल्यास आम्ही त्यांचे शतशः आभार मानूं !

ज्या समाजांत पुनर्विवाह होत नाहीं आणि ह्मणून ज्यांच्याकडून शांतिसागर आहार घेतात अशा समाजांत गुप्तव्यभिचार, गर्भपात, बालहत्या इत्यादि पातकें होत नाहींत असें शांतिसागर महाराज छातीठोकपणें सांगण्यास तयार आहेत काय ? जर नसतील तर त्यांच्या या आहार घेण्याच्या बाबतींत पक्षपात दिसून येतो. यदा कदाचित येथें महाराज असेंही

ह्मणतील कीं ज्या समाजांत पुनर्विवाह घडतात त्यांच्यांत तरी हीं गुप्त-व्यभिचारादिक पातकें मुळींच घडत नाहींत असें तुह्मी तरी सांगू शकाल काय? यावर आमचें असें ह्मणणें आहे कीं, पुनर्विवाह हा हीं पातकें टाळ-ण्यासाठींच व असमर्थ विधवेच्या हातून शीलसंरक्षण व्हावें ह्मणूनच करण्यांत येतो! इतकेंही करून त्या समाजांत गुप्तव्यभिचारादि पातकें होत असतील ही (सर्वसंगपरित्यागी कित्येक मुनि व अर्जिका देखील या मदनाच्या तडाक्यांत सांपडून ब्रह्मचर्य महाव्रतापासून भ्रष्ट झाले असल्याच्या कथा आपण पुरा-णांतून वाचल्या नाहींत काय?) नाहीं असें नाहीं. तरी पण त्यांना एक मार्ग खुला असल्यामुळें य समाजाची स्थिति विधवाविवाह ज्या समाजांत होत नाहीं त्यांच्यापेक्षां पुष्कळपटीनें चांगली आहे. रोग्याचा रोग दूर कर-ण्यासाठीं औषधाची योजना असते. औषधांनीं कांहीं रोगी बरे होतात व कांहीं बरेही होत नाहींत, ह्मणून रोग उत्पन्न झाल्यास औषध देऊंच नये की काय? हें औषध जसें असमर्थ विधुर पुरुषाला पाहिजे असतें तसेंच असमर्थ विधवा स्त्रियांनाही पाहिजे असतें.

शास्त्रकारांनी विवाहाची व्याख्या 'सद्वेद्यचारित्रमोहोदयाद्विवहनं विवाहः' (श्लोकवार्तिक) अशी दिलेली आहे; आणि हीच व्याख्या वि-शेष महत्वाची आहे. ज्या अर्थी विधवा स्त्रियांची सातावेदनीय व चारित्र-मोहनीय कर्मे नष्ट झालेली नाहींत त्या अर्थी त्यांनीं विवाह करून घेतल्यास त्याबद्दल आगमाची आडकाठी येत नाही. समर्थ विधवाविषयीं हें आमचें ह्मणणें नाहीं. कारण त्यांचें अंगीं या वरील कर्मांवर दाब ठेवण्याची ताकद असल्यामुळें पूर्ण ब्रह्मचर्य पाळण्यास समर्थ असतात. परंतु ज्यांच्याठिकाणीं ही ताकद नसते त्या विधवानां विवाह करून न देतां तसेंच राहतां देणें शक्य आहे काय? त्या विधवांनीं सातव्या प्रतिमेंत चढेपर्यंत ह्मणजे पंचम देशविरत गुणस्थानाच्या खालीं देखील विवाह करण्यास काय हरकत आहे?

कित्येक शास्त्रकारांनीं 'कन्याविवहनं' किंवा 'कन्यादानं' अशीही विवाहाची व्याख्या केलेली आहे कन्यादानाला अमितगति आचार्यांनीं कुदान म्हटलेलें आहे हें पंडितांनीं ध्यानांत घ्यावें. कन्याविवहनं या व्याख्येच्या अगोदर " **सद्वेद्यचारित्रमोहोदयाद्विवहनं विवाहः** " हें वार्तिक श्रीअकलंक आचार्यांनीं लिहिलेलें आहे. यावरून पाहतां कन्येलाच या दोन कर्मांचा उदय असतो व विधवास्त्रियांना नसतो हें सिद्ध होत नाहीं. म्हणून कन्याविवहनं किंवा कन्यादानं हीं सामान्यवचनें आहेत व तसाच त्यांचा उद्देशही असला पाहिजे. कारण या दोन कर्मांचा उदय कन्येलाच फक्त असतो विधवांना नसतो असें वचन कोणत्याहि शास्त्रांत मिळणें शक्य नाहीं विधवाविवाह हें नीच कृत्य असतें तर जैनांच्या कर्मसिद्धांतांत असल्या प्रकारच्या विवाहानें अमुक अमुक कर्माचे आस्रव येतात असा स्पष्ट खुलासा केला असता. जैनांच्या कर्मसिद्धांतांत बारीक सारीक कृत्यांचाही उल्लेख केलेला आपण पाहतों ! मग या कृत्याचा मागमूस कां दिसत नाहीं ? येथे कोणी अशी शंका घेतील कीं छद्मस्थ आचार्यांच्या ज्ञानाच्या दृष्टांत ही गोष्ट आली नसावी. परंतु सर्वज्ञ केवलींच्या ज्ञानांत तरी या गोष्टीचा उलगडा व्हावयास नको होता काय ? यावरून हेंच ठरतें कीं विधवाविवाह हें नीच कृत्य नसून ब्रह्मचर्याणुव्रत पाळण्यासाठींच स्वीकारण्यांत आलेला हा एक मार्ग आहे; आणि म्हणूनच त्याचा स्पष्टपणें आचार्यांनीं कोणत्याही ग्रंथांत निषेध केलेला नाहीं. ज्या निषेधात्मक आज्ञा असतात त्यांचा स्पष्टपणें खुलासा करणें जरूर असतें व ही गोष्ट सर्वांना कबूल करावी लागेल.

विधवाविवाह ज्या जातींत होतो व जे लोक करतात त्यांना शूद्र म्हणावें असे यांच्याबरोबरची मंडळी म्हणतात व असलें घाणेरडें विष त्यांनीं शांतिसागर महाराजांच्या डोक्यांतही उतरविलें आहे. पण शांतिसागर ज्या हुमड जातींच्या हातून आहार घेतात त्यांच्यांत लग्नसंबंध— मुली ऋतुस्नात

होवून चार चार, पांच पांच, आठ आठ वर्षे झ.ल्यानंतर होत असतो ही गोष्ट शांतिसागर महा.राजांना माहीत नाहीं काय ? शांतिसागर महाराजांना सोमसेनांचा त्रैवर्णिकाचार (त्यांच्याबरोबरच्या शिष्टांना जसा आक्षरशः प्रमाण आहे त्या प्रमाणें) मान्य असेलच ! त्यांत अशा लोकांविषयीं काय ह्मटलें आहे तें पहा. सोमसेन ह्मणतातः—' पितुर्गृहे तु या कन्या रजः पश्येदसंस्कृता ॥ सा कन्या वृषली ज्ञेया तत्पतिर्वृषलीपतिः ॥ अध्याय ११ श्लोक १९३) बापाच्या घरीं जी कन्या लग्नाच्या अगोदर रजस्वला होते तीं शूद्री होय; व तिला करून घेणारा पुरुष शूद्रपति होय ! (येथें 'वृषल' शब्दाचा अर्थ धर्मभ्रष्ट— जातिभ्रष्ट— ह्मणजे असच्छूद्र असा नीतिवाक्यामृतावरूनहि ठरत आहे) असलें विधान करण्यांत सोमसेनांचा उद्देश काय असावा ? कुंतीप्रमाणें कुमारवयांतच कांहीं घोटाळे होवून कर्ण निपजूं नयेत हाच उद्देश असावा काय ? ! या विधानावरून पहातां शांतिसागर महाराज हे असच्छूद्रांच्या येथें आहार घेतात असेंच शास्त्राधारें ठरेल नां ? याविषयीं महाराजांचें काय ह्मणणें आहे ! ?

शांतिसागर महाराज विहार करीत ज्या ज्या गांवीं जातात तेथें तेथें अगोदर त्यांचे परमप्रिय शिष्य खुशालचंद ऊर्फ चंद्रसागर ऐलक हे श्रावकांस खालील गोष्टींची घोषणा करीत असतात; —

१ व्यभिचारी लोकांनीं आहारासाठीं पुढें उभें राहूं नये.

२ विधवाविवाह करणाऱ्या लोकांनीं महाराजांना आहार देण्यास उभें राहूं नये. व त्यानीं जिनप्रतिमेस स्पर्श करून पूजा करूं नये.

३ पंचदंडित व राजदंडित लोकांनीं आहार देण्यासाठीं उभें राहूं नये.

आतां आपण क्रमशः या तीन गोष्टींचा विचार करूं व खरोखरच या गोष्टीस कांहीं शास्त्राधार आहे कीं नाहीं कां या मनःसृष्टींत निर्माण झालेल्या कल्पना आहेत हें पाहूं.

व्यभिचाऱ्याच्या हातून आहार घेणार नाहीं असें महाराज ह्मणतात. पण व्यभिचारी कोणास ह्मणावें ? कोणतें आचरण असल्यास त्यास व्यभिचारी ह्मणतां येईल या गोष्टींचा खुलासा महाराजांनीं अद्याप केला नाहीं. याशिवाय महाराजांना ' कलिकाल सर्वज्ञ ' ही पदवी त्यांच्या प्रभावळीतल्या चार लोकांनी दिली असली तरी त्यांना वास्तविक अवधिज्ञान सुद्धां नाहीं हें खास ! तरी अमुक पुरुष अगर अमुक स्त्री व्यभिचारी अगर व्यभिचारिणी आहे हें ओळखणार कसें ! ' मन जाणे पापा । आई जाणे मुलाच्या बापा ।।' अशी वस्तुस्थिति असल्यामुळें व्यभिचारी किंवा व्यभिचारिणी ह्मणून ओळखावें कसें ? रंडीच्या घरीं २४ तास पडून राहणाऱ्या माणसाला देखील चारचौघांत - तूं व्यभिचारी आहेस काय ? असा प्रश्न केल्यास "नाहीं" असेंच उत्तर येतें; मग ' मी व्यभिचाऱ्यांच्या येथें आहार घेणार नाहीं' या ह्मणण्यांत स्वारस्य काय ?

याशिवाय सोमदेव आणि आशाधर पंडितानीं जो ब्रह्मचाऱ्यांचा वर्ग निर्माण केलेला आहे त्या पद्धतीचा ब्रह्मचर्याणुव्रती व व्यभिचारी या दोहोंत कसलाच फरक नसल्यामुळें व्यभिचाऱ्यांच्या हातून आहार घेण्यास आगमाची आडकाठी येते असें आह्मांस वाटत नाहीं. सोमदेव आणि आशाधर यांच्या ह्मणण्याप्रमाणें वागणारा माणूस जर ब्रह्मचर्याणुव्रती होतो तर या जगांतील सर्वच स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्याणुव्रती ठरतात व कोणासच व्यभिचारी ह्मणतां येत नाहीं ! यावरून पाहतां महाराजांचा पहिला मुद्दा त्यांनाच मान्य असलेल्या सोमदेव व आशाधर पंडितांनींच उडवून दिलेला आहे! हे ग्रंथ यांना अक्षरशः मान्य असतील तर व्यभिचारी माणसांनीं आहारासाठीं उभे राहूं नये अशा प्रकारचीं ताकीद त्यांनीं देवूं नये !

२ पंचदंडित व राजदंडित लोकांच्या हातून आहार घेणार नाहीं असा महाराजांचा दुसरा मुद्दा आहे. या गोष्टींचा विचार करूं लागलों ह्मणजे बऱ्याच वेळेस असेंही दिसून येतें कीं पंच लोक दुराग्रहाला पेटून व

खासगी द्वेषाने प्रेरित होऊन देखील ज्या गोष्टीस बिलकुल शास्त्राधार नाहीं अशा गोष्टींबद्दल एखाद्यास समाजांतून बहिष्कृत करतात. ' पंचदंडित ' हें विशेषण एखाद्यास देण्याच्या अगोदर महाराजांनीं कोणत्या गोष्टींबद्दल पंचांनीं एखाद्या गृहस्थास बहिष्कृत केलें आहे याची स्वतः चौकशी करावयास नको काय ? पंच म्हणजे संसारी लोक ! आणि संसारी लोकांचे खासगी तंटे, द्वेष, मत्सर इत्यादि दोष अशा तऱ्हेचा अन्याय करण्यास त्यांना प्रवृत्त करतात. सोलापुरचीच गोष्ट घ्या ! अंतरजातीय विवाहाबद्दल येथल्या कांहीं हुमड लोकांना पंचांनीं बहिष्कृत केलें आहे. या गोष्टीस शास्त्राधार आहे काय ? जर शास्त्राधार नसेल तर त्यांना योग्य प्रकारें पंचदंडित म्हणून म्हणतां येईल काय ? अशा पंचावर महाराजांनीं काय म्हणून विश्वास ठेवावा ? शास्त्र कशाशीं खावें हें ज्यांना माहीत नसते असेच लोक बहुधा पंच म्हणून मिरवीत असतात ही गोष्ट महाराजांनाही माहीत असेलच ! शिवाय एखादा श्रीमंत भलभलतें वर्तन करीत असला तरी देखील त्याच्या विरुद्ध बहिष्कार पुकारण्याची पंचांची छाती होत नाहीं; पण गोरगरीबांना क्षुल्लक कारणासाठीं देखील पंचांच्या रोषाला बळी पडावें लागते ! व ही गोष्ट समाजांत दिसून येते. पंचांच्या न्यायाचा कांटा नेहमीं श्रीमंतीकडे सरळरीतीनें झुकता असतो हें सर्व विश्रुत आहे. अशा पंचांनीं दंडित केलेल्या माणसांच्या हातून आहार घेणार नाहीं असें म्हणणें म्हणजे तो शास्त्रप्रमाण मानणारा नसून झोटिंग पाच्छाईस उत्तेजन देणारा होय असें म्हटल्यास त्यांत अतिशयोक्ति होईल काय ? अंतरजातीय व विजातीय विवाहाविषयीं पंडित दरबारीलाल हे महाराजांच्या कोणत्याही पंडिताशीं वाद करण्यास तयार आहेत. तरी त्यांच्याशीं वाद करून किंवा करवून या गोष्टीचा हे निकाल कां लावून घेत नाहींत ? एक तर्फी हकीकत ऐकून घेवून त्याप्रमाणें वागणें म्हणजे शास्त्राला धाब्यावर बसविणें नव्हे काय ? किंवा "शास्त्राद्रूढिर्बलीयसी" या म्हणी प्रमाणें हें आपलें वर्तन ठेवणार काय? अंतर जातीय व विजातीय विवाह करण्याविषयीं जरी शास्त्राधार आहेत

तरी पण हे विवाह घडवूं दिल्यानें विधवा विवाहाचाहि आपल्या समाजांत शिरकाव होईल अशी पंडितपार्टी लोकांना दहशत घालीत असते; पण त्यांचा हा तर्क चुकीचा आहे. कारण आचार्य व केवली यांचे पेक्षां हे पंडित अधिक अक्कलवान समजावयाचें काय ? !

याशिवाय येथें दुसरा एक असा प्रश्न उत्पन्न होतो कीं पंचदंडित लोकांच्या येथें आहार न घेणाऱ्या महाराजांनीं पंचमान्य लोकांच्या येथें आहार घेण्यास कोणती हरकत आहे ? पंचांनीं एखाद्यास विनाकारण बहिष्कृत केल्यास तो आहार देण्यास योग्य ठरत नाहीं या गोष्टीस कांहींच आधार नाहीं. तरी सुद्धां आम्हीं एकवेळ ही गोष्ट घटकाभर गृहींत धरली तर पंचांना ज्या गोष्टी मान्य आहेत अशा गोष्टी करणाऱ्याच्या येथें आहार घेणें हें महाराजाचें ओघानेंच कर्तव्य ठरतें ! ज्या गांवच्या पंचांना अंतरजातिय व विजातीय विवाह मान्य असेल व ज्यांनीं असले विवाह करून घेणाऱ्यास बहिष्कृत केलें नसेल तर अशा लोकांच्या हातून महारांजाना आहार घ्यावा लागेल. कारण ही गोष्ट त्या गांवच्या पंचांना मान्य आहे. त्याचप्रमाणें विधवाविवाह हा पंचांना, भट्टारकाल ,मुलांमुलींच्या आईबापांना, आप्तेष्टांना मान्य आहे. विधवाविवाहास भट्टारक व पंच हे परवानगी देतात तर असला पंचास व भट्टारकास मान्य असलेला विवाह करून घेणाऱ्याच्या हातून आहार घ्यावाच लागेल ! आम्हीं अशा लोकांच्या हातून आहार घेणार नाहीं असें महाराज ह्मणत असतील तर त्यांचा पंचदंडित हा मुद्दाच मुळीं भक्कम पायावर उभारलेला आहे असें ठरत नाहीं !

पंचदंडितांप्रमाणेंच राजदंडितांची गोष्ट घ्या. महाराजांच्या मतेंच पं० मक्खनलाल न्यायालंकार व पं० जिनदास फडकुले हे राजदंडित आहेत तरी महाराजानीं यांच्यांत आहार घेऊ नये असेंच ठरतें !

राजदंड एकदां कबूल केल्यावर राजाच्या आज्ञाही मान्य कराव्या लागतील. सध्यांच्या राज्यांत विधवाविवाह, अंतर्जातीय व विजातीय विवाह या गोष्टी मान्य करण्यांत आलेल्या आहेत. तर असले विवाह करून घेणा-

त्यांच्या येथें आहार न घेणें ह्मणजे " राजनयातिक्रमण" [राजाचे कायदे उल्लंघन करणें] नव्हे काय ?

३ विधवाविवाहितांच्या हातून आहार घेत नाहीं व त्यांना स्पर्श करून पूजेचा अधिकार नाहीं, असा महाराजांचा तिसरा मुद्दा आहे. वरील गोष्टी ज्यांनीं मननपूर्वक वाचल्या असतील त्यांना या मुद्द्यांतहीं कांहीं अर्थ नाहीं असें कळून येईल. विधवाविवाहास व्यभिचार ह्मणावें असलें विधान कोण-त्याही सर्वमान्य प्राचीन शास्त्रांत नाहीं. शिवाय ही गोष्ट पंचांना भट्टारकाला व सर्व समाजाला संमत असल्यामुळें महाराजांच्याच न्यायानें अशा लोकांच्या येथें आहार घेणें न्याय्य ठरतें! सोमदेव व आशाधरांनीं वर्णिलेला व्यभिचारी जेथें आहार देण्यास लायक ठरतो, तेथें ज्यांत व्यभि-चाराचा अंश नाहीं असा विधवाविवाहित आहार देण्यास लायक ठरत नाहीं हें म्हणणें बुद्धिमांद्यतेचें लक्षण नाहीं असें कोण ह्मणणार नाहीं ? तसेंच या विधवाविवाहित लोकांनीं प्रतिमेस स्पर्श करून पूजा करूं नये या ह्मणण्यासही सर्वमान्य प्राचीन आगमाचा आधार नाहीं. शास्त्रांत कोणकोणत्या लोकांनीं जिनप्रतिमेची पूजा केली हें पाहूं गेल्यास खालील गोष्टी दिसून येतात.

(१) लंकाधीश रावण हा परस्त्रीत्यागी नव्हता. त्यानें फक्त "मी परस्त्रीवर बलात्कार करणार नाहीं" एवढीच काय ती क्षुल्लक प्रतिज्ञा घेतली होती. याला ब्रह्मचर्याणुव्रती केव्हांहीं ह्मणतां येणार नाहीं. याशिवाय हिंसा-दिक पातकांचा देखील तो त्यागी नव्हता. असें असून देखील तो नित्य जिनेंद्रप्रतिमेची पूजा करीत असे. त्यानें कित्येक जिनमंदिरें आपल्या राज-धानींत बांधविली होती. श्री० शांतिनाथाच्या चैत्यालयांत तो पूजा करीत होता. याशिवाय सुदर्शनमेरू व कैलास पर्वतावरील अकृत्रिम चैत्यालयांची पूजा केल्याचें वर्णन ग्रंथांतरीं सांपडतें. एवढेंच नव्हें साक्षात अनंतवीर्य केवलीचें देखील पूजन केल्याचें वर्णन दिसून येतें.

(२) कौशांबी नगरीचा राजा सुमुख हाही परस्त्रीचा त्यागी नव्ह-

ता. त्यानें वीरक नामक शेठाची वनमाला नांवाची स्त्री उपटून आणून घरीं ठेवली होती. यानें महातपस्वी वरधर्म नांवाच्या मुनीमहाराजांना त्या वनमालेसह आहार दिला व त्यांची पूजा केली व या दानाच्या प्रभावानें हें जोडपें विद्याधर होऊन जन्मले असें ग्रंथकर्त्यांनीच बजावलें आहे ! परंतु येथें मुनींनीं प्रायश्चित घेऊन शुद्ध झाल्याचें आचार्यांनीं बजावलें नाहीं!

(३) मधुराजानें वीरसेन नांवाच्या त्याच्या मांडलीक राजाची चंद्राभा नांवाची सुस्वरूप बायको उपटली होती. या अन्याय्य संबंधित जोडप्यानें देखील विमलवाहन नामक मुनीला आहार दिला. परंतु या मुनींनीदेखील प्रायश्चित घेतल्याचा दाखला त्या ग्रंथांत दिसून येत नाहीं ! पुढें मधुराजानें व चंद्राभेनें त्याच मुनीजवळ जैनेश्वरी दीक्षा घेतल्याचेंही वर्णन आहे; अर्थात् धडधडीत व्यभिचार करणाऱ्या जोडप्यांना देखील दिगंबर-दीक्षा घेण्याचा अधिकार आहे असें शास्त्राधारें ठरतें. (हरिवंश पु.)

४) कुंतीला कर्ण या नांवाचा एक पुत्र कुमार वयांत अनीतिमार्गानें झाला होता. आपला व्यभिचार उघडा पडेल म्हणून कुंतीनें गुप्तरितीनें बाळंतपण आटपून आपल्या मुलास एका पेटाऱ्यांत घालून नदीत सोडून दिलें. त्याचें लालन पालन कोणा एका गृहस्थानें केलें. अर्थात हा कर्ण म्हणजे व्यभिचार-जात किंवा अपध्वंसज होय व कुंती व्यभिचारिणी स्त्री होय असें ठरतें. महाराजा जरासंधाला मारल्यानंतर कर्णानें सुदर्शन नांवाच्या उद्यानांत जावून दमवर नामक दिगंबर मुनीपासून दिगंबरदीक्षा घेतली. याबद्दल खालील श्लोक दिला आहे.

विजितोऽप्यरिभिः कर्णो निर्विण्णो मोक्षसौख्यदाम् ।
दीक्षां सुदर्शनोद्यानेऽग्रहीद्दमवरांतिके ॥ २६-२०८ ॥

त्याचप्रमाणें कुंतीनें द्रौपदी सुभद्रा इत्यादि स्त्रियांबरोबर राजीमतीजवळ आर्यिकेची दीक्षा ग्रहण केली. [हरिवंश पु.]

यावरून पाहतां ज्यांनीं धडधडीत व्यभिचार केलेला होता त्यांनीं

देखील जैनशास्त्रांत सांगितलेली सर्वोत्तम दीक्षा ग्रहण केली आहे. ज्यांना दीक्षा ग्रहण करतां येते त्यांना आहार देखील देतां येतो. कारण आहार देण्यापेक्षां दिगंबर दीक्षा घेणें अत्यंत महत्वाचें कार्य आहे !

येथें कोणी असेंही ह्मणेल कीं कुंतीचें लग्न पुढें पंडुराजाशींच झाल्यामुळें या संबंधास व्यभिचार ह्मणतां येत नाहीं जर दुसऱ्यांशीं लग्न झालें असतें तर त्यास व्यभिचार ह्मणणें योग्य झालें असतें ? यावर आह्मीं असें ह्मणतों कीं ज्या अवस्थेंत कुंतीचा पंडुराजाशीं संबंध झाला ती विवाहित अवस्था नव्हती; याशिवाय जर व्यभिचार घडलेला नव्हता तर कर्णाला पेटींत घालून नदींत सोडून देण्याचें कारण काय ? व कुंतीच्या आईबापांनीं तिची जी निर्भर्त्सना केली ती काय ह्मणून ? कुंतीला कुमारवयांतच कर्ण झाला होता व पुढें विवाह झाल्यानंतर धर्म, अर्जुन, भीम असे तिचे मुलगे झाले असल्याचें वर्णन खालील श्लोकांत दिलें आहे—

पाण्डोः कुंत्यां समुत्पन्नः कर्णः कन्यासमागतः ।
युधिष्ठिरोऽर्जुनो भीम उढायामभवंस्त्रयः ॥ ३६ ॥

[४] समंतभद्राचार्यांनीं आपल्या रत्नकरंडक श्रावकाचारांत, पूजातिशयाच्या माहात्म्यास पोचलेल्या बेडकाचें उदाहरण दिलें आहे, व त्यायोगें तो स्वर्गांत देव झाला. दुसरें पुण्यास्रव व आराधना कथाकोशांत असें लिहिलें आहे कीं धाराशीव नगरींत एका वारुळांत श्रीपार्श्वनाथ स्वामीची रत्नमयी प्रतिमा होती. तेथें एक हत्ती जातिस्मरण झाल्यामुळें दररोज तलावाचें पाणी आपल्या सोंडेंत घेऊन त्या वारुळाला तीन प्रदक्षिणा घालून त्यावर पाणी सांडीत असे व कमलाचें फूलही चढवित असे; आणि मस्तक नमवून नमस्कार करीत असे. असा त्याचा नेहमींचा क्रम होता. याशिवाय शेंकडो आधार धर्मशास्त्रांत आहेत तें विस्तार भयास्तव येथें देतां येत नाहींत याबद्दल आम्हीं दिलगीर आहोंत !

पंचपातकांचा त्यागी नसलेल्या लोकांनीं, परस्त्री उपटून आणणाऱ्यांनीं

जिनपूजा व मुनीस आहारदान दिल्याचा आणि तिर्देवानींहि जिनपूजा केल्याचा व व्यभिचारी व व्यभिचारापासून उत्पन्न झालेल्या संततीनें जैनेश्वरी दीक्षा घेतल्याचा साधार दाखला दिसत असून देखील तिकडे डोळे झांक करून विधवाविवाहित लोकांनीं आहार देवूं नये व पूजा करूं नये असले बेजबाबदारपणाचें विधान करणें ह्मणजे शास्त्राज्ञा धुगारून देवून व दुसऱ्याच्या दानपूजेंत विघ्न करून पातकाचा धनी होणें होय. कारण,

" खयकुट्ठसूलमूलो लोयभंगदरजलोदराक्खिसिरो ।
सीदुण्हबह्मराई पूजादाणतरायकम्मफलं ॥ ३३ ॥

[कुंदकुंदाचार्य कृत रयणसार]

दुसऱ्यांच्या पूजन आणि दान यांमध्यें अंतराय करण्यानें जन्मजन्मांतरीं क्षय, कुष्ठ रोग, शूल, रक्तविकार, भगंदर, जलोदर, नेत्रपीडा, शिरोवेदना आदिक रोग व शीतोष्णांचे ताप, कुयोनींत भ्रमण आदि अनेक दुःखांची प्राप्ति होते. ह्मणून पापांचीं भीति धरून पूजनादि धर्मकार्यांत विघ्न करून त्याला त्यापासून परांगमुख करणें हें चुकून देखील कोणी करूं नये.

शांतिसागर महाराज असेंही ह्मणतात कीं विधवाविवाहित लोक सात पिढ्यानंतर आहार देण्यास व पूजन करण्यास पात्र होतात. किती असमंजसपणाचें हें विधान ! असलें विधान करण्यानें आपण स्वतः गोत्यांत येतों याचा तरी त्यांनीं विचार केला आहे काय ? महाराजांनीं अशा बऱ्याच ठिकाणीं ज्यांची, त्यांच्या ह्मणण्याप्रमाणें सात पिढ्यांची शुद्धता नाहीं अशा लोकांकडून आहार घेतलेला आहे. याबद्दल त्यांनीं प्रायश्चित्त घेतलेलें आमच्या तरी ऐकण्यांत नाहीं. आतां येथून पुढें त्यांनीं इतर सूचनांवरोबर सातपिढ्यांची ज्यांची शुद्धता असेल त्यांनींच आहार द्यावा असें जाहीर करीत जावें. यापासुन त्यांना कांहीं फायदा होवो अगर न होवो दक्षिणी जैनांचे तरी डोळे उघडतील ! पंडितप्रत्ययनेयबुद्धि साधूंची ही अशीच

केवलिवाणी स्थिति व्हावयाची ! पंडितांनीं तीनपिच्छा सांगितल्या कीं हे तीनपिच्छा कबूल करण्यास तयारच ! पांच ह्मणाले तरी ग्रहीतच ! दहा ह्मणाले तरीं डोळे मिटून अनुमति आहेच ! एकूण स्वतःस कांहीं समजत नसले ह्मणजे हा असाच गोंधळ माजावयाचा ! बाकी पंडितांनीं यांना “ कालिकाल सर्वज्ञ ” ही पदवी कोणतें विशेषज्ञान महाराजामध्यें पाहून दिली हें कांहीं कळत नाहीं ‘ पंडित कहे सो प्रमाण ’ हें त्यांचें ब्रीद असल्यामुळें ‘ अहो रूपं अहो ध्वनिः ’ या न्यायानें पंडितांनीं ही बहुमोल पदवी अर्पण केली असावी ! पूर्व काळच्या सर्वज्ञांना त्रिभुवनांतील पदार्थांचें एकेंचकाळीं करतलामलकवत् ज्ञान होत होतें. ‘कालिकाल सर्वज्ञ ’ याचा अर्थ जर स्वतःस कांहीं न समजणें व पंडितांच्या शब्दास प्रमाण मानून त्यांच्या ‘ हां में हूं मिलाना ’ एवढेंच असेल तर ही पदवी शांतिसागर महाराजांना विशेष खुलून दिसते !

समाजांत सर्वच लोक उच्च आचरण करणारे असतात असें नाहीं. अति उच्च मुनीपासून तों तहत मध्यम व जघन्य पंचपातकांचा त्यागी नसलेल्या रावणापर्यंत व व्यभिचारजात कर्णापर्यंत व तसेंच तिर्यंच जीवापर्यंतचे सर्व प्राण्यांना जैनधर्मांत स्थान आहे. अशा प्राण्यांनीं पूजा केलेले व दिगंबरी दीक्षा घेतलेले आधार आहेत. अर्थात सर्व लोकसंग्रह हें एक जैनधर्माचें उदार तत्व आहे. मग अशा तऱ्हेचा दुराग्रह करणें त्यांना शोभेल होईल काय ? कारण—

उच्चावचजनः प्रायः समयोऽयं जिनेशिनाम् ।
नैकस्मिन् पुरुषे तिष्ठेदेकस्तंभ इवालयः ॥

ज्याप्रमाणें एकादें घर एकाच खांबावर उभा राहूं शकत नाहीं.तद्वत एकाच व्यक्तीवर अर्थात केवल उच्च दर्जाचें आचरण करणाऱ्या लोकांवरच जैनधर्म टिकूं शकत नाहीं ह्मणून या धर्मास उत्तम, मध्यम व जघन्य दर्जाचें आचरण करणाऱ्या सर्व लोकांचा आधार आहे, असें त्यांना व त्यांच्या पंडितांना अक्षरशः प्रमाण असलेल्या सोमदेवांच्या ग्रंथांत आधार सांपडत आहे.

शांतिसागर महाराजांचा जन्म चतुर्थ शाखेंत झालेला आहे. या जातींत विधवाविवाहाचा धूमधडाका आहे हे सर्व विश्रुत आहे. शांतिसागर महाराजांना तरी आपल्या सातपिढ्याची अर्थात १७५ वर्षांची शुद्धता आहे याविषयींची खात्री आहे काय ? तशी खात्री असल्यास त्यांनीं आपला सातपिढ्यांचा इतिहास प्रसिद्ध करणें अवश्य आहे! नाहीं पेक्षां यांना तरी हीं दीक्षा घेण्यास त्यांच्याच वचनाप्रमाणें अधिकार कसा पोंचतो ?

आतांपर्यंत केलेल्या वरील विवेचनावरून पाहतां विधवाविवाह हा धार्मिक व शास्त्रीय दृष्टीनें अधार्मिक व अशास्त्रीय ठरत नाहीं. शांतिसागर व त्यांचे आधारस्तंभ पंडित विधवाविवाह हा व्यभिचार होय व विधवाविवाहितांना पूजेचा अधिकार नाहीं असलीं भडधडीत खोटीं व आगमबाह्य विधानें करीत सुटतात ही खरोखरीच जैनसमाजाच्या दुर्दैवाची गोष्ट होय! असलीं विधानें विधवाविवाहांनीं बद्ध झालेले दक्षिणी जैन जेव्हां मुकाट्यानें ऐकून घेतात, एवढेंच नव्हे पण उलट त्यांचें समर्थन करतात तेव्हां फारच आश्चर्य वाटतें व जाणूनबुजून हे लोक आपल्या नकला हीनपणाला संमति देवून आपल्या बुद्धीच्या गुलामगिरीचें प्रदर्शन दाखवितात. अज्ञानी लोकांनीं अशा तऱ्हेचे उद्गार काढल्यास त्यांत विशेष आश्चर्य नाहीं. आतां विधवाविवाहाच्या विरुद्ध पंडित लोक जे कांहीं आक्षेप घेतात त्यांचा आपण थोडक्यांत विचार करूं.

नीतिवाक्यामृतामध्यें ' **सकृत्परिणयनव्यवहाराः सच्छूद्राः** ' असें एक वाक्य दिलेलें आहे, व यावरून पंडित लोक असा निष्कर्ष काढतात कीं स्त्रीपुनर्विवाह हा ज्या शूद्रामध्यें होतो त्यास असच्छूद्र म्हणावें अर्थात ते कमीप्रतीचे शूद्र होत. नीतिवाक्यामृतामधील या वर उध्दृत केलेल्या वाक्यांतून हें म्हणणें स्त्रियांविषयींच आहे असें दिसून येत नाहीं. कारण या ग्रंथाच्या टीकाकारांनीं यास आधारभूत जो श्लोक दिला त्यावरून पाहतां सोमदेवसूरींचें वरील वाक्य शूद्रपुरुषाविषयींच अनुलक्षून आहे असें ठरतें.

टीकाकारानीं वरील वाक्याची टीका खालील प्रमाणें देऊन आधारा-साठींही एक श्लोक दिला आहे.

' ये सच्छूद्राः शोभनशूद्रा भवन्ति ते सकृत्प-
रिणयना एकवारं कृतविवाहाः द्वितीयं न कुर्वतीत्यर्थः ॥तथाच हारीतः
द्विभार्यो योऽत्र शूद्रः स्याद्वृषलः स हि विश्रुतः ।
महत्वं तस्य नो भावि शूद्रजातिसमुद्भवः ॥ '

उच्च आचरण करणाऱ्या वरच्या वर्गांतील पुरुषांना वाटेल तेवढ्या स्त्रियांचा परिग्रह संभोगासाठीं ठेवण्यास परवानगी देणाऱ्या लोकांनीं कनिष्ठ दर्जाच्या शूद्रास या बाबतींत कां कमी लेखावें हें एक मोठें कोडेंच आहे! नीतिवाक्यामृत हा ग्रंथ तत्कालीन राजनीति, समाजव्यवस्था, देशस्थिति इत्यादिकांचें दिग्दर्शन करणारा ग्रंथ असून याची रचना परधर्मी मनु,याज्ञवल्क्य कौटिल्य, वेदवेदांग इत्यादिकांच्या ग्रंथांच्या आधारें करण्यांत आलेली असून तो बऱ्याच चमत्कारिक गोष्टींनी सजविलेला आहे. ज्या ग्रंथास मनु-आदि मिथ्यात्वी लोकांचे आधार लागतात व ज्याचा सर्व ओढा वैदिक धर्माकडेच दिसून येतो तो ग्रंथ जैनांनी कितपत प्रमाण मानावा व त्यांस आगम हें नांव कितपत शोभेल हा एक महत्वाचा प्रश्न आहे. सोमदेवसूरीं-च्या या पोकळ वाक्याचा आधार घेवून जे पंडित नाचत असतील त्यांनी सोमदेवसूरींनी स्त्री–पुनर्विवाहाचे बाबतींत याच ग्रंथांत दुसरीकडे जें विधान केलेलें आहे व त्यास जी त्यांनीं संमति दिलेली आहे ती अवश्य वाचावी म्हणजे त्यांचा तो नाच हिजड्याच्या नाचासारखा कसा हिडीस प्रकारचा आहे हें दिसून येईल ! सोमदेवसूरी म्हणतात.—

" विकृतपत्यूढापि पुनर्विवाहमर्हतीति स्मृतिकाराः "

हे स्मृतिकारांचें म्हणणे आहे असे सोमदेवसूरी म्हणतात व यांना हे स्मृतिकारांचें म्हणणें मान्य आहे. कारण यांना जर ह मान्य नसतें तर त्यांनी याचा निषेध केला असता व त्याचा ग्रंथांत आधार ही घेतला न-

सता. यावरून सोमदेवसूरींना स्त्रीपुनर्विवाह मान्य होता असें दिसून येतें.

हा ग्रंथ देखील यशस्तिलकचंपूप्रमाणें सोमदेवसूरींनीच लिहिलेला आहे. [illegible] ज्यांनीं चंपूमध्यें ब्रह्मचर्याणुव्रताविषयीं भरमसाट व्यभिचारपोषक [illegible] आहे, ते इतर ग्रंथांत कांहीं वेड्यावांकड्या गोष्टी प्रतिपादन [illegible] विशेष आश्चर्याचें नाहीं. या ग्रंथांत अनुलोम विवाह, [illegible] दि गोष्टी करण्यास सांगितलेल्या आहेत. व तसेंच 'अ-[illegible]स्ति' अशा अर्थाची वाक्येंहि दिसून येत आहेत. हे विचार [illegible]प्रामाण्य मानणाऱ्या पंडितांना देखील मान्य होतील असें आ-[illegible] नाहीं, व हें आमचें ह्मणणें खरें ठरल्यास त्यांचें तें "ग्रंथ अ[illegible] [illegible]माण मानणारे आम्ही आहोंत" ह्मणणें फोल ठरत आहे. या-शिवाय स्त्रीशिक्षण देवूं नये, वेश्यासेवन करावें इत्यादि चमत्कारिक विचार-ही प्रदर्शित केलेले आहेत. राजनीति विषयावरीलच हा ग्रंथ असल्यामुळें या ग्रंथास आगमाचा अधिकार प्राप्त होवूं शकत नाहीं व हें श्री. नाथूराम-प्रेमी वगैरे बऱ्याच विद्वान लोकांनींहि कबूल केलेलें आहे.

याशिवाय सोमदेवसूरींच्या वरील वाक्यास कर्मसिद्धांतानें विरोध उत्पन्न होत आहे. कारण मागें आम्हीं '**सद्वेद्यचारित्रमोहोदयाद्विवहनं विवाहः**' असें जें वार्तिक दिलें आहे तें येथें लावलें असतां '**सकृत्परि-णयनात् सच्छूद्राः**' हा मुद्दा फोल ठरतो. असच्छूद्र स्त्रियांच्या ठिकाणींच सद्वेद्य व चारित्र मोहनीय या दोन कर्मांचा उदय असतो व ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य व सच्छूद्र या स्त्रियांच्या ठिकाणीं हा उदय नसतो याला कांहीं आग-मांत आधार सांपडत नाहीं. जर या वर्णांतील स्त्रियांना या दोन कर्मांचा उदयच नाहीं असें ह्मणावें, तर त्यांच्यातील विधवा स्त्रियांच्या हातून गुप्त व्यभिचार, गर्भपात, बालहत्या इत्यादि पातकें झालींच नसतीं. ज्या अर्थी हीं पातकें होतात हें आपण पाहतों त्याअर्थी त्यांना या दोन कर्मांचा उदय आहे असें ठरतें. आणि हा कर्मोदय सिद्ध झाल्यावर ओघानेंच त्यांचे विवाह

कर्मही सिद्ध होतें.

त्यांचा दुसरा आक्षेप खालीलप्रमाणें आहे.---

" शुद्धे वस्तुनि संकल्पः कन्याजन इवोचितः।
नाकारांतर संक्रांते यथा परपरिग्रहे ॥ १ ॥

हा श्लोक मूर्तीच्या स्थापनेसंबंधाचा सोमदेवसूरींनीं दिलेला आहे. ज्या पाषणाच्या ठिकाणीं आकार वगैरे देवून दुसऱ्या मूर्तीचा संकल्प झाला नसेल अशाच पाषणाला शुद्ध समजून त्याचा उपयोग मूर्ती करण्यासाठीं करावा. यास त्यांनीं कन्येचें उदाहरण दिलें आहे. जोपर्यंत कन्या दुसऱ्याकडून परिगृहीत-स्वीकृत, झालेली नाहीं, अर्थात तिच्याठिकाणीं दुसऱ्याचा संकल्प झालेला नाहीं तोपर्यंत ती शुद्ध समजावी.

हा श्लोक स्थापना निक्षेपाच्यावेळचा असल्यामुळें हा विशेष महत्वाचा आहे असें नाहीं. शिवाय या श्लोकांत विधवाविवाह करूंच नये असाही कांहीं अर्थ निघत नाहीं. ज्या शिलेवर मूर्ती खोदली असेल अशा शिलेवर दुसऱ्या मूर्तीचा संकल्प करणें अयोग्य ठरेल. पण मूर्तीचा आकार व लांछन छिन्नभिन्न होवून पुसून गेल्यास आपण केलेला संकल्प साहजिकच नाहींसा होतो. अशा मूर्तीच्या ठिकाणीं दुसऱ्या मूर्तीचा संकल्प होणें संभवनीय असल्यामुळें नवा संकल्प करूं नये असा निषेध या श्लोकांतून निघत नाहीं. एखाद्या ठिकाणीं जमिनींत सांपडलेल्या जुनाट मंदिरांतील मूर्तीचा छिन्नभिन्न झालेला आकार कारागिरांकडून वज्रलेप देऊन पूर्ववत ती मूर्ति बनवितां येते. तेव्हां अशा त्या मूर्तीचें लांछन नष्ट झालेलें असल्यास अशा प्रसंगीं दुसऱ्या एखाद्या तीर्थंकराचा संकल्प करतां येणें शक्य आहे कीं नाहीं? त्याचप्रमाणें ' परपरिगृहीत कन्या ' विधवा होऊन तिच्या ठिकाणचा पहिल्याचा संकल्प नाहींसा झाल्यावर म्हणजे तिचें परिगृहीतपणा नष्ट झाल्यावर तिच्याठिकाणीं दुसऱ्यांनीं संकल्प करूंच नये असें या श्लोकावरून ठरतच नाहीं. शिवाय या श्लोकास विवाह कृत्यांतील ' कर्म

सिद्धांत ' आडवा येतो तो निराळाच !

" विवाहिता पुनर्याला नैवान्येन विवाह्यते ।। ' हा एक श्लोकार्द्ध आणि
' या परिणीता सा नैव विवाह्यते ।। '

असा दुसरा एक श्लोकार्द्ध, असे दोन विधवाविवाहाच्या विरुद्ध आक्षेप म्हणून पंडित पुढें करीत असतात. यावरील दोन्ही आक्षेपांत विधवा विवाह करूंच नये असा बिलकूल अर्थ निघत नाहीं. विवाहितबाला किंवा परिणीता बाला यांचा पुनर्विवाह त्या परिणीत स्थितींत असे तोंपर्यंत होणार नाहीं. परंतु परिणीत स्थितींतील परिगृहीत अवस्था नष्ट झाल्यावर अर्थात वैधव्य आल्यावर त्यांचा विवाह होण्यास कोणतीही हरकत नाहीं; व असें करूं नये असे या दोन्हीहि श्लोकार्द्धावरून दिसून येत नाहीं. याशिवाय पूर्वीचाच कर्मसिद्धांत वरील आक्षेपास निरुत्तर करण्यास पुरेसा आहे !

जंबूस्वामीपुराणांतील एक खालील कथा देखील आक्षेप म्हणून पुढें करण्यांत येत असते. त्या कथेंतील सारांश खालील प्रमाणें आहे.

जंबूस्वामी कुमाराला पद्मश्री वगैरे मुली विवाहासाठीं गर्भांत असतानांच देवूं केल्या होत्या. अर्थात त्या बापाच्या वाङ्निश्चयानें बद्ध झालेल्या होत्या. जेव्हां जंबूस्वामीला वैराग्य झालें व त्यांनीं लग्न करण्याचें नाकारलें त्यावेळीं जंबुकुमाराच्या बापानें त्या मुलींच्या पित्यास ' तुमच्या मुलीसाठीं दुसरा पति पहा. आमचा मुलगा लग्न करूं इच्छीत नाहीं ' असें कळविलें. हें यांचें म्हणणें मुलीच्या बापानीं मुलीस कळविलें. हें ऐकून पद्मश्री आपल्या बापास म्हणाली. " जन्मांत येऊन एकच पिता, एकच देव, एकच भर्ता, एकच गुरु असतो. तेव्हां मी जंबूकुमाराशिवाय इतरांशी मुळींच लग्न करणार नाहीं" या भाषणावरून पंडित लोक असा निष्कर्ष काढतात कीं, एका जन्मांत एकच पति असावा दुसरा करूं नये. परंतु त्यांच्या ध्यानीं ही गोष्ट येत नाहीं कीं पद्मश्रीचें भाषण हें केवळ भावनामय आहे. व तेंही नुसता वाङ्निश्चय झालेल्या स्थितींतलें आहे. अद्याप सप्तपदी पूर्ण झाली नसलेल्या

स्थितींत देखील हा संबंध तुटूं शकतो हें आमच्या पंडितांना माहित नाहीं काय ? हें भाषण ह्मणजे केवलीचें वाक्य नव्हें. जंबूकुमाराच्या पित्यानें तुमच्या मुलीसाठीं दुसरा नवरा पहा असें जेव्हां सांगितलें तेव्हां पद्मश्रीच्या पित्यानें ते निमूटपणें निषेध न करतां ऐकून घेतलें. यावरून पद्मश्रीच्या ह्मणण्यांत विशेष अर्थ आहे असें दिसून येत नाहीं. याशिवाय ते तद्भव मोक्षगामीचे पिता असल्यामुळें त्यांची योग्यता पद्मश्रीपेक्षां खात्रीनें अधिक आहे. तेव्हां यांच्या भाषणापेक्षां पद्मश्रीच्या भाषणाला अधिक योग्यता देणें मूर्खपणाचें ठरेल. याच पद्मश्रीनें पुढें जंबूस्वामीला उद्देशून 'षण्ढ' हेंहि विशेषण दिलें आहे. या वरून या शुद्धकलोत्पन्न कन्येच्या अंगीं आपल्या तद्भव मोक्षगामी भ्रताराविषयीं केवढा विनयगुण होता याचा पंडितांनींच विचार करावा ! भगवती दीक्षेची व मोक्षमार्गाची पद्मश्रीनें हेटाळणी केलेली आहे ! त्यावरून तिची किती योग्यता आहे हें पंडितांनींच ठरवावें. याशिवाय एखाद्या समर्थ स्त्रीनें असें उद्गार काढले असल्यास ते असमर्थ स्त्रियांनाहीं लागू पडतातच असा कांहीं अर्थ नाहीं. अशा तऱ्हेचीं वाक्यें अंजनासुंदरी, सीता इत्यादि समर्थ स्त्रियानीं उच्चारलेलीं असल्याबद्दलचे दाखले शास्त्रांत असतीलही. परंतु हीं वाक्यें खऱ्या समर्थ स्त्रियांच्या तोंडांतच शोभतात, व तसेंच जंबूस्वामीप्रमाणें सर्वच पुरुष तसें इंद्रियनिग्रही असूं शकतात असें ह्मटल्यास त्याला अज्ञानाच्या सदरांत टकलावें लागेल.

सुलोचनेची एक कथा विधवाविवाहाच्या विरुद्ध पुरावा ह्मणून देण्यांत येत असते. सुलोचनेनें स्वयंवराच्यावेळीं जयकुमाराच्या गळ्यांत वरमाळा घालून त्यास पति ह्मणून निवडले. त्यावेळीं भरतचक्रीचा मुलगा अर्ककीर्ति आपणांस सुलोचना मिळाली नाहीं ह्मणून हिरमुसला झाला. व याबद्दल जयकुमाराचा सूड उगवावा असें त्याच्या मनानें घेतलें. परंतु हें करण्यास आपण असमर्थ आहोंत हें पाहून त्यानें 'मी आठ बाणांत जयकुमाराचा वध करीन. परंतु मग सुलोचना विधवा झाल्यावर तिला घेऊन काय करायचें?' असें उद्गार काढले. परंतु विधवेला नको ह्मणणारा अर्ककीर्ति सधवा सुलो-

चना जबर धाक दाखवून बलात्कारानें उपटण्याची अभिलाषा करीत होता हें-हि यावरून दिसून येत आहे! उड्या मारून मारून थकलेल्या व द्राक्षें हातीं न लागल्यामुळें तीं आंबट आहेत असें म्हणणाऱ्या कोल्ह्याप्रमाणें ज्या अर्ककीर्तिची केविलवाणी स्थिती झाली होती अशा अर्ककीर्तीचे वरील उद्गार म्हणजे केवलींचे उद्गार नव्हेत किंवा अधिकारी आचार्यांचेहीं उद्गार नव्हेत. अशा उन्मत्त आचरणाबद्दल त्याच्या वडिलानें अर्थात भरतचक्रीनें त्याची खूब कानउघाडणी केली हें पंडितांनाही ठाऊक आहेच! व भरतचक्रीच्या प्रधानानें या अर्ककीर्तिला 'परस्त्रीचा अभिलाषी' असेंही म्हटलेलें आहे. कथाग्रंथांतील असल्या मूर्ख मनुष्यानें काढलेल्या उद्गाराचा आधार देऊन विधवाविवाहाचा शास्त्रांत निषेध आहे असें जेव्हां पंडित बडबडतात तेव्हां त्यांची स्थिती अर्ककीर्तिपेक्षांही केविलवाणी दिसते!

आतांपर्यंतच्या विवेचनावरून धार्मिकरीत्या शास्त्राधारें विधवाविवाह हा ग्राह्य ठरतो हें वाचकांच्या ध्यानांत आलेंच असेल. कित्येक शास्त्राधाराच्या गोष्टी देखील प्रसंगीं लौकिक व्यवहारांत चालू नसतात व कित्येक लौकिक व्यवहारांतील गोष्टींना शास्त्रांत आधारही नसतो. अशा प्रसंगीं 'शास्त्राद्रूढिर्बलीयसी' या न्यायानें मनुष्याचें वर्तन होत असतें. परंतु असें वर्तन करीत असतांना मनुष्यानें ज्यायोगें सम्यग्दर्शनाची हानी होणार नाहीं व व्रताचाही भंग होणार नाहीं अशा गोष्टी करणें योग्य असतें. व याच मुद्द्यावर कोणताही लोकाचार ग्राह्य ठरविणें न्यायाचें असतें. कारण शिवकोटीनें रत्नमालेंत एके ठिकाणीं असें म्हटलें आहे कीः---

सर्व एव विधिर्जैनः प्रमाणं लौकिकः सताम् ।
यत्र न व्रतहानिः स्यात् सम्यक्त्वस्य च खंडनम् ॥

यावरून पाहतां विधवाविवाह करण्यानें गृहस्थाच्या सम्यग्दर्शनाची व त्याचप्रमाणें व्रताचीही हानी होत नाहीं हें मागें दिलेल्या पुराव्यावरून सिद्ध होत आहे.

ज्या ज्या लौकिक विधीस शिष्टजनांची संमति आहे असे कोणतेही लौकिकाचार जैनांनी ग्राह्य ठरविण्यास हरकत नाहीं; आणि यावरून पाहतां विधवाविवाह धार्मिक दृष्टीनेंच नव्हे पण लौकिक दृष्टीनें देखील ग्राह्यच ठरत आहे. त्रैवर्णिकाचारातील आधार देऊन मागें आम्हीं ज्या समाजांत मुली ऋतुस्नात झाल्यानंतर लग्नें होतात त्यांना शूद्र म्हणावें असें दाखवून दिलेंच आहे. परंतु व्यवहारांत त्यांना शांतिसागर तसे मानीत नाहींत याला तरी शांतिसागर लौकिकरूढी म्हणूनच मान तुकवीत असावेत नां ? या शिवाय दुसरें कोणतें कारण आहे !

विवाह हा कित्येक लौकिक आचारापैकीच एक आचार आहे. विवाहाचे जे ब्राम्ह्य, गांधर्व इत्यादि आठ भेद शास्त्रकारांनीं सांगितले आहेत ते केवली भगवानांच्या वाणींतून निघालेले नाहींत व ते अनादिही नाहींत.जस जशी परिस्थिती निर्माण झाली तसतसे हे विवाहाचे प्रकार प्रचारांत आले. ही गोष्ट कुंतीचा जो प्राजापत्यविवाह झाला त्यावरून स्पष्ट होत आहे. प्राजापत्य विवाहाची सुरुवात कुंतीपासूनच झाली हें महापुराणाच्या उत्तरार्द्धांत सांगितलेलें आहे. जुगलाधर्माच्यावेळीं बहीणभाऊ पतिपत्नी म्हणून नांदत असत! त्यावेळीं कोण कोणाचे कन्यादान करीत होता ? व कोणत्या उपाध्याया (गृहस्थाचार्या) कडून कोणत्या विधीनें हें कार्य उरकून घेत असत ? अशा लोकांस आर्य म्हणावें कीं अनार्य ! ? गांधर्व विवाहाचीहि अशीच स्थिति आहे! यावरून पाहतां विवाह हा समाजाच्या तत्कालीन परिस्थितीप्रमाणें व देशकाल वर्तमान यांवरून प्रचारांत आणला गेलेला एक सामाजिक विधि आहे असें ठरतें.

हा जो शिष्टसंमत लौकिक आचार अमलांत आणिलेला असतो याला स्थितीकरण अंगाचाही पाठिंबा घेणें आवश्यक असते. जी विधवा स्त्री मनोनिग्रह करण्यास असमर्थ असेल ती अनीतिमार्गाला लागून व परधर्मांत पडून दर्शन आणि चारित्र यांपासून भ्रष्ट होण्याचा संभव असतो. ह्या गोष्टी वेळींच टाळण्यासाठीं, व तीं स्वधर्मांत स्थिर होण्यासाठीं व तिनें

दर्शन व चारित्र पाळून धर्मसाधन करण्यासाठीं तिच्याकडून पुनर्विवाहाचें अवलंबन करवून तिला स्वधर्मांत स्थिर करणें हें सम्यग्दर्शनी माणसाचें कर्तव्य ठरत नाहीं काय? असें न करणें ह्मणजे त्या विधवेला धर्मपरांगमुख करून तिचा अधःपात करणें होय व हें कृत्य सम्यग्दर्शनी माणसानें निमूटपणें पाहणें ह्मणजे आपल्या सम्यग्दर्शनापासून च्युत होणें होय. अशा माणसांना धर्मवत्सल तरी ह्मणतां येईल काय?

समंतभद्राचार्यांनीं देखील हेच उद्गार आपल्या रत्नकरंडक श्रावकाचारांत काढले आहेत.

दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः ॥
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितीकरणमुच्यते ॥

जैनजगत्, जैनसुधारक इत्यादि वर्तमानपत्रें वाचणाऱ्या वाचकांनीं, स्वधर्मीयांनीं त्यांचें स्थितीकरण करण्याकडे दुर्लक्ष्य केल्यामुळें कित्येक विधवा धर्मच्युत होऊन त्यांची स्थिती किती केविलवाणी झालेली आहे या विषयींच्या हृदयद्रावक हकीकती वाचल्या असतीलच! स्वामी श्रद्धानंदासारखे महात्मे व महात्मा गांधीसारखे देशोद्धारक पतितजनांची फिरून धर्मस्थापना करावी ह्मणून अहर्निश झटत असतां व श्रद्धानंदांनीं या कार्यांत आपला देह ठेवला असतांना देखील तिकडे आमच्या समाजांतील पुढाऱ्यांचें व साधूंचें लक्ष्य जात नाहीं ही अत्यंत शोचनीय गोष्ट आहे. जैनसमाजाचा ऱ्हास किती झपाट्यानें होत आहे व विधवांची व अविवाहित तरुणांची संख्या भूमितिश्रेढीनें कशी वाढत आहे हें मनुष्यगणनेच्या सरकारी रिपोर्टावरून सहज कळून येण्याजोगें आहे. अशा परिस्थितींत परधर्मीयांना स्वधर्मांत घेण्याची गोष्ट दूरच राहो, पण उलट स्वधर्मीयांना देखील परधर्मांत लोटण्या सारखे उद्गार हे लोक जेव्हां काढतात तेव्हां जैनसमाज खरोखरीच शंसवाशें वर्षांत जगून राहील कीं नाहीं याची शंका वाटते. जैनच जेथें राहणार नाहींत तेथें जैनधर्माचें नांव न राहिल्यास त्यांत विशेष आश्चर्य नाहीं. कारण "न धर्मो धार्मिकैर्विना"

—: इतिशम्. :—

परिशिष्ट (अ)

अक्षरशः ग्रंथ प्रामाण्य मानणाऱ्या लोकांनीं सोमसेनाच्या त्रैवर्णिकाचारांत पुनर्विवाहाविषयीं जीं स्पष्ट विधानें केलेलीं आहेत तीं अवश्य वाचावींत. याविषयीं पं. दरबारीलाल साहित्यरत्न व न्यायतीर्थ यानीं " सम्यक्त्व वर्धक " मासिकाच्या मे १९२४ च्या अंकांत जो हिंदीत लेख लिहिला आहे. त्याचें मराठी भाषांतर आह्मीं येथें देत आहोंत. त्यावरून याविषयावर चांगला प्रकाश पडेल.

" मी त्रैवर्णिकाचार ग्रंथ डोळयांत तेल घालून वारंवार पाहिला. तरी देखलि अकराव्या अध्यायांतील १७१, १७२, १७३, १७४ आणि १७५ श्लोकांत पुनर्विवाहाचें केलेलें मंडनच पाहण्यांत आलें ! परंतु ग्रंथाचें प्रकरण पाहिल्याशिवाय एखाद्या श्लोकाचा अर्थ करणें चुकीचें आहे ह्मणून मला अकरावा अध्याय अथपासून इतिपर्यंत पहाणें भाग पडलें.

१७० व्या श्लोकांत विवाहाची सर्व क्रिया पूर्ण झालेली आहे. या नंतर " अथ विशेषः " हा मथळा देवून १७१ वा व पुढील श्लोक देण्यांत आलेले आहेत. याच गोष्टीवर कित्येक लोकांनीं ' दत्ताम् ' या शब्दाचा ' वाग्दत्ताम् ' असा अर्थ केलेला आहे.

असा अर्थ निघाला असता तर बरें झालें असतें. परंतु त्या श्लोकांच्या रचनेवरून तसा अर्थ बिलकुल निघत नाहीं.

१७१ व्या श्लोकांत अगोदर ' विवाहे ' असें पद दिलें आहे. याचे दोन अर्थ होऊं शकतात एक ' विवाहामध्यें ' किंवा ' विवाह झाल्यावर ' जर पहिला अर्थ योग्य समजला गेला तर त्यावरून वाग्दान काल देखील धरतां येणें शक्य आहे. कारण विवाहाचे पांच अंग आहेत. ' वाग्दानं च प्रदानं च वरणं पाणिपीडनम् ॥ सप्तपदीति पंचांगो विवाहः परिकीर्तितः ॥ ११ ॥ अध्याय ११ '

परंतु १७१ व्या श्लोकांत " विवाहे ' या शब्दानंतर ' दंपती ' हा शब्द पडलेला आहे. विवाहितांमध्येंच ' दंपती ' या शब्दाचा प्रयोग

करण्यांत येत असतो. आणि याच सोमसेनांच्या मतानुसार जोपर्यंत सप्तपदी होत नाहीं तोपर्यंत विवाह पूर्ण झाला असें ह्मणतां येत नाहीं. ह्मणून ' विवाहे ' या शब्दावरून ' विवाह झाल्यावर ' हाच अर्थ येथें उपयुक्त दिसतो. ' वाग्दानाच्यावेळीं ' असा अर्थ काढतां येणें शक्य नाहीं. एवढेंच नव्हे पण,

विवाहे दंपती स्यातां त्रिरात्रं ब्रह्मचारिणौ ।
अलंकृता वधूश्चैव सहशय्यासनाऽशनौ ॥ १७१ ॥

या श्लोकाच्या शेवटच्या चरणांत ' सहशय्यासनाऽशनौ हे शब्द पडलेले आहेत. वाग्दानाच्यावेळीं देखील वर कन्येचे एकत्र निजणें, बसणें, खाणें पिणें होत असतें काय ? यावरून देखील स्पष्टपणें हेंच दिसत येते कीं ही वाग्दानाच्यावेळेची गोष्ट नसून विवाह झाल्यानंतरची आहे.

ज्यांना इतक्यावरही शंका वाटत असेल त्यांनीं पुढील मजकूर वाचण्याचे श्रम घ्यावेत " वध्वासहैव कुर्वीत निवासं श्वसुरालये " ॥ १७२ ॥ सासऱ्याच्या घरीं वधूबरोबर वराचा निवास झाल्यानंतर देखील ती वधू " वाग्दत्ता " च राहते हा एक मोठा विचारणीय प्रश्न आहे जर हा प्रसंग वाग्दानाच्या वेळचा आहे तर विवाह झाला असें केव्हां ह्मणावें ? एक दोन मुलें पैदा झाल्यावर विवाह झाला असें ह्मणावें ?

एवढ्यानेंही ज्याचें समाधान झालें नसेल त्यांनीं आणखी एक पाऊल पुढें टाकावें व १७३ वा श्लोक पहावा.

चतुर्थीमध्ये ज्ञायंते दोषा यदि वरस्य चेत् ॥
दत्तामपि पुनर्दद्यात्पिताऽन्यस्मै विदुर्बुधाः ॥ १७३ ॥

हा प्रसंग तिसऱ्या दिवसानंतरचा आहे. जर त्यावेळीं वरामध्यें दोष दिसून येतील तर विवाहित झालेली देखील आपली कन्या बापानें दुसऱ्यास द्यावी. येथें विचार करण्याची गोष्ट आहे कीं, त्यावेळीं वरांत कोणते दोष दिसून येणें शक्य आहे. कुरुपता, निर्गुणता, निर्बलता इत्यादि वरवरचे दोष पाहिल्याच दिवशीं समजणें शक्य असते. यावेळीं अर्थात् चौथ्यादिवशीं

जर कोणते दोष प्रगट होण्याजोगें असतील तर ते नपुंसकत्वादिकच असूं शकतात.

कन्येच्यासंबंधीं जितके दोष असतात. ते अगोदरच पाहिले जातात. परंतु जे दोष गुप्त अर्थात झांकलेले असतात ते पतिपत्नी संबंधानंतरच समजून येतात चौथ्या दिवशीं जे दोष प्रगट झालेले आहेत ते पतिपत्नीसंबंधानेंच झालेले आहेत हें मानावें लागेल आणि संभोग झाल्यानंतर जर पति दोषी असेल तर कन्या दुसऱ्याला देतां येईल. जरी मुद्दा समजण्यासाठीं १७३ वा श्लोकच पुरेसा होता तरी देखील ग्रंथकारांनीं तो विशेष स्पष्ट करण्यासाठीं आणखी कष्ट घेतलेले आहेत. ते लिहितात —

प्रवरैक्यादि दोषाः स्युः पतिसंगादधो यदि ।
दत्तामपि हरेद्दद्यादन्यस्मा इति केचन ॥ १७४ ॥

' प्रवरैक्यादि दोष ' आणि ' पतिसंगमापासून ' हे शब्द जोरजोरानें असें सांगतात कीं, आता कन्या, कन्या राहिली नाहीं ती क्षतयोनि झाली. यानंतर ती दुसऱ्याला देण्यांत येतें ! एवढ्यावर ही ' सोमसेन पुनर्विवाहाच विधान करीत नाहींत. ' असें ह्मणणारे जे लोक आहेत त्यांना न्याय आणि सत्य यांवर तरी भरवंसा ठेवा याशिवाय दुसरें काय सांगतां येणार आहे ? तरी देखील आह्मी त्यांच्यापुढें १७४ वा श्लोक अवश्य ठेवूंच.

कलौ तु पुनरुद्वाहं वर्जयेदिति गालवः ॥
कस्मिंश्चिद्देशे इच्छन्ति न तु सर्वत्र केचन ॥ १७५ ॥

गालव ह्मणतात कीं कलिकालांत पुनर्विवाह करू नये. कांहीं कांहीं देशांत करतात. यावरून देखील हेंच दिसून येतें कीं पहिल्या चार श्लोकांत पुनर्विवाहाचे विधान केले गेलें आहे आणि ह्मणून त्याविषयावरील गालवाचें मत दिलें गेलें आहे. हे सोमसेनांचें मत नव्हें, दुसऱ्यांचें आहे असें कोणी ह्मणतील. परंतु दुसऱ्यांच्या मताचा उल्लेख येथें करण्याची जरूरी काय ?

दुसऱ्यांच्या वाक्यांचा उल्लेख दोन कारणांनीं करण्यांत येत असतो.

एक त्यांच्या वचनाला प्रमाण मानून आपल्या मताला पुष्टि देण्यासाठीं अथवा दुसरें, त्याचें खंडन करण्यासाठीं. सोमसेनांनीं त्याच्या मताचें खंडन-ही केलें नाहीं किंवा तिरस्कारही व्यक्त केलेला नाहीं. यावरून सोमसेनाला पुनर्विवाह विधिमान्य होता ही गोष्ट चांगली दिसून येते."

* * * * *

जंवेरीबाग इंदोर
कार्तिक कृष्ण १०
वीरसंवत २४४९

भवदीय.
साहित्यरत्न
दरबारीलाल न्यायतीर्थ

वरील विधानें वाग्दानाच्यावेळेचीं व सप्तपदीच्या अगोदरचीं आहेत असें पंडित लोक म्हणतात. परंतु श्लोक १७१ मधील 'सह शय्यामनाऽशनौ' या पदावरून तरी त्यांचा अभिष्ट मेंदु ताळ्यावर येईल असें वाटतें. आम्ही याठिकाणीं पंडितांना विचारतों कीं तुमच्या मुलीं वाग्दानाच्यावेळींच वराबरोबर एकाच बिछान्यावर निजणें, एकाच आसनावर बसणें, खाणें, पिणें इत्यादि विवाहानंतरच्या क्रिया करतील तर त्या तुम्हांस पटतील काय ? असें त्यांनीं केल्यास तुम्ही कोणत्या तोंडानें त्यांना बोलणार ! 'गालवके-मतसे कहींमें विधवाविवाहनिषिद्ध है. परंतु कुछ देशोंमें वह होभी सकता है.' असा श्लोक १७९ चा पंडित वंशीधर यांनीं रा. कोठारीच्या खटल्यांत अर्थ केलेला आहे. (कोठारी कौन है पान ७३) यावरून हें विधान विधवास्त्री पुनर्विवाहाविषयीं नाहीं असे जे काहीं पंडित म्हणतात ते निरर्थक आहे असें दिसून येतें. पंडितांच्या गोटांतल्याच एका पंडितानें केलेल्या या अर्थाकडे आमचे भोजराज (म. व उ. वै.) व पं० सोनी इत्यादि पंडित लक्ष्य देतील काय ?

लेखक.

परिशिष्ट (ब)

खालीं दिलेल्या श्रावकाचारांत विधवाविवाहाचा निषेध दिसून येत नाहीं.

पव्वेसु इत्थिसेवा । अणंगकीडा सया विवज्जंतो ।
थूळयड बंभयारी । जिणेहि भणि पवयणम्मि ॥ २१२ ॥
पर्वसु स्त्रीसेवामनंगक्रीडां सदा विवर्जयन् ।
स्थूलतया ब्रह्मचारी जिनैर्भणितः प्रवचने ॥

वसुनंदि श्रावकाचार पृष्ट ८७

पर्वकालीं स्वस्त्रीचाही त्याग करणें, परस्त्री व अनंगक्रीडा ह्मणजे कामसेवनाच्या इंद्रियावांचून अन्य ठिकाणीं कामसेवा केव्हांही न करणें हें स्थूलब्रह्मचर्य होय असें जिनांनीं आपल्या उपदेशांत सांगितलें आहे. हें चौथें अणुव्रत होय.

स्वसृमातृदुहितृसदृशी दृष्ट्वा परकामिनीः पटीयांसः ।
दूरंविवर्जयंते भुजगीरिव घोर दृष्टिविषाः ॥ ६४ ॥

अर्थः—शहाणे लोक परस्त्रिया आपल्या बहिणी, माता किंवा कन्या ह्यांच्यासारख्या मानून, ज्यांच्या दृष्टींतही भयंकर विष आहे, अशा नागिणींचा त्याग करावा. त्याप्रमाणें त्यांचा त्याग करतात.

ये निजकलत्रमात्रं परिहर्तुं न शक्नुवंति न मोहात् ।
निःशेषशेषयोषिन्निषेवणं तैरपिन कार्यम् ॥

अमृतचंद्राचार्यकृत पुरुषार्थसिद्धुपाय.

अर्थः —जे मोहनीय कर्माच्या उदयामुळें स्वस्त्रीचा त्याग करण्यास असमर्थ आहेत. त्यानीं [स्वस्त्रीशिवाय] बाकीच्या अन्य स्त्रिया ह्मणजे वेश्या, दासी, परस्त्री, कुमारी, वगैरे सर्व स्त्रियांचा त्याग अवश्य केला पाहिजे.

न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत् ।
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसंतोष नामापि ॥ १३ ॥

टीका:—' सा परदारनिवृत्तिः ' यत् परदारान् परिगृहीतांश्च स्वयं ' नच ' नैव गच्छति । तथा परानन्यान् परदारलंपटान् न गमयति । परदारेषु गच्छतः यत् प्रयोजनं नच । कुतः पापभीतेः पापोपार्जनभयात् न पुनः नृपत्यादि भयात् । न केवलं सा परदारनिवृत्तिः किंतु स्वदारसंतोषनामापि स्वदारेषु स्वदारसंतोषः तन्नामयस्याः ।

अर्थः—परिगृहीता ह्मणजे जिला नवरा आहे अशी स्त्री आणि अपरिगृहीता जिला नवरा नाहीं अशा स्त्रीशीं राजादिकांच्या भीतिमुळें नव्हें; पण पापाच्या भीतिमुळें जो स्वतः संभोग करीत नाहीं, व दुसऱ्यास ह्मणजे परस्त्रीलंपट अशा पुरुषास संभोग करावयास सांगत नाहीं. यास परस्त्रीत्याग असें ह्मणतात व यासच स्वदारसंतोष असेंही ह्मटलें आहे. (पान ८ पहा)

वेश्या दि पर नारीषु संगं कुर्वंति येऽधमाः ।
मातंगा इव तेऽस्पर्शा भवंति भुवनत्रये ॥

सकलकीर्तिकृत धर्मप्रश्नोत्तर श्रावकाचार

अर्थ – त्रैलोक्यामध्यें जे दुष्ट लोक वेश्यादि परस्त्रीबरोबर संभोग करतात, ते चांडालाप्रमाणें अस्पृश्य आहेत असें समजावें. (पान १० पहा)

सुभाषित रत्नसंदोहामध्यें असें लिहिलं आहे कीं:—

तत्र वेश्या समामनस्य कथं चतुर्थमणुव्रतम् ।

अर्थः—वेश्या सेवन करणारा मनुष्य चतुर्थ अणुव्रती ह्मणजे ब्रह्मचर्याणुव्रती कसा होईल ? [पान १० पहा]

याप्रमाणें पांच प्रसिद्ध व सर्वमान्य श्रावकाचार व सुभाषित रत्न संदोह अशा सहा ग्रंथामध्यें वेश्या व परस्त्रीसेवन करणाराला ब्रह्मचर्याणुव्रती ह्मटलें नाहीं. तसेच कोणास आणखी कित्येक ग्रंथामध्यें याप्रमाणेंच सांपडेल फक्त सोमदेवसूरी आपल्या यशस्तिलक चंपूमध्यें वेश्यासेवन करणारा ब्रह्मचर्याणुव्रती होतो असें लिहिलें आहे. यासंबंधीचा खुलासा आम्ही पुस्तकांत

दिलेलाच आहे. वरील कोणत्याही श्रावकाचारांत विधवाविवाहाचा निषेध केलेला नाहीं; व इतर कोणत्याही श्रावकाचारांत तो निषेध दिसून येईल असें आह्मांस वाटत नाहीं.

कोणत्याही सर्वमान्य आचार्यांनीं सोमदेवसूरी आणि आशाधर पंडितांप्रमाणें ब्रह्मचर्याणुव्रताविषयीं वेडीं वांकडी विधानें केलेलीं नाहींत. पंडित ह्मणतात कीं, ग्रंथांत कोठें धर्म व आगमाविरुद्ध मजकूर आढळल्यास त्यावर पांघरूण घालावें. उदाहरणार्थ पं. कलाप्पा निटवे यांनीं आशाधर कृत सागारधर्मामृतांतील असल्या धर्मविरुद्ध वचनाचा अर्थच अनिबात गाळला आहे अ त्या वाक्यांचा अर्थ लोक विपरीत करतील ह्मणून दिला नाहीं असें ह्मटलें आहे. हें त्यांचें करणें लोकांना पसत पडेल असें आह्मांस वाटत नाहीं. घाण सांचून सांचून दुर्गंधी येऊं लागली ह्मणजे रोग उत्पन्न होतात, व हे रोग मनुष्याचे प्राण हरण करतात. ह्मणून सांचलेली घाण काढून टाकणें व पुन: घाण सांचूं न देणें हेंच उत्तम असतें. खरा उपाय ह्मटला तर पाठशाळेच्या शिक्षणक्रमांतुन व शास्त्रसभांतून हे ग्रंथ बंद करावयास पाहिजेत-जर चालूच ठेवणें असतील तर हीं धर्मविरुद्ध वाक्यें बेलाशक गाळून टाकलीं पाहिजेत; किंवा अर्थ न बदलेल अशा तऱ्हेनें त्यांच्या रचनेंत फरक केला पाहिजे. " वधूवित्तस्त्रियौ मुक्त्वा " या ठिकाणीं ' स्वगृहीतां स्त्रियं मुक्त्वा' असा बदल केल्यास धर्माला अविरुद्ध असा अर्थ प्राप्त होवून काव्य व व्याकरण दृष्ट्याही हा बदल निर्दोष दिसून येईल. आशाधरांची वाक्यें सर्वथ काढून टाकल्याशिवाय गत्यंतर नाहीं.

सूचनाः—सात आण्यांचीं पोस्टाचीं तिकिटें पाठविणारास पुस्तक पाठविलें जाईल. व्ही. पी. करण्यांत येणार नाहीं.

पुस्तकें मिळण्याचा पत्ताः—

सी. जे. हाडोळे

४७९ शुक्रवारपेठ,

सोलापूर.

सभा या परिषद्

की

आवश्यकता.

इस विषय पर

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन धर्मोपदेशक

पंडीतरत्न श्री आत्मारामजी महाराजने

कसुर (पंजाब) में

ता. ३० डिसेम्बर, सन १९१० को

मागधी भाषामें किया हुआ

जाहेर व्याख्यान

(हिंदी भाषान्तर सहित)

जिसको,

अमृतसर निवासी लाला वसंतामलजीने

शहर अहमदाबाद के

शाह वाडीलाल मोतीलालके 'भारतबन्धु प्रिंटिंग वर्क्स' में

छपवा कर प्रसिद्ध किया.

प्रथमावृत्ति. प्रत १०००.

सप्टेम्बर, १९११.

मूल्य:—सदुपयोग.

ओरम्

णमो समणस्स भगवतो महावीरस्सणं

सभाविषय.

विदित भवे सव्वे भद्द पुरिस्साणं धम्मस्स णं उन्नति अठे परिसम्मं करित्तव अरहे पियमित्ता सभाणं अभावउ पुणं धम्मस्सणं उन्ननिणंवि अभावे पासह पुव्वंकाले मव्व कज्जाणं सभाय करंति रायपसेणी सुत्ते एवं वागरेति-तंजहा-चत्तारि परिसाउ पणंत्ता-तं-खत्तिय परिसा १, गाहावइ परिसा २, माहण परिसा ३, इसि परिसा ४ पुव्वउत्तं परिसा अहानीए दंडं अत्थि-वा-सुत्त भगवइ वा ठाणांग सुत्ते एवं भासंति-पाय सव्वइंदाणं वा देवाणंतिण्णि २ परिसा अत्थि-सेजहा नामे-अभिंतरिया समिया १ मज्झिमा चंडा २ वाहरिया जाया ३ तिण्णिपरिसा अहानाय वदंती अम्हाणंवि अरहे-सभाणं वुद्धि अट्ठे पुणो २ उज्जमं कडेह-पासह-देविड्ढी गणि खमा-समणेण के वामे व सभा किच्चा के वामे व परिसम्मं कट्टु-जस्सणं सुपरिणामे भुया जिणमग्गेणं परम पगासभूया जस्सणं पहावउ-वय पज्ज दिवसे जिणमग्गस्सणं सरूवे नायंति से किवा पुव्वउतं महप्पाणं सभाणं उदितं सुंदर सुंदर पत्थाव वंधेज्ज पुणो तस्स पत्थावाणं पालेज्ज पुणो धम्मस्स णं वुद्धि भवति-पासह-सिरि विवाह पण्णत्तिस्सणं चउदसे सत्ते-जइ इं दस्सणं-अमुए कज्जेसमुपज्जति-तो-अभिंतिरियाणं परिस्साणं से कज्जे समुलावेति सेपरिसा मज्झिमियाणं परिसाणं से कज्जे परिकहेति मज्झिमिया परिस्सा वाहिरिया परिसाणं आणाय करंति सेपरिसा सयदासोणं पुव्वउत्तं आणायदलेंति से दासे सय दासाणं आणाकरंति सिग्घं कज्जे पुण्णं भवति

पुव्वउत्तं सुत्ते सिद्धं करेति-जो कज्जं जस्सणं अरहे से करेज्ज कज्जस्सणं वा सभाणं परम सोहा भवति सुत्ताउणं पयड भवति पुव्व काले सावया एगउ ठाणंमिलि २ त्ता तउ पच्छा मुणि समीवे गछे आसि किन्तु सव्व भा सभाउ सुहम्म सभा परम सेठे पासइ वितियंगे सभा सुहमाण सभाण सेठाजो पुरिसे सभाणं सम्मं पयारउ नियम नो पालेति सेणं दसा चमरइंद मिव भावति अयंठे सभाणं पत्थाव सम्मं पयारउ जाणित्तए वागिण्हित्तए उदित्तं-किन्तु पत्थाव-वा सभावइ-वा कज्ज वाहग सुंदर भवित्तए-सभा वा परिसा एगट्ठे सभाणं वइणं अरहे अहायोगे कज्ज वाहयाणं धण्णवाय वा सिरका दलि-त्तए जहा उवासग दसाए भगवतेण धण वाय दच्चा-वा ततीयंगे देवे परोप्परं धण्णवाय वासि क्खा दलयंति सभाणं वुठिकया भवति-जया पेम भाव परोप्परं भवे.

प्रेमभाव विषय.

पेम भाव सव्व काज्जाणं साहण भूए पेम भाव आयाणं दोसा णं अवहरेति पेम भाव परोप्परं मित्ति भाव उप्पन्नं करेति पेम भाव मणस्सणं विसोहि करेति पेम भाव सव्व संपयाणं वुड्ढि करेति से जहा नामे सलिलं वच्छेणं वुड्ढि करेति-देवाणुप्पिया-साहम्मीयाणं भत्ति रक्का गुणकि । त्तण पुणो पुणो पेम भाव उप्पन करेति जइ। तिण्हं साहाणं परोप्परं पेम भावं कडेज्ज वेसं जहे पुणो तिण्हि साहा एगउ भवित्ता पुणो धम्मस्सणं उद्धरणं करेज्ज तो खिप्पं जिण मय-स्सणं उदय भवेज्जा-पासह-पाय तिण्हि साहाणं मूल सिद्धंते एगे-सेजहा नामे पंचत्थि काय काल दव्वे नवतत्ता इच्चादि किन्तु किरि-या मेदे अत्थि देवाणुप्पिया-मू मूल सिद्धं तेणं गिण्हिइरत्ता परोप्परं पेम भाव सड्ढि वद्दणा रहे तिण्हि साहाणं अरहे एवा मेवं

परथावं बंधेज्ज जहानिंदायुत्ते लेह नो सुदिए भवे सुण्णु जणा किं तुब्भेणं जिण मयस्सणं पुव्व वत्थाणुव्वेहित्ता दुःखंनो भवति हा सोगं सव्व मग्गाउ जिण मग्गे परम सुंदरे किन्तु सय वेसेणं पहावेहितो मज्ज दिवसे बहु वेजणा एवं वदंति जैन मते नत्थिक मत्ते असुइणं मत्ते जैणीसया असुइ भवंति देवाणुप्पिया इच्चादि सदे बहवे जणा किं भासंति केवल सए वेसेणं पहावउ किन्तु जिण मग्गे नत्थि नत्थिक मते नत्थि असुइणं मग्गे पासह विवाह पण्णती आवस्सए नसीह सुते इच्चाइ जइसिरि संघे तिण्हि साहा परोप्परं पेम भावं पयड करेज्ज पुणोविज्जाणं उन्नति करेज्ज तो किं पुणो जिणमग्गे उन्नइ भावसणं णो भवेज्जा अवस्स मेवं भवेस्सति पियमित्ता दाणि समय दोसेणं नत्थि वेरेणं नत्थि निंदाणं नत्थि दोसारोवेणं नत्थि पिठिमंसियाणं नत्थि इयाणि समय संत्ति भावस्सणं पेम भावस्सणं परोप्परं अविरोहिए भावस्सणं अम्हाणं अरहे पेम भाव सद्धिं वहित्तए जिण वाणीस्सणं पयारं करित्तए इमे मम आसा तिण्हि साहा अंतो वा पत्तेय २ साहा अंत्तो सिरि जिणिंद देवेणं पहावउ वेसंनउं भवे पेम भावं पयडं भवे जस्सणं पहाउ विज्जाणं उन्नति भवे.

विद्याविषय.

जाव काले विज्जाणं उदयणो भवेज्जा ताव काले धम्मस्सवि उदय भावस्सणं पत्तणो भवेज्जा धम्मस्सणं मूले अहिंसा दयाणं कारण नाणं पासह दसवियालिय सुत्तस्सणं पढमं नाणं तउ दया—नाणं कया भवति पाय वि ज्जातो किं-ततीय मंगेइमे सुत्ते संति भगवता तिविहे धम्मे पण्णत्ता तंजहा सुअधिज्जते १ सुझातिते २ सुत वस्सिते ३ अहत्रा तिहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे महा निज्जरे महापज्ज वसाणे भवति-जस्सणं पढमं ठाणं इमे-कयाणं अहं अप्पं

वा वहुंवा सुयं अहिज्झिस्सामि १ महापुरिस्सा देवेवि पच्छा तावं करेति जहा ततीयंगे-अहोणं मते संते बले संते पुरि सकार परिक्कमे सुखे मं सुभि वखंसि आयरिय उवझाएहिं विज्जमाणेहिं कल्लसरीरेणं णो वहु सुत्ते अहिते २ उत्तरा अज्झयण सुयस्सणं सत्तरस्से अज्झयणे अयंजंपइ जे केइ पव्वइय निद्दा सीलेपगामसो भुच्चापिच्चा सुहं सुवइ पाव समणेत्ति वुच्चई १ दस वेयालिय सुत्ते इमे दागरेति असण पाणं खाइमं साइमं छंदिय साहम्मियाण भुंज्जे भुच्चा सज्झायरय जे स भिक्खू १ समणे भगवं महावीरे अंग सुयाणं अयं भासंति अहं सुकि-ज्जा चरणंप्पमोखं दोवेहिं कारणेहिं संसारं विति वत्तेज्जा विज्जाए चेव चरणेणं चेव-जाव काले जिनमते विज्जाणं उन्नतिणो भविस्स-ति ताव काले जिण मयवि उदय भावस्सणो पत्तं भवेज्जा-पासइ पण्हवा गरण वा अणुउग दाराउ-वारस्स विहि भासा सोलस्स वयण संधि पय हेतु उणाइ किरिया विहाण वण्णसर विहि विभत्ति इच्चादि णं अरिहंत मणुनायं अणुउगदारे भावपमाणे चउविहे पण्णत्ता समा-सिए १ तद्धिते २ धातुए ३ निरुत्तिए ४ अहवा अठविहा वयण विभत्ति सुवपच्चय इच्चादि अहवा सक्कया पागया चेव भणिइउ होंति दुन्निवि सर मंडलं मिगिज्जंते पसत्थाइ सि भासियाइं १ अण्ण सुयाणंवि अणेगे पमाणं जाव विज्जा अहि ज्झिसए जोगे-जिहित्थाणं सुत्त मज्झे सोलस्स संसकारे सिद्धं हावंति गभ्भाहाण १ पुंसवन २ जम्म ३ चंदसूरियं दंसण ४ खीरासण ५ छठी जागरणा ६ सु। इकम्मे ७ नाम करण ८ अण्ण भोगे ९ कण्ण विहण १० चूला कम्मं ११ उवणयग १२ विज्जारंभ १३ विवाहे १४ वयारोवे १५ अपछिमा मारणंतिय संलेहणा जाव अंत कम्मे १६ इमे संस २ कारेणं इमे सुताणं मझे वित्थारे अत्थि तं जहा उव वाइए राय पसेणी जीव आयारे नाया धम्म कहाए विवाह पण्णत्तिए अंतगड दसाउ

जंबूदीव पण्णति इच्चादि सुतमझे सोलस्स संसकाराणं संपुण्णं सरुवे अत्थि उवणय पण संसकाराउ पच्छा विज्जारंभ संसकारे भवति णासहनाया धम्म कहाणं पढमंअझयणं मेहकुमारास्सणं अधिकारे मेह कुमारस्सण अम्मापियरो साइरेगं अठवासगंजादगंजाणित्ता-सोभणंसि तिहि करण दिवस नरकत महुतंसि एहायं जाव सव्वालंकार विभू सियंकरित्ता महया इड्ढि सक्कारसमुदायणं कलायरियस्सणं उवणेति तनेणंसे कलायरिए तं मेहकुमारस्स बावत्तरिकलाउ सुत्ततोय अत्थ उयकरणउ सिक्खावेति-तं--लेहं १ गणियं २ रुवं ३ नट्टं ४ गीय ५ वाइय ६ सरगयं ७ पुक्खरगय ८ समतालं ९ जूयं १० जण वायं ११ पासयं १२ अट्ठावयं १३ पोरकव्वं १४ दगमट्टियं १५ अन्नविहि १६ पाणविहिं १७ वत्थविहिं १८ विलेवणविहि १९ सयणविहि २० अज्ज पहेलियं २१ मागहियं २२ गाहा २३ गीइयं २४ सिलोगं २५ हिरणजुत्ति २६ सुवणजुत्तिं २७ गंध जुत्तं २८ चुण्ण जुत्तिं २९ आभरण विहिं ३० तरुणि पडिकम्मं ३१ इत्थी लखणं ३२ पुरिसलखणं ३३ हयलखणं ३४ गयलखणं ३५ गोणलखणं ३६ कुकुडलखणं ३७ छत्तलखणं ३८ चक्कलखणं ३९ दंडलखणं ४० असिलखणं ४१ मणिलखणं ४२ कागणिलखणं ४३ वत्थुविज्जं ४४ नगरमाणं ४५ खंधावारमाणं ४६ चारं ४७ पडिचारं ४८ वुहंपडिवुहं ४९ चक्का वुहं ५० गरुलवुहं ५१ सगडवुहं ५२ जुद्धंनि जुद्धं ५३ असिजुद्धं ५४ मुनिजुद्धं ५५ बाहुजुद्धं ५६ लया जुजुद्धं ५७ इसत्थं ५८ छरुप्पवायं ५९ धणुव्वेहं ६० हिरणपागं ६१ सुवन्नपागं ६२ मणिपागं ६३ धाउपागं ६४ सुत्तखेडुं ६५ वट्टखेडं ६६ नालियाखेडुं ६७ पत्तछेज्जं ६८ कडगछेज्जं ६९ सजीवं ७० नि-जीवं ७१ सउणरुय ७२ मिति तनेणंसे कलायरियरिए मेहकुमारा स्सणं लेहाइयाउ गणियप्पहाउण उसउणरुवय पज्जवसाणाउ बावेत्तरि

कलाउ सुत्तउय अत्थउय गंथउय करणउय सिखावेत्ता अम्मापियणं उवणेति अम्मापियरो तं कलायरियं विउलं पीतिदाणं दलित्तापडि विसज्जइ तउपछा मेहकुमारे अठारस्स विदेसी भासाविसारए भूया निण्णलिहिए विदेसी भासा-तं-खुज्जा-चिलाए-वामण वडभिएवब्बर वउसे जोणिय पण्हविए इसिणिय चारुय लासा लउ सिय दविल सिहला आरब्ब पुलिंद पक्कणीय मरुंडि सवरी पारसी वानाणाविदेस भासा विसारएजाव भूय पियमित्ता अयं अझयणविहि तंदुलवियलिय गंथेएवंलिहेति वास वीसाइं विज्जाए गिएहए सुतमझे महिलाणंवि चउसठि कलायणत्ता-से-वि-अझयणाइ-पासह-जिएमयस्सणं पुव्व केवत्था आसीइयाणि समयके पाय आयरियदेसे सव्वते जिणिंद देवेणं नादेहोत्था-सहस्साइं मुणि नवाइं २ पोत्थेयरयंतिदेसेणं संव आसी इयाणि समयपाय जिणमय पढमतोअत्थि अप्पं पुणो परोप्परं वेसं भावं वहु किरियाभेदे वहु--हा--के--कस्टेणं समय-हे वद्दमाण समयतं-खिप्पंगश्चह से समयपयड भवे जस्सणं समय पुव्वं समाणे जिण धम्मस्सणं उदयभवे-उद्य केणपयारउ भवेज्जा केवलविज्जातो विज्जाणंकिंसारे--देवाणुप्पिया विज्जाणं आयार मुद्धि सारे आचार शुद्धि विषय--जावकाले आयार विसोहिणो भवति तावकाले आया विसोहिस्सणं मग्गाउ परंमुहेचिठति-सयायारी पुरिसे धम्मस्सणं अरहे भवति--सयायारी पुरिसे विज्जाणं अरहे भवति सयायारी पुरिसे देसेणं हिएसी भवति--सयायारी सइपरोपगारं करेति--सइयारीपुरिसे मोक्खे गछति-सयायारी पुरिसे ही धम्मस्सणं महमाकारए भवति--सयायारस्सणं किलखणं-सयायारी सव्वेवसण चयति-- सयायारी-पुरिसे अनायाउणो वावारे करेति-नो उक्कोडिए गिएहति--अहवाहिंसए नराणं सद्धिणोवा वाडे करेतिसव वंभ चेरस्सणं सया ही पालेति आयाणं सयाही नाणाउ विसोहि

करेति पिय मित्ता आयार विसोहि अरहे अवस्समेव करित्तए केवल विज्जाउ आयार विसोही भवति तस्सठे विज्जा अवस्समेव अरहे अहि ज्झित्तए पासह विवाहपण्णंति सुत्तेकिं भासति सुय संपन्ने पुरिसेनो सीलसंपन्ने सेणं देसविराहेपणत्ता--सुयसंपन्ने सीलसंपन्ने पुरिसे सव्वा राहेपणत्ता अहंकंक्खा .करेमि सिरिजिणिंद देवेणं वहावउ सिरिसंघ मझेविज्जा वा । आयार विसोही सिग्घं केवल पाउर भूयभवे जस्सणं वहावउ सव्वाराहे भवित्ता खिप्पं मुत्तिउवलद्ध भवे.

नमस्कार हो श्री श्रमण भगवन् वर्द्धमान स्वामिजीको !

सभा विषय.

विदित होवे सर्व भद्र पुरुषोंको धर्मकी उन्नतिके अर्थे सदाही परिश्रम करना उच्चित है. प्रिय मित्रो ! प्रायः सभाके अभावसे पुनः धर्मोन्नतिका भी अभाव होता है. देखीये ! पूर्व काल (जो कि परम पवित्र समय था) में सर्व कार्य सभाय करती थी. राय प्रश्रेणी नामक सूत्रमें लिखा है कि, चार परिषदांय होती है. जैसे कि, क्षत्रिय परिषद् १, गथापति परिषद् २, ब्राह्मण परिषद् ३, ऋषि परिषद् ४. उक्त परिषदोंका उक्त सूत्रमें ही यथायोग्य न्याय भी कथन किया गया है. अथवा सूत्र भगवति वा सूत्र ठाणांग वा सूत्र जीवाभिगमादिमें लिखा है कि, प्रायः सर्व इन्द्रो कींवा देवतेंकी तीन २ परिषदांय है. जैसे कि, अभ्यंतरिय परिषद्–१, मध्यमिय परिषद्–२, बाह्य परिषद्–३ ये तीनही परिषदोंके तीन ही नाम है. जैसे कि, सम्मत–१, चंड–२, यात्त्च–३. सो उक्त तीन ही परिषदें यथा न्यायसे वर्तातीया है, सो हमको भी योग्य है कि सभा की वृद्धि अर्थे पुनः पुनः उद्यम करें. देखीये, देवर्द्धि गणि क्षमा श्रमणजी महाराजने कैसी सभा

कीथी जिसका कैसा सुपरिनाम हुआ ह? अर्थात् भगवन वर्द्धमान स्वामिके ९८० बर्षके पश्चात् यह आचार्य हुवे है. इनोंने एक सभा कीथी तिसमें बहुतसे कार्ण ज्ञान व्यवछेद होनेके दिखलाये. फिर तिस सबाकी सम्मति अनुसार ज्ञान पुस्तकारुढ किया. जिसके प्रतापसे जिन मार्गका परम प्रकाश हुआ तथा जिनके प्रभावसे हम आज दिन जिन मार्गके स्वरुपको जानते है सो उक्त कृपा उक्त महात्माजीकी है; न तु अन्यकी. किन्तु सभाको उचित्त हे कि सुंदर २ प्रस्ताव बांधे, पुनः तिन प्रस्तावेंको पालन करें, फिर धर्मकी वृद्धि हो सकति है. देखीये, श्री विवाह प्रज्ञप्ति सूत्रके १४ वे शत्तकमें लिखा है कि, यदि इन्द्रको अमुक (वर्षादि) कार्यकी इच्छा उत्पन्न होती है तो अभ्यंतरिय परिषद्के वासी देवतोंको वह कार्य कहा जाता हैं, कार्य उक्त देव ते मध्य परिपद्के वासी देवतोंको कहते हैं, मध्य सभाके वासो देवतें उस कार्य के लिये वाह्य परिपद्के वासी देवतोंको आज्ञा करते हैं, वह परिषद्के वासी देवते स्वः दासोंको उक्त आज्ञा करते हैं, वह स्वः दास अपने स्वः दासोंको उक्त कार्य करनेकी आज्ञा देते हैं सो वह कार्य शीघ्र हो जाता है. पूर्वोक्त सूत्र सिद्ध करता है कि जो कार्य जिसके योग्य होवे वह ही करे सो कार्य की व सभाकी परम शोभा होती है.

सूत्रोंसे प्रगट होता है कि, पूर्व कालमें श्रावकजन प्रथम एक स्थानपर एकत्र हो कर फिर सम्मत्यानुसार मुनिओंके समीप व्याख्यान सुननेको जा आ करतेथें. द्वितियांगमें यह भी कथन है कि सब सभाओंसे स्वःधर्मी सभा परम श्रेष्ट है इस लिये स्वःधर्मी सभाका होना अत्यावश्यकीय है.

जो पुरुष सभाके सम्यक् प्रकारसे नियम नही पालता हैं तिसकी दशा चमर इन्द्रवत् होती है. जैसे कि सूत्र भगवतीमें लिखा

है कि, जब चमर इन्द्र स्वःराजध्यानिमें उत्पन्न हुआ तो प्रथम ही अवधि ज्ञान करके उर्द्ध लोकको देखा तो निश्चय हुवा है कि शक्र इन्द्रके पाद मेरे मस्तकोपरि है. तब सभाके वासी देवतोंके पूछनेसे निश्चय हुआ कि, शक्रेंद्र महा भाग्यशाली है, पुन्य पुज्य है. किन्तु चमर इन्द्रने मनमें ये ही निर्णय किया कि मैं अभि इसको स्वर्गसे पतित कर दूंगा. परंतु सभाके वासी देवते फिर विज्ञप्ति करने लगे कि हे महाराज ! यह शक्रेन्द्र स्वर्गसे कदाचित् भी पतित नही होवेगा. क्यों कि यह अनादि स्थिति है. फिर भी चमर इन्द्र सभाके वासी देवतोंकी न मानता हुआ एकला ही उर्द्धलोगको चला गया. जब शक्रेन्द्रने चमर इन्द्रको चाते हुए को देखा तो चमरोपरि वज्र चलाया. चमर इन्द्र वज्रको देखके भयभीत होता हुआ उर्द्ध पाद अधो शिर करके वहांसे भागा, मुकट त्रुट गया, कक्षे प्रस्वेदयुक्त हो गइ. परम कष्ट सहना पडा सो केवल सभाके वासी देवतोंकी न माननेसे ही यह दशा प्राप्त हुई. इस लिये सभाके प्रस्ताव सम्यक् प्रकारसे धारन करने चाहिये किन्तु सभापति वा सभाके प्रस्ताव सुन्दर होने चाहिये. सभा वा परिषद्का एक ही अर्थ है परंतु सभापतिको योग्य है कि कार्यवाहकोंको यथा योग्य धन्यवाद वा शिक्षा देवें. जैसे कि, सूत्र श्री उपाशक दशांगमें श्री श्रमण भगवन् वर्द्धमान स्वामिने श्रावक कुंडकोलीयजीको वा कामदेवजीको धन्यवाद दिया है तथा तृतीआंगमें लिखा है कि सभामें देवते भी परस्पर धन्यवाद व शिक्षा देते है सो सभाकी वृद्धि प्रेमभावसे होती है. इस लिये परस्पर प्रेमभाव अवश्य ही करना चाहिये.

अथ प्रेमभाव विषय.

प्रेमभाव सब कार्योंका साधनभूत है; प्रेमभाव आत्माके

दोषोंको दूर करता है, प्रेमभाव परस्पर मैत्री भावको उत्पादन करता है, प्रेमभाव मनकीभी शुध्धि करता है, प्रेमभाव सब संपदायोंकीभी वृध्धि करता है. जैसे सलिल वृक्षकी वृद्धि करता है. हे देवतोंके भी वल्लभजनो! स्वः धर्मीओंकी भक्ति वा परस्पर रक्षा गुन किर्तन पुनः पुनः प्रेमभाव उत्पन्न करता है. यही जैन मतकी तीन ही शाखें (जैन मतकी संप्रतिकालमें तीन शाखें है जैसे कि, श्वेतांबर साधुमार्गी जैन-१, श्वेतांबर मंदीरमार्गी जैन-२, दिगंबर जैन-३) परस्पर प्रेमभाव करें. परस्परके द्वेषको छोडें. फिर तीनही शाखें एकत्र होकर पुनः धर्मोद्धार करें तो शीघ्रही श्री जैन मतका उदय हो सकता है. देखीये, प्रायः तीनही शाखोंका मूल सिद्धान्त एक है. जैसे कि, पंचास्तिकाय धर्म-१, अधर्म-२, आकाश--३, पुद्गल-४, जीव--५, काल द्रव्य--६. नव तत्त्व जैसे कि, जीव तत्व--१, अजीव तत्व--२, पुन्य तत्व--३, पाप तत्व--४, आश्रव तत्व--५, संवर तत्व ६, निर्जरा तत्व--७, बंध तत्व--८ मोक्ष तत्व--९, तथा सप्त नय चतुर्निक्षेप चतुर्गत्यादि एक है किन्तु क्रियाभेद अवश्य है, सो हे देवाणुप्रिओ! मूल सिद्धान्तको ही ग्रहण करके परस्पर प्रेम भावके साथ वर्तना योग्य है. तीनही शाखोंको योग्य है ऐसे २ प्रस्ताव बांधे जिस प्रकार निंदायुक्त लेखही मुद्रित न होवे? सुज्ञ जनो! क्या आपको जैन मतकी पूर्व व्यवस्थाको अनुप्रेक्षण करके दुःख नहीं होता है? हा. शोक! सब मार्गोसे जिन मार्ग परम सुन्दर है. किन्तु स्वः द्वेषके ही प्रभावसे आज दिन बहोतसे लोक ऐसे कहते है वा कहने लग गये हैं कि, यह जैन मत नास्तिक मत है वा अशुचिका मार्ग है. हे भद्रो! इत्यादि शब्द बहुतसे लोक क्यों भाषण करते है? केवल स्वःद्वेषका ही यह प्रभाव है. किन्तु जैन मत नाहि नास्तिक मत है क्यों कि

नास्तिक वह होता है जो पुन्य, पाप, नरक, स्वर्ग, जीव, इश्वरादि-को न माने. जैन मत तो उक्त कथनको सविस्तरतासे मानता है. तो फिर यह क्यों कर नास्तिक है ? अर्थात् यह जैन मत नास्तिक मत नही है. देखीये, विवाह प्रज्ञप्त्यादि सूत्र नाही यह जैन मार्ग अशुचिका मार्ग है. देखीये, विवाह प्रज्ञप्ति सूत्र, आवश्यक सूत्र, नशीथ सूत्र, ठाणांग सूत्र इत्यादि सूत्रोंमें शुचिका सविस्तर स्वरूप है. उदाहरण मात्र नशीथ सूत्रमें लिखा है कि, यदि महात्मा शुचि पुरीषादिकी न करे तो लघु मासादि प्रायश्चित तिस महात्माको आता है.

यदि श्री संघमें तीन ही शाखें परस्पर प्रेम भावको प्रादुरभूद् करें पुनः विद्याकी उन्नति करें तो क्या फिर यह जैन मार्ग उन्नति भावको प्राप्त न होवेगा ? अवश्यमेव ही होवेगा.

प्रिय मित्रो ! यह समय परस्पर द्वेषका नहि है. वैरका नही है, निंदाका नही है, दोषारोपनका नही है, पैशुनताका नही है; किन्तु यह समय तो शान्तिभावका है, प्रेमभावका है, परस्पर अविरोधी भावका है, सो हमको योग्य है. प्रेमभाव साथ वर्तना, फिर जीन वाणीका प्रचार करना, यह मेरी आशा है कि तीनही शाखोंमें वा प्रत्येक २ शाखमें श्री जीनेंन्द्र देवजीके प्रभावसे परस्पर द्वेष होना नष्ट होवे, प्रेमभाव प्रगट होवे, जिसके प्रतापसे जिन मतमें फिर विद्याकी उन्नती होवे.

अथ विद्या विषय.

यावत् काल विद्याका उदय नही होता तावत् काल धर्मका भी उदय नही हो सकता. क्यों कि धर्मका मूल अहिंसा है, औ दयाका कारण ज्ञान है. दशवैकालिक सूत्रमें लिखा है कि प्रथम ज्ञान, तत्प-

श्चात् दया होती है. सो ज्ञान प्रायः विद्यासे ही आता है. इसी लिये सूत्र ठाणांगजीके तृतीये स्थानमें लिखा है कि, भगवत्का तीन प्रकारसे धर्म है. जैसे के, सुअधीत्य १, सुध्यान २, सुतप ३. उक्त सूत्रमें भी भगवानका धर्मसु पठन पाठनादिमें ही लिखा है. तथा ठाणांगजी सूत्रमें यह भी कथन है कि तीन स्थानकोंसे महात्मा महा कर्मोंकी निर्जरा करता है. जिसका प्रथम स्थानक यह है कि, कबमें अल्प वा बहुत्व श्रुत अध्ययन करूंगा ? भद्र पुरुषो देवते भी पश्चात्ताप करते हैं. क्यों कि तृतीयांगमें लिखा है कि देवता ऐसे विमंसा करता है कि, अहो ! आश्चर्य है, मैं बलवान था, पुनः विद्यमान था, मेरा परिपकार परिकर्मभी मुझे क्षेमता से भिक्षा मिलतीथी, मेरे आचार्य उपाध्याय भी विद्यमान थे, शरीर निरोग था, शोक है ! फिर भी मैं बहुत श्रुत तो पठन न किया--सो जब देवते भी पश्चात्ताप करते है तो अविद्वान मनुष्योंका तो क्या ही कहना है. क्यों कि सूत्र उत्तराध्ययनजीके १७ वें अध्यायमें ऐसे कथन किया है कि यदि कोई दिक्षित (साधु) होकर निंद्राका ही प्रेमी हो जाय वा भोजन पाणी पीकर शयन ही करता रहे तिसको पापी श्रमण कहा है. क्योंकि दशवैकालिक सूत्रमें लिखा है कि, अन्न--१, पाणी --२, खाद्यम--३, स्वाद्यम--४. यह चार ही प्रकारका आहारको लाकर तथा स्वःधर्मीओंको आमंत्रण करके फिर तिनके साथ आहारादि करके स्वाध्यायमें रक्त होवे तिसका नाम भिक्षु है. श्री श्रमण भगवन महावीर देव स्वामि अंग सूत्रोंमें ऐसे भाषण करते हैं कि, हे आर्यो ! विद्या चारित्रसे ही मोक्ष होती है, नतु अन्य कारणोसे. ठाणांगजी सूत्रमें यह कथन है कि विद्या चारित्रसे ही जीव संसारसे पार होते हैं न तु अन्य पदार्थोंसे. यावत् काल जैन मतमें विद्याकी उन्नति नही होवेगी तावत् काल जैन मत भी उदय भावको

प्राप्त नही होवेगा. देखीये प्रश्नव्याकरण सूत्र वा अनुयोगद्वारजी सूत्रमें द्वादश प्रकारे भाषा कथन करी है. जैसे कि, प्राकृत–१, संस्कृत–२, मागधी–३, शौर सैनी–४, पिशाची–५, अपभ्रंश–६, गद्य पद्य षोडश वचन संधि पद हेतु उणादि क्रिया विधान वर्णस्वर विभक्ति तथा अनुयोगद्वारजी सूत्रमें भाव प्रमानके चार भेद कहे हैं. जैसे कि, समान--१, तद्धित--२, धातु--३, निरुक्ति--४, अथवा अष्ट विभक्तिये स्वौजसादि सुपप्रत्यय तथा संस्कृत प्राकृत यह होवे भाषास्वर मंडलमें गान करी है तथा यह दोवें भाषा ऋषि भाषित होनेसे प्रशस्त है? यावत् अन्य भी सूत्रोंके बहुतसे प्रमान है. उत्तराध्ययनादिके किन्तु सारांश यह है, विद्या अवश्यमेव ही पठन करनी योग्य है. क्योंकि सूत्र जंबु द्वीप प्रज्ञप्तिमें लिखा है कि, ७२ कला पुरुषोंकी, ६४ कला स्त्रीओंकी, १०० प्रकारका शिल्प कर्म ३ यह प्रजाके हितके वास्ते श्री ऋषभदेव भगवान कथन करके फिर दिक्षित हो गये.

सूत्रोंमें गृहस्थ लोगोके भी षोडश ही संस्कार सिद्ध होते हैं. जैसे कि, गर्भाधान--१, पुंसवन--२, जन्म--३, चन्द्र सूर्य दर्शन--४, क्षीराशन--५, षष्ठी जागरण--६, शुचिकर्म--७, नामकरण--८, अन्न प्राशन--९, कर्णवेध--१०, चूडा कर्म (केश छेदन)--११, उपनयन जिनोपवीत--१२, विद्यारंभ--१३, विवाह--१४, व्रतारोप--१५, अप-श्चिम मारणंतिक अंतकर्म--१६, इन संस्कारोंका उपपात्तिक सूत्र, राज प्रश्नेनी सूत्र, आचारांग सूत्र, ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र, विवाह प्रज्ञप्ति सूत्र, अंतकृत सूत्र, जंबुद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र. इत्यादि सूत्रोंमें सोलाही संस्कारोंका सुंदर स्वरुप वर्णन किया गया है.

उपनयन संस्कारके पश्चात् विद्यारंभ संस्कार होता है. जैसे देखीये, सूत्र ज्ञाता धर्म कथांगका प्रथमाध्याय मेघकुमारजीका

अधिकार जैसे कि, जब मेघकुमार अष्ट वर्षसे अधिक हो गया तब माता पिताने अर्थात् राजा श्रेणिक व धारणी राणीने जब मेघ-कुमारको साधिक अष्ट वर्षसे अवलोकन किया तो शोभन तिथ करण दिवस नक्षत्र मुहुर्तको देखकर मेघकुमारको स्नान कराके फिर सर्वालं-कार करके महत ऋद्धि युक्त कलाचार्यको अर्पण कर दिया अर्थात् यह राजा परम जैनी था. भगवन्त वर्द्धमान स्वामिका उपासक था तिसने विद्यार्थे स्वःपुत्रको अध्यापककी शालामें कुमरको विद्यार्थे समर्पण कर दिया फिर तिस अध्यापकने मेघकुमारको सूत्र करके, अर्थ करके, चित्र करकरके ७२ कलायें सिखलाइ. ७२ कलायके यह नाम हैः-जैसे कि, लेखक कला-१, गणित कला-२, रुप परावर्तन कला शब्द सर्वत्र जानना कलाका अर्थ विधियुक्त विद्याका सिखना है-३, नृत्य-४, गीत-५, वाद्यंत्र-६, स्वरगत-७, पुष्कर गत-८, समताल-९, द्युत-१०, जनवाद-११, पाशक-१२, अष्टापद-१३ पोर काव्य-१४, दग मृतिका—१५, अन्न विधि—१६, पाणि विधि—१७, वस्त्र विधि—१८, विलेपन विधि-१९, शयन विधि-२०, संस्कृत भाषा—२१, मागधि भाषा—२२, गाथा—२३, मागधि भाषा जीत—२४, श्लोक-२५, हिरण युक्ति-२६, सुवर्ण युक्ति—२७, सुगंध युक्ति—२८, चूर्ण युक्ति-२९, आभरण विधि-३०, तरुणि मति कर्म—३१, स्त्री लक्षण—३२, पुरुष लक्षण-३३, हय लक्षण-३४, गज लक्षण--३५, वृषभ लक्षण--३६, कुर्कुट लक्षण--३७, छत्र लक्षण--३८, चक्र लक्षण--३९, दंड लक्षण-४०, खड्ग लक्षण--४१, मणि लक्षण--४२, कागणि लक्षण-४३, वस्तु विद्या-४४, नगर मान--४५, स्कंधवार मान--४६, चारं--४७ प्रति चारं--४८, व्युहप्रति व्युहम्--४९, चक्र व्युह--५०, गरुड व्युह--५१, शकट व्युह--५२, युद्ध--५३, अति युद्ध--५४, असि

युद्ध--५५, मुष्टि युद्ध--५६, बाहु युद्ध--५७, लता युद्ध--५८, इशस्त्र--५९, क्षुर प्रपात--६०, धनुर्वेद--६१, हिरण पाक--६२, सुवर्ण पाक--६३, मणि पाक--६४, धातु पाक--६५, सूत्र खेड--६६, वृत खेद--६७, नालिका छेद--६८, पत्र छेद्य--६९, कडग छेद-७०, सजीवनिर्जीव करना--७१, शकुन रुत--७२.

तत्पश्चात् कलाचार्यने मेघकुमारको ७२ कला, उक्त विधि युक्त सिखलाकर राजा श्रेणीक व धारणि माताको समर्पण कर दिया. फिर राजाने तिस कलाचार्यको सत्कार युक्त प्रीतिदान दे के विसर्जन किया फिर मेघकुमार अष्टा दश विदेशी भाषाका भी विशारद हो गया, जो निम्न लिखित नाम हैः--

खुष्ट चिलात वामण वडभि वरवर व कुश जोणिक प्रश्नविक इषणिय चारु लासा लउसिए द्रविड सिंहलद्वीप आरब्ब पुलिंद पक्काणिय मरोंड शवरी पारस इत्यादि विदेशी भाषाका भी पूर्ण विद्वान हो गया.

फिर मेघकुमारका विवाह संस्कार हुवा, फिर दिक्षा संस्कार हुवा, यह प्रसंगसे अत्र लिखा गया है. उक्त संस्कारोंका सूत्रमें अति विस्तार है. प्रिय मित्रो ! यह अध्ययन विधि सूत्रमें वर्णित है. तण्डुल वंतालिक नामक ग्रंथमें लिखा है कि, विंशति वर्ष प्रमान विद्या अध्ययन करे किसि २ ग्रंथमें २५ वर्ष भी लिखे हैं. सूत्रोंमें ६४ कलांय स्त्रीओंकी भी वर्णित है वह भी अध्ययनादि है. फिर देखीये, जिन मार्गकी पुर्व क्या व्यवस्थाथी, अब क्या हो गइ है !

पूर्व कालमें प्रायः आर्यावर्तमें श्री जिनेन्द्र देवजीके शब्दका नाद होता था, सहस्रों मुनि नूतन २ पुस्तक रचते थे, देशमें संप

थां, वर्तमानकालमें प्रायः प्रथम तो जैन मत है ही स्वल्प, पुनः परस्पर द्वेष भाव बहुत है, क्रिया भेद बहुत है. हा ! क्या कष्टका समय है ! हे वर्तमान समय ! यदि तू जैन मतकी पूर्ण प्रकारसे उन्नति नही कर सकता है तो क्यों तू फिर स्थिन हो रहा है ?

जैन मतके लिये तो पूर्ववत् समय चाहिये जिस करके पूर्व-वत् जैन धर्मका उदय होवे. सो उदयके वेल विद्यासे ही होता है. इस लिये विद्या धर्मकी उन्नति के लिये अवश्य ही पठन करनी चाहीये. विद्याका सार आचार शुद्धि है. इस वास्ते आचार शुद्धि अवश्यही करनी चाहिये.

अथ आचार शुद्धि विषय.

यावत् काल आचारकी शुद्धि नही होती तावत् काल आत्मा विशुद्धि के मार्गसे पराङ्मुख ही रहता है. क्यों कि सदाचारी पुरुष ही धर्मके योग्य होता है, सदाचारी पुरुष ही विद्याके योग्य होता है, सदाचारी ही पुरुष देशका हितैषी होता है, सदाचारी ही पुरुष परोपकार करता है, सदाचारी ही पुरुष मोक्षमें जाता है, सदा-चारी ही पुरुष धर्मका महीमाकारक होता है. सदाचारके यह लक्षण है. सदाचारी पुरुष सब व्यसन त्याग देता है. जैसे कि, द्युत, मांस, सुरा, वेश्या खेटक कर्म चौर्य परस्त्रीसंगादि. सदाचारी पुरुष अन्यायसे व्यापार नहि करता है, नाहि अन्याय करता है. उत्कोटिक (रिश्वत) भी नही खाता है तथा हिंसक नरोंके साथ व्यापार भी नही करता है. सदाचारीपुरुष सत्य ब्रह्मचर्यको सदा ही पालता है. आत्माको सदा ही ज्ञानसे वह पुरुष शुद्ध करता रहता है.

प्रिय मित्रो ! आचार विशुद्धि अवश्यमेव करनी योग्य है सो

आचार विशुद्धि केवल विद्यासे ही होती है. तिस वास्ते विद्या अवश्यमेव ही पठन करनी योग्य है. देखीये, भगवति सूत्रमें क्या ही सुन्दर स्वरुप लिखा है ? जैसे कि, जो श्रुतसंपन्न जीव है कीन्तु शील (क्रिया) संपन्न नहि है वह जीव सर्वाराधिक देश विराधिक है ! श्रेणिक राजाको ही देखीये, चतुर्थ गुणस्थानमें ही तीर्थकर गोत्र कर्मको बांधा है. जो जीव श्रुत शील संपन्न है वह सर्वाराधिक ही है. देखीये, जैन श्रुतकी विदेशी विद्वान कैसी महमा लिखते है ? (देखो, अंग्रेजी भाषांतर आचारांग सूत्र, उपाशक दशांग सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, कृतांग सूत्र, कल्प सूत्र, इत्यादि सूत्रोंमें युरोपियन विद्वानोंने जैन श्रुत (तत्व) को परम श्रेष्ट बतलाया है जो अवश्य ही पठन करने योग्य है.) मैं आकांक्षा करतां हुं कि श्री जिनेन्द्र देवजीके प्रभावसे श्री संघमें विद्या वा आचार शुद्धि शीघ्र ही प्रादूरभूद् होवे. जिसके प्रभावसे सर्वाराधिक होकर शिघ्र ही मुक्ति उपलब्ध होवे. जैन मतकी वृद्धि करनेहारे पुरुष व श्री जिनेन्द्र देव के कहे हुए तत्त्वोंको दिखलानेवाले पुरुष सदा ही ज्ञाता धर्म कथांग सूत्रका द्वादशमाध्याय सुबुद्धि प्रधान, जितशत्रु राजाका अधिकार विचारा करते है. क्यों कि धर्मोन्नति करनेहारा जीव शीघ्र ही मोक्षमें गमन करता है.

॥ इति शुभम् ॥

भट्टारक चर्चा.

हें पुस्तक

हिराचंद नेमचंद दोशी

यांनीं

सोलापूर येथें
मनू गोविंद कानडे यांच्या
सच्चिदानंद छापखान्यांत छापवून सोलापूर येथें
घर नंबर २४६० येथें प्रसिद्ध केलें.

सन १९१७

किंमत दोन आणे.

श्री महावीर तीर्थंकराच्या दहा आज्ञा.

सूत्र- सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः ॥

१ सर्वज्ञ वीतराग प्रभूवर निर्ग्रंथ गुरुवर आणि जिनवाणीवर विश्वास ठेव. (सम्यग्दर्शन.)

२ सर्वज्ञ प्रभूंनीं उपदेशिलेल्या ज्ञानाचा अभ्यासकर [सम्यग्ज्ञान.]

३ हिंसा करूं नको
४ लबाड बोलूं नको
५ चोरी करूं नको
६ व्यभिचार करूं नको
७ कर्ज बाजारी होऊं नको
[परिग्रहाचें प्रमाण कर]
८ जुवा खेळूं नको
९ मांस भक्षण करूं नको
१० दारू पिऊं नको

सम्यक् चारित्र

हिंसासत्यस्तेयादब्रह्मपरिग्रहाच्च बादरभेदात्
द्यूतान्मांसान्मद्याद्विरतिर्गृहिणोऽष्ट सन्त्यमी
मूलगुणाः ॥ महापुराण

अनिष्ट मतांचा प्रतिकार.

(लेखक, अनंततनय-)

कोणत्याहि समाजांत धर्म-शास्त्राविरुद्ध आणि नीतीविरुद्ध एखादि गोष्ट प्रचारांत येऊं लागली तर तिचा समंजस माणसांनीं शक्य तितका प्रतिकार करणें हें त्यांचें कर्तव्य आहे. अलिकडे कुंभोज, किणी वगैरे जैन-वस्तीच्या गावांत तेरापंथी लोकांच्या मतांचा बराच सुळसुळाट झालेला दिसत आहे. आज त्यांच्या मतांपैकीं, अलिकडच्या जैन-स्वामीबद्दल त्यांचें काय मत आहे, आणि ते शास्त्रोक्त दृष्टीनें कितपत ग्राह्य आहे, यांचा विचार करून त्यांच्या मताला वेळींच आळा घालणें किती अवश्य आहे, हें पुढील विवेचनावरून वाचकांना कळून येईल.

अलिकडचे स्वामी लोक शास्त्रोक्त दृष्टीनें स्वामी झालेले नसतात, उदरभरणाकरितां स्वामी होऊन लोकांना फसवीत हिंडतात, शास्त्रांत मुनींचे जे गुण वर्णिले आहेत त्यांपैकीं एकहि गुण त्यांच्या अंगीं नसतो; तेव्हां या स्वामी लोकांच्या पायां पडूं नये, त्यांचा आदर करूं नये, आणि त्यांना आहारदान देऊं नये, असें त्यालोकांचें मत आहे.

सृष्टिनियमाप्रमाणें जगांतील प्रत्येक वस्तूचें रूपांतर होत चाललें आहे. अशी एकहि वस्तु जगांत नाहीं कीं, ती जशीच्या तशीच आहे. या नियमाप्रमाणें अवसर्पिणी कालानुसार या पंचम कालांत अलिकडच्या स्वामी लोकांत शास्त्रोक्त गुण नाहींत, म्हणून खेद मानण्याचें कारण नाहीं. वर सांगितलेल्या तेरापंथी लोकांनीं प्रथम आपल्या संबंधीं व आपल्या बरोबर असणाऱ्या पुष्कळ जैन लोकासंबंधीं कधीं विचार केला आहे काय? आम्ही गृहस्थ, आमच्या गृहस्थांचीं काय कर्तव्यें आहेत त्याला अनुसरून आपण वागतों कीं नाहीं वगैरे संबंधीं कधी विचार केला आहे काय? तसा विचार केला नसेल तर ते लोक आपल्याला श्रावक किंवा गृहस्थ म्हणवून घ्यावयाला सुद्धां पात्र नाहींत, असें त्यांनीं समजावें. सागार धर्मामृतांत श्रावकधर्म चालविण्यांस कोण पात्र असतो याबद्दल विचार केला आहे.

न्यायोपात्तधनो यजन् गुणगुरून् सद्गीस्त्रिवर्गं भजन् । अन्योन्यानुगुण स्तदर्हगृहिणी स्थानालयो ह्रीमयः॥युक्ताहारविहार आर्यसमिति प्राज्ञः कृतज्ञो वशी । शृण्वन् धर्मविधिं दयालु रघभीः सागारधर्मं चरेत् ॥ ११ ॥

१ न्यायानें द्रव्य मिळविणारा, २ सद्गुण व गुरु यांची पूजा करणारा, ३ सत्य व मधुर भाषण करणारा, ४ धर्म, अर्थ, व काम या तीन पुरुषार्थांस परस्पर विरोध न आणतां सेवन करणारा, ५ वरील पुरुषार्थ साधण्यास योग्य अशा नगरांत किंवा गावांत व तेथेंहि चांगल्या घरांत कुलवधु सह वास करणारा, ६ मर्यादेनें वागणारा, ७ योग्य आहार विहार करणारा, ८ सज्जनांचीं संगत करणारा, ९ विचारवान्, १० केलेले उपकार जाणणारा, ११ अंतरंग सहा शत्रु त्यांना स्वाधीन ठेवणारा, १२ धर्मविधी ऐकणारा, १३ दयाळु, १४ पापभिरु असा जो मनुष्य तो श्रावक धर्म चालविण्यांस योग्य होय.

या नियमाला अनुसरून आपल्या महाराष्ट्रांतील जैनांत श्रावक धर्म चालविणारे फार थोडे निघतील. आपला जैन-समाज इतका अंध आहे कीं त्याला आपल्या पायाखालीं काय जळत आहे हें देखील समजत नाहीं. आमच्या जैनांत वर सांगितलेलें श्रावकांचे सदगुण अलिकडच्या बहुतेक जैन लोकांत मिळणार नाहींत, आणि असा कोणी हल्लीं सद्गुणी श्रावक नाहीं. म्हणून त्यांचा आदर करूं नये, त्यांच्याशी बोलूं नये, त्यांचा विचार पूस करूं नये, असें कोणी म्हणेल तर त्यांचें म्हणणें जितकें हास्यास्पद होईल, तितकेंच वर सांगितलेल्या लोकांचें स्वामीबद्दल जें म्हणणें आहे, तें हास्यास्पद होईल.

श्रीआशाधर आपल्या ग्रंथांत अलिकडच्या मुनीचा सत्कार, आदर वगैरे करण्याबद्दल सांगतात:—

विन्यस्यैदं युगीनेषु प्रतिमासु जिनानिव ॥ भक्त्या पूर्वमुनीनर्चेत्कुतः श्रेयो ऽतिचर्चिनाम्.

(सागार धर्मामृत.)

अर्थः—आपण जशी रत्न पाषाणादिकांची मुर्ति करून तिला वृषभ, अजित वगैरे नांव देऊन तिची स्थापना करून पूजा करतो, त्याचप्रमाणें या पंचमकालांतल्या मुनीच्याठायीं पुर्वकालाच्या मुनींची कल्पना करून भक्तीनें त्यांचा यथायोग्य सत्कार करावा. कारण फार चौकशी करणारांस सुख कोठून मिळणार?

स्वामीला मानणें किंवा न मानणें दगडांत देव आहे. असें मानणें किंवा न मानणें, तसबीर, फोटो, किंवा पुतळा यांच्या ठिकाणीं ते अमुक आहेत. ,, जसा भाव तसा देव ,, किंवा आशाधराच्या मताप्रमाणें:—

भावो हि पुण्याय मतः शुभः पापाय चाशुभः।

(सागार धर्मामृत)

प्रत्येकाच्या मनाचा परिणाम जसा असेल तसें त्याला फळ मिळणार. हें खास ठरलेलें आहे. जितके शुभ परिणाम ठेवावे तितके ते पुण्याश्रवाला कारणीभूत होतात. ह्मणून पिल्यानपिल्या धर्मसंस्कार विहीन अशा, व्यवहार आणि निश्चय मार्ग न समजणाऱ्या वरसांगितलेल्या शिष्ट विशिष्ट असमंजस लोकांनीं स्वामींना फुकट दोष देत फिरूं नये. आणि त्याच्याबद्दल आपले व लोकांचे अशुभ परिणाम बनतील असा व्यवसाय त्यांनीं केव्हांहि करूं नये.

स्वामी लोकांबद्दल गृस्थांनीं आदर बाळगावा, त्यांचा यथायोग्य सत्कार करून त्यांची पूजा करावी, याबद्दल दुसरे ग्रंथकार काय सांगतात हें पाहूं या.

सोमदेव सूरीनीं एके ठिकाणीं ह्मटलें आहे कीं,

भक्ति मावप्रदाने तु का परीक्षा तपस्विनाम्। ते सन्तः सन्त्वसंतो वा शूद्रो दानेन शुध्यति ॥ १ ॥ ते नाम स्थापना द्रव्य भाव न्यासैश्चतुर्विधाः। भवन्ति मुनयः सर्वे दानमानादि कर्मसु ॥ २ ॥ काले कलौ चले चित्ते देहे

चामादिकीटके। एतच्चित्रं यद्यापि जिनरूपधरा नराः ॥ ३ ॥ यथा पूज्यं जिनेंद्राणां रूपं लेपादि निर्मितम्। तथा पूर्वमूनिच्छायाः पूज्याः संप्रति संयताः ॥४॥

१ श्लोकार्थ-भक्तीनें जर दान द्यावयाचें आहे तर तपस्व्यांची परीक्षा काय करावयाची ? ते तपस्वी चांगले असोत कीं वाईट असोत तिकडे आपण लक्ष देऊं नये. कारण भक्तिपूर्वक दान देऊन शुद्रहि शुद्ध होतो.

२ श्लोकार्थ-ते मुनि नाम, स्थापना, द्रव्य व भाव अशा भेदांनीं चार प्रकारचे असतात, ते सगळेहि दानमान वगैरे क्रियेस पात्र होत.

३ श्लोकार्थ-हा कलिकाल आहे. तेव्हां चित्त हें चंचल असतें. आणि हा देह ह्मणजे अन्न खाऊन जगणारा एक प्रकारचा किडा आहे. अशा स्थितींतहि जिनरूप धारण करणारे पुरुष दृष्टीस पडतात हेंच आश्चर्य.

४ श्लोकार्थ-ज्याप्रमाणें आपण जिनाचे चित्र वगैरे करून त्याची पूजा करतो; त्याचप्रमाणें हल्लींचें तपस्वी आहेत. ते पुर्वकाल मुनींचें प्रतिरूप होत; असें जाणून त्यांची पूजा करावी.

स्वामीची पूजा किंवा आदर किंवा मान सन्मान गृहस्थांनीं केला पाहिजे; आणि तसें करण्याबद्दल आपलें शास्त्र काय सांगतें, हेंहि वर सांगितलें आहे. गृहस्थांना अर्थात् श्रावकांना जो जो लौकिक विधि सांगितला आहे, तो तो त्यांनीं अवश्य केला पाहिजे. उदारणार्थ-संध्या यज्ञोपवीत, अष्टविधार्चन, गुरूपासना. संयम, दान, शासनदेवतापूजा वगैरे विधि करण्यास कोणाचीच हरकत नाहीं. कारण असें म्हटलें आहे कीं,

सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः। यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रत दूषणम् ॥

अर्थ-जेथें सम्यक्त्वाची हानि होणार नाहीं, आणि व्रताला दूषण येणार नाहीं. असा कोणताहि लौकिक विधि गृहस्थांनीं करावा.

समंतभद्राचार्य-आपल्या रत्नकरंडकांत सांगतात कीं, आपल्या समानधर्मी जे लोक आहेत, जे धर्म बंधू आहेत, त्यांच्याशीं देखील

निष्कपट बुद्धीनें वागून त्यांचा आदर ठेवावा; ह्मणजे सम्यक्त्वाचें एक वात्सल्यांग प्राप्त होतें. असें जर त्यांचे सांगणें आहे तर, प्रत्यक्ष पिंछि कमंडलू धारण करून अंगावर भगवीं वस्त्रें धारण करून एकवेळ जेवणारे, आणि दुसरा कोणताहि व्यवसाय ज्यांना नाहीं, अशा स्वामींचा आदर करूं नये, त्यांच्या पाया पडूं नये, आणि त्यांना आहारदान देऊं नये, असें ह्मणणें, न्यायाचे कीं अन्यायाचे धर्माचें कीं अधर्माचें, सभ्यपणाचे कीं दांडगेपणाचें, सम्यक्त्वाचें कीं, मिथ्यात्वाचें याचा विचार वाचकांनींच करावा. कसलाहि जैन मनुष्य असला तरी त्याच्याबद्दल वात्सल्य भाव जेथें आचार्य ठेवायला सांगतात, येथें स्वामी लोकांचा तिरस्कार करा, त्यांचा आदर करूं नका, त्यांच्या पाया पडूं नका, असें कोणतेहि आचार्य अगर विद्वान सांगणार नाहींत. तेव्हां वर निर्दिष्ट केलेले महाशिष्ट लोक कोणत्या आधारें स्वामी लोकांबद्दल इतका तिरस्कार दाखवितात हें सप्रमाण दाखवितील काय? कां उगीचच आपण एक निराळ्याच पंथाचे शेंपूट तुटकें झालों ह्मणून दुसऱ्या अज्ञान गरीब लोकांनाहि फसवीत सुटावयाचें, दोन चार धार्मिक गोष्टी समजल्याबरोबर सम्यक्त्वाचें आणि धर्माचें पांघरूण घेऊन अज्ञान लोकांपुढें वरळत सुटणाऱ्या मनुष्यांनाः—

व्याघ्रचर्मप्रतिच्छन्नो वाकृते रासभो हतः

या उक्तीला अनुसरून एखादे दिवशीं रासभाप्रमाणें प्रायश्चित मिळावयाचें.

वाचकहो! आपल्यापुढें स्वामींच्याबद्दल पुर्वाचार्यांचे किती पुज्य उद्गार आहेत, आणि आलिकडच्या लोकांचे किती निंद्य उद्गार आहेत हें मांडलें आहे यांचा आपण विचार करून वर दाखविलेले गांवगुंड लोकांच्या मतापासून सावध व्हां. आणि वेळींच त्यांच्या मतांचा शक्य तितका प्रतिकार करा. असें आमचें विनयपूर्वक सांगणें आहे.

प्रगति आणि जिनविजय ता. ९।१।१७

भट्टारकांच्या पुस्तकांत शिथिलाचार.

जैनहितैषी आगष्ट सन १९१७ चा अंक ८ मधील विविध प्रसंग या मथाळ्याखालीं नंबर २ चा " भट्टारकोंके साहित्यमे शिथिलाचार " असा एक हिंदी लेख आहे. त्याचें भाषांतर आम्ही येथें देतों.

" पंडिताच्या मुखानें नेहमीं असें ऐकण्यात येतें कीं, भट्टारक हे स्वतः खुशाल शिथिल झालेले असोत, परंतु त्यांनीं जितके ग्रंथ व टीका वगैरे केल्या आहेत त्यांत त्यांनी मूळ दिगंबर संप्रदायाला विरुद्ध जाईल अशी कोणतीहि गोष्ट लिहिलेली नाहीं. त्यांनीं कोणतेंही उत्सूत्र वर्णन केलें नाहीं. पूर्वी आमचीहि अशीच समजूत होती. परंतु आतां भट्टारकांच्या ग्रंथाचा अधिक अधिक परिचय झाल्यामुळें असा निश्चय होऊं लागला आहे कीं, ह्या ह्मणण्यांत कांहीं अर्थ नाहीं. भट्टारकांनीं अवश्य गोळमाळ केला आहे, आणि आपल्या चारित्राला कोणत्या न कोणत्या तरी रितीनें चांगलें दाखविण्याचा प्रयत्न केला आहे. त्यांनीं असे जें केलें आहे. त्यांत कांहीं नवल नाहीं. नवल तर तेव्हां वाटलें असतें कीं, त्यांनीं आपल्या शिथिल चारित्राला शिथिल ह्मटलें असतें. इतकें खरें आहे कीं, त्यांनीं जें शिथिलाचाराचें पोषण केलें आहे तें जितकें कोणत्या तरी रितीनें ओढून ताणून सिद्ध करतां येईल तितकेंच केलें आहे. व जितक्या अंशानें केलें नाहीं तें त्यांना पसंद नव्हतें ह्मणून केलें नाहीं. कारण दिगंबर संप्रदायाच्या परंपरागत प्रचालित विचारांमध्यें ह्यापेक्षां अधिक शिथिलतेचा प्रवेश होणें शक्य नव्हता. तेथें ह्यापेक्षां अधिक जागा नव्हती.

भद्रबाहूसंहितेच्या परीक्षेच्या तिसऱ्या लेखांत (अंक १, पृष्ठ ६९–७०) वाचकांच्या वाचण्यांत आलें असेल कीं, संहितेच्या कर्त्यानें पंचम कालांत दिगंबर मुनींचा निषेध केला आहे. ह्मटलें आहे.–

भरहे दूसम समये संघक्रमं मेल्हिऊण जोमूढो ।
परिवट्टइ दिगविरओ सो सवणो संघबाहिरओ ॥ ५ ॥

संस्कृत भरते दुःखम समये पचमकाले संघक्रमं मेलयित्वा यो मूढः परिवर्तते परिभ्रमति चतुर्दिक्षु विरतः विरक्तः सन् दिगंबरः सन् स्वेच्छया भ्रमति स श्रमणः संघबाह्यः ।

पासत्थोणं सेवी पासत्थो पंचचेल परिहीणो ।

विवरीय हृपवादी अवंदणिजा जई होई ॥ १४ ॥

अर्थ-ह्या पंचम काळांत जो कोणी मुनि दिगंबर होऊन श्रमण करील तो मूर्ख आहे. त्याला संघाच्या बाहेर समजावा. तो यति वंदना करण्यास योग्य नाहीं. जो पांच प्रकारच्या वस्त्रानें रहित आहे ह्मणजे जो कापूस, ऊन, रेशम, साल, ताग इत्यादिंची वस्त्रें नेसत नाहीं तो दिगंबर मुनि असला तरी पूज्य नाहीं." ह्या संहितेचे लेखक एक वस्त्रधारी भट्टारक होते आणि ते आपल्या वस्त्रयुक्त मार्गाला श्रेष्ट सिद्ध करूं इच्छित होते हें सांगण्याची आवश्यकता नाहीं.

आज आह्मी आमच्या वाचकांना आणखी एक भट्टारक महाराजाचें वाक्य ऐकवितो. ज्यामध्यें ह्या शिथिलाचाराचें उघड शब्दानें प्रतिपादन केलें आहे.

तत्वार्थसूत्राची श्रुतसागरी टीका, यशस्तिलक चंपू टीका, सहस्रनामटीका, वगैरे अनेक ग्रंथाचे कर्ते श्रुतसागरसूरि विक्रमाच्या सोळाव्या शतकांत झाले आहेत. ते विद्यानंद भट्टारकाचे शिष्य होते. त्यांनीं आपल्या नांवाच्या पुढें उभयभाषाकविचक्रवर्ती, कलिकालसर्वज्ञ, वगैरे अशा मोठमोठ्या पदव्या लाऊन ठेवल्या आहेत. ह्यावरून ते प्रसिद्ध विद्वान होते असें वाटतें. भगवत्कुंदकुंदाचार्यांच्या षट्पाहुड ग्रंथावर ही त्यांनीं एक संस्कृत टीका लिहिली आहे ह्या टीकेच्या विषयावर आह्मी एक स्वतंत्र लेख लिहूं इच्छितों. त्यावरून वाचकांला कळून येईल कीं, ही टीका कशी आहे. येथें त्यांतील फक्त दर्शन पाहुडाच्या चोविसाव्या गाथेची टीका आह्मी देतों. मूळ गाथा अशी आहे.

सहजुप्पण्णं रूवं दिट्ठं जो मण्णएण मच्छरिओ ।

सो संजमपडिवण्णो मिच्छाइट्ठी हवइ एसो ॥ २४ ॥

ह्याचा सरळ साधा अर्थ असा आहे– जो सहजोत्पन्न रूप ह्मणजे दिगंबर स्वरूपाला पाहून मत्सर भावानें मानीत नाहीं, दिगंबर मुनीची अवहेलना करतो तो संयमी असला तरी देखील मिथ्यादृष्टीच होय.

आतां ह्या गाथेची श्रुतसागरी टीका पहा.—

"सहजुप्पण्णं रूवं सहजोत्पन्नं स्वभावोत्पन्नं रूपं नग्न रूपं । दिट्टं दृष्ट्वा विलोक्य । जो मण्णए ण मच्छरिओ, य. पुमान न मन्यते, नग्नत्वे अरुचिं करोति, नग्नत्वे किं प्रयोजनं पशवः किं नग्ना न भवंति, इति ब्रूते, मत्सरतः परेषां शुभ कर्मणि द्वेषी । सो संयमपडिवण्णो स पुमान् संयमप्रतिपन्नः दीक्षां प्राप्तोऽपि मिच्छाइट्ठी हवइ एसो, मिथ्यादृष्टिर्भवत्येषः । अपवादवेषं धरन्नपि मिथ्यादृष्टिः ज्ञातव्यः इत्यर्थः। कोऽपवादवेषः, कलौ किल म्लेच्छादयो नग्नं दृष्ट्वा उपद्रवं यतीनां कुर्वंति, तेन मंडपदुर्गे श्रीवसंतकीर्तिना स्वामिना चर्यादि वेळायां तट्टी सादरादिकेन शरीरमाछाद्य चर्यादिकं कृत्वा पुनस्तन्मुंचति इत्युपदेशः कृतः संयमिनां इत्यपवाद वेषः । तथा नृपादिवर्गोत्पन्नः परमवैराग्यवान् लिंगशुद्धि रहित उत्पन्नमेहनपुटदोषः लज्जावान् वा शीताद्यसहिष्णुर्वा तथा करोति सोप्यपवादलिंगः प्रोच्यते । उत्सर्गवेषस्तु नग्न एवेति ज्ञातव्यं । सामान्योक्ति विधिरुत्सर्गः विशेषोक्ति विधिरपवाद इति पर भाषणात् । "

अर्थात् स्वभावोत्पन्न नग्न रूपाला पाहून जो पुरूष त्याला मत्सरभावानें मानीत नाहीं, नग्नपणांत अरुचि करतो, ह्मणतो नग्नपणांत काय आहे ? पशू नग्न असत नाहींत काय ? (इतराच्या शुभ कर्मांशी द्वेष करण्याला मत्सर ह्मणतात.) तो संयमप्रतिपन्न अथवा दीक्षित असला तरीं ही मिथ्यादृष्टि होय. अपवाद कशाला ह्मणतात ? कलिकाळांत म्लेच्छ (मुसलमान) आदि लोक यती लोकांना नग्न पाहून उपद्रव करतात ह्यासाठीं मंडपदुर्ग (मांडलगढ मेवाड) मध्यें श्री वसंत कीर्तिस्वामी (भट्टारक) नीं असा उपदेश दिला कीं, चर्या वगैरेच्या वेळीं (आहाराला जाते वेळीं) मुनीनीं चटई. तरट वगैरेनीं शरीर झांकून जात जावें. व नंतर चटई, वैगेर सोडून द्यावें. संयमी किंवा मु-

नीचा हा अपवाद वेष आहे. तसेंच राजवंशादिकांत उत्पन्न झालेल्या पुरुषाला पुष्कळ वैराग्य झाल्यामुळें तो मुनी होण्यास इच्छील परंतु तो जर लिंगशुद्धीरहित असेल ह्मणजे त्याच्या लिंगाच्या अग्र भागीं कांहीं दोष असेल, अथवा तो लाजत असेल, किंवा थंडी वारा त्याला सोसत नसेल व त्यामुळें तो चटई वगैरे अंगावर झांकून घेत असेल तर त्याला अपवाद लिंगधारी ह्मणतात. उत्सर्ग वेष तर नग्नच आहे. सामान्योक्ति विधीला उत्सर्ग, आणि विशेष विधीला अपवाद ह्मणतात.

मूळ गाथेच्या अर्थाशीं ह्या अर्थाचा कांहीं संबध नाहीं हें सांगण्याची आवश्यकता नाहीं. हा अभिप्राय फारच मोठ्या प्रयत्नानें ओढून ताणून काढलेला आहे. उत्सर्ग आणि अपवाद ह्याचा हा अभिप्रायच नव्हे. जर यालाच अपवाद ह्मणूं लागल्यास मग भ्रष्टता कांहीं उरलीच नाहीं. श्रुतसागर महाराजाचा सर्वांत मोठा अन्याय हा आहे कीं, त्यांनीं आपल्या वेळेच्या शिथिलाचाराचें पोषण करण्यासाठीं भगवान कुंदकुंदाचार्यांच्या अशा ग्रंथाचें हत्यार घेतलें आहे कीं, जें तिळ तुष मात्र परिग्रहाला देखील विरोध करणारें आहे. आणि जागोजागीं शिथिलतेचा निषेध करणारें आहे. सूत्र पाहुडाच्या गाथा पहा.—

णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परम जिणवरिंदेहिं ।
एक्को वि मोक्खमग्गो सेसाय अमग्गया सव्वे ॥ १० ॥

अर्थात्--वस्त्ररहितपणा आणि पाणिपात्रतेचा भगवानांनीं उपदेश दिलेला आहे. हाच एक मोक्षमार्ग आहे बाकीचे सर्व अपमार्ग आहेत.

बाळग्गकोडिमत्तं परिगहगहणोण होइ साहूणं ॥
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णंण्णं एक्क ठाणंमि ॥ १७ ॥

अर्थात्--केसाच्या अग्रभागा इतका देखील परिग्रह साधु ग्रहण करीत नाहींत. ते आपल्या हातरूपी पात्रांत इतरांनीं दिलेलें भोजन एक जागीं उभे राहून करतात.

आतां ह्यावरून पाहिल्यास कोठें ही कठिण आज्ञा, आणि कोठें ती शिथिलता ! कि, जर थंडी वारा सहन न झाल्यास, अथवा लज्जा

जिंकली जात नसल्यास, कपडे नेसा; व अपवाद लिंग धारण करा! मूल ग्रंथकर्ता ज्याला अपमार्ग अथवा धर्मबाह्य म्हणतात त्याला हे अपवाद लिंग म्हणण्याचें धाष्टर्य दाखवीत आहेत. आपली निर्बलता आणि कमजोरी ह्यांस मुनींच्या सिंहवृत्तीच्या चादरीखालीं झाकूं इच्छितात.

ह्या टीकेपासून एक गोष्ट ही समजण्यांत आली कीं, कोणी वसंतकीर्ति स्वामींनी ह्या मार्गाला चालविलें होतें. चितोडच्या गादीवरील भट्टारकांच्या नामावळींत वसंतकीर्तिचें नांव येतें. आणि त्यांचा समय १२६४ दाखविलेला आहे. हा समय कितपत खरा आहे व हे श्रुतसागर सूरीनीं उल्लेख केलेलेच वसंतकीर्ति आहेत किंवा दुसरे कोणी हें माहित नाहीं. जर हेच असले तर ह्या मार्गाचा पत्ता तेराव्या शतकापर्यंत तर लागतो. हा शिथिलाचार आणखी कांहीं शतकापासून चालत आला असावा अशी आमची समजूत आहे.

ह्यावरून वाचकांनां कळून येईल कीं, भट्टारकांनीं आपल्या रचनेमध्यें आपल्या शिथिलतेचेहि पोषण केलें आहे. आणि तें खूब केलें आहे. अवकाशानुसार आम्हीं अशा प्रकारचीं आणखीहि प्रमाणें पुढें आणूं.

जैनहितैषी आगष्ट १०.१७

भट्टारकचर्चा
व
अनिष्ट मतें कोणतीं ?
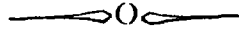
प्रगति आणि जिनविजयाच्या ता. ९।१।१७ च्या अंकांत " अनिष्ट मतांचा प्रतिकार " ह्या मथळ्याखालीं लेखक अनंततनय ह्यांचा एक लेख आला आहे. त्यांत लेखकानें कोल्हापूर प्रांतांतील किणी, कुंभोज, वगैरे गांवचे जैन लोक जैनस्वामींची पादपूजा करीत नाहींत व त्यास गुरु मानीत नाहींत, ह्याबद्दल त्यांस दोष दिला आहे व हे जैनस्वामी पंचमकाळांतील मुनि आहेत असें प्रतिपादन केलें आहे, व त्यास आधार ह्मणून पंडित आशाधरांच्या सागारधर्मामृतांतील कांहीं वाक्यें आणि सोमदेवसूरीच्या ग्रंथांतील कांहीं श्लोक दिले आहेत. त्यासंबंधानें दोन शब्द लिहिणें जरूर दिसत आहे.

पंडित आशाधर हे तेराव्या शतकांत झाले. ते मुनि किंवा आचार्य नव्हते. पंडित श्रावक होते. सोमदेवसूरी हे नवव्या शतकांत झाले. ह्यांचें ह्मणणें सर्वमान्य आहे किंवा नाहीं, हा वाद आह्मी बाजूस ठेवून, ह्यांचे आधार श्रीयुत अनंततनयानीं जे दिले आहेत ते मान्य केल्यास त्याचा अर्थ काय निघतो हें आपण पाहू.

" विन्यस्येदं युगीनेषु प्रतिमासु जिनानिव ।
भक्त्या पूर्वमुनीनर्चेत्कुतः श्रेयोऽतिचर्चिनाम् ॥ "

सागारधर्मामृत.

अर्थः—" आपण जशी रत्नपाषाणादिकांची मूर्ति करून तिला वृषभ, अजित, वगैरे नांव देऊन तिची स्थापना करून पूजा करितों, त्याचप्रमाणें या पंचमकालांतल्या मुनीच्याठायीं पूर्वकालाच्या मुनींची कल्पना करून भक्तीनें त्यांचा यथायोग्य सत्कार करावा. कारण, फार चौकशी करणारांस सुख कोठून मिळणार ? "

ह्यावरून पाहतां " पंचमकालांतल्या मुनींच्याठायीं पूर्वकाळाच्या मुनींची कल्पना करून " हे शब्द व मोठे महत्वाचे आणि विचार करण्यासारखे आहेत. पंचमकालांतील मुनि ह्मणजे वस्त्रादिक परिग्रह धारण करणारे भट्टारक, पट्टाचार्य किंवा पंडिताचार्य होत अशी श्रीयुत अनंततनयाची समजूत झालेली दिसत आहे. कारण किणी, कुंभोज येथील जैन हे वस्त्रादि परिग्रह धारण करणाऱ्याला मुनि मानीत नाहींत व त्यांस नमस्कारही करीत नाहींत; परंतु परिग्रहरहित नग्न दिगंबर असे जे सिद्धाप्पास्वामी व निलिकार अनंतकीर्ति-सारख्यांना मुनि समजून नमस्कार करितात व त्यांची पादपूजा करून त्यांस आहारदान देतात. तेव्हां पंडित आशाधराच्या ह्मणण्याप्रमाणें पंचमकालांतील मुनि ह्मणजे हे निर्ग्रंथ असावेत किंवा वस्त्रादि परिग्रहधारी भट्टारक असावेत हाच कायतो प्रश्न आहे.

पंचमकाळांत निर्ग्रंथ ह्मणजे नग्नदिगंबर असे मुनि नाहींत असें पंडित आशाधरानें ह्मटलेलें नाहीं, व तसें कोणासही ह्मणतां येणार नाहीं. कारण ह्या पंचमकाळांतच पांच श्रुतकेवली झाले, व धरसेनाचार्य, पुष्पदंतभूतबली, कुंदकुंदाचार्य, उमास्वामी, समंतभद्रस्वामी, भट्टाकलंक, विद्यानंदिस्वामी, नेमि-चंद्रस्वामी, जिनसेनाचार्य, मल्लिषेण, पद्मनंदि, सकलकीर्ति, इत्यादि अनेक मुनि सगळे पंचमकाळांतच झाले व हे सगळे निर्ग्रंथ ह्मणजे नग्नदिगंबरच होते. तसेंच अझूनही निर्ग्रंथमुनि जागोजाग दृष्टीस पडतात, व पंचमकाळाच्या शेवटापर्यंत निर्ग्रंथ मुनि राहतील असें जिनवाणी सांगत आहे, हे श्रीयुत अनंततनयानीं दिलेल्या सोमदेवसूरीच्या वाक्यावरूनही दिसत आहे कीं:—

काले कलौ चले चित्ते देहे चान्नादि कीटके ।
एतच्चित्रं यदद्यापि जिनरूपधरा नराः ॥ ३ ॥

अर्थः—ह्या चित्त चलायमान करणाऱ्या आणि खाण्यापिण्यानें देह पुष्ट करणाऱ्या पंचमकाळांत अझून देखील जिनस्वरूप धारण करणारे मुनि आहेत हें मोठें आश्चर्य आहे.

ह्यावरून स्पष्ट होत आहे कीं, जिनरूप धारण करणारे ह्मणजे नग्नदिगंबर निर्ग्रंथमुनि पंचमकाळांत पूर्वी होते, हल्लीं आहेत आणि पुढेंही होतील. त्यांचा अभाव नाहीं.

आतां वस्त्रादि परिग्रहधारी भट्टारक पट्टाचार्य ह्यांस मुनि ह्मणतां येईल काय ह्याविषयीं पाहूं गेलें असतां वस्त्रादि परिग्रहधारी यांस मुनि ह्मणावें असें पंडित आशाधर ह्मणत नाहींत व सोमदेवसूरीही ह्मणत नाहींत. इतकेंच नव्हे, परंतु कित्येक समजदार भट्टारकवृंद आपण मुनि नव्हत. आपण शिक्षागुरु आहोंत असें ह्मणतात. तसेच भट्टारकाचे समजदार भक्तही यांस मुनि न ह्मणतां शिक्षागुरूच ह्मणतात. तेव्हां पंचमकाळांतील मुनि या शब्दाचा अर्थ वस्त्रादि परिग्रहधारी भट्टारक जैनस्वामी असा जो श्रीयुत अनंततनय समजत आहेत तो चुकीचा आहे, असें पंडित आशाधरांनीं दिलेल्या दृष्टांतावरून सिद्ध होत आहे. ह्मणजे आपण रत्नपाषाणादिकांची प्रतिमा करून तिला तीर्थकराचें नाव देतों हा जो दृष्टांत आहे, ह्यांत तरी तीर्थंकरकेवलीच्या स्वरूपाची परम दिगंबर नग्न आणि ध्यानस्थ मुद्रा होती तशीच आपण त्यांची मूर्ति बनवितों. त्या मूर्तीला वस्त्र अथवा नुसती लंगोटी जरी अंगची ठेवली तरी ती मूर्ति श्वेतांबरी समजली जाऊन दिगंबर लोकांना नमस्कार पूजेला ती अयोग्य ठरते. नुसता अंगचा करदोडा असला तरी ती मूर्ति दिगंबरांला पूज्य नसते, व ह्या करदोड्याच्यापायीं अंतरिक्षपारसनाथाच्या मूर्तीचा तंटा अकोला येथील कोर्टांत चालू आहे. एका बाजूला श्वेतांबर आहेत; ते ह्मणतात, आह्मीं लेप करूं त्यांत करदोडा करूं, व दुसऱ्या बाजूला दिगंबर आहेत (त्यात बहुतेक वीसपंथी भट्टारक-भक्तच आहेत) ते ह्मणतात आह्मी करदोडा करूं देणार नाहीं. करदोडा केल्यास ती मूर्ति दिगंबराच्या पूजेस योग्य मानली जाणार नाहीं. ह्यावरून सिद्ध होतें कीं, मूर्ति सुद्धां मूळस्वरूपाप्रमाणेंच असली पाहिजे. त्यांत फेरफार करतां येत नाहीं, व असेंच सोमदेवसूरीचेंही ह्मणणें आहे.—

यथापूज्यं जिनेंद्राणां रूपं लेपादिनिर्मितं ।
तथा पूर्वमुनिच्छायाः पूज्याःसंप्रतिसंयताः ॥ ४ ॥

अर्थः—जशी जिनेंद्राच्या स्वरूपावरहुकुम असलेली पाषाणादिकांची मूर्ति पूज्य मानली जाते, त्याप्रमाणें पूर्वीच्या मुनींच्या आकृतीप्रमाणें असलेले हल्लींचे संयताः ह्मणजे संयम धारण करणारे मुनि पूज्य होतात.

ह्या श्लोकांतील ' जिनेन्द्राणां रूपं ' ' पूर्वमुनिच्छायाः ' 'संप्रति संयताः' हे शब्द लक्ष्यांत घेतले पाहिजेत. तसेंच " भक्तिमात्र प्रदानेन का परीक्षा तपस्विनां ।" हें जें सोमदेवसूरीचें वाक्य आहे त्यांत ' तपस्विनां ' हा शब्दही लक्षांत घेतला पाहिजे. तपस्वी शब्दाचें लक्षण श्रीसमंत भद्राचार्यांनीं रत्नकरंडकोपासकाध्ययनांत दिलें आहे तें असें:—

विषयाशावशातीतो निरारंभो परिग्रहः ।
ज्ञानध्यान तपोरक्तस्तपस्वी सः प्रशस्यते ॥

अर्थः—ज्यानें विषयसुखाची इच्छा सोडली आहे; शेतकी, व्यापार, नौकरी वगैरे आरंभ सोडले आहेत; वस्त्रादिक बाहेरचे दहा प्रकारचे आणि कामक्रोधादिक अंतरंग चौदा प्रकारचे परिग्रह सोडले आहेत; जो निरंतर ज्ञानाभ्यासांत, ध्यान करण्यांत आणि तपश्चर्येंत निमग्न असतो त्यालाच तपस्वी ह्मणावा.

ह्यावरून पाहतां सोमदेवसूरींच्या ह्मणण्याप्रमाणें तपस्वी शब्दांत वस्त्रादि परिग्रहधारी जैनस्वामी ह्मणविणाऱ्या भट्टारकाचा किंवा पट्टाचार्यांचा समावेश होत नाहीं हें उघड आहे.

आतां सोमदेवसूरी या ' का परिक्षा तपस्विनां ' आणि पंडित आशाधराच्या ' कुतः श्रेयोतिचर्चिनाम् ' ह्या वाक्यावरून ' मुनींची फार परीक्षा करूं नये ' ' अधिक चर्चा करण्यांत काय सुख आहे ? ' ह्या ह्मणण्याचा अर्थ डोळे झांकून वाटेल त्याला मुनि समजून त्याची पूजा करावी असा केल्यास भट्टारक आणि पट्टाचार्यांशिवाय इतर बायकामुलें असणाऱ्या, व व्यापार, शेतकी, नौकरी, शिपाइगिरी करणाऱ्या सर्वच माणसांला मुनि सम-

जून त्यांची पादपूजा करावी लागेल, व त्यामुळें मोठा अनवस्था दोष उत्पन्न होईल. तो न यावा ह्मणून मुनि स्वरूपाच्या बाह्य चिन्हाची कांहीं तरी मर्यादा करावीच लागेल आणि ती मर्यादा सोमदेवसूरीच्या शब्दांनीच ' जिनरूपधरा नराः ' किंवा ' पूर्वमुनिच्छायाः ' संयताः ह्याप्रमाणें नग्नदिगंबर निर्ग्रंथस्वरूप हीच ठरते; ह्याशिवाय दुसरी ठरविण्यांत अनेक दोष येतात, व त्यामुळें जागोजाग आचार्यांनीं त्याचा निषेध केलेलाच आढळतो. पद्मनंदि आचार्यांनीं ह्मटलें आहेः -

> दुर्ध्यानार्थमवद्यकारणमहो निर्ग्रंथताहानये ।
> सज्जाहेतुतृणाद्यपि प्रशमिनां लज्जाकरं स्वीकृत ॥
> यत्तत्किंनगृहस्थ योग्यमवरं स्वर्णादिकं सांप्रतं ।
> निर्ग्रंथेष्वपिचेत्तदस्ति नितरां प्रायः प्रविष्टःकलिः ॥

अर्थः—मुनीनीं निजण्यासाठीं नुसती गवताची चटई जरी जवळ ठेवली तर ती निर्ग्रंथपणाला बट्टा लावणारी, पातकाला कारणीभूत, ध्यान बिघडविणारी आणि लज्जास्पद आहे. तर मग हल्लीं निर्ग्रंथ ह्मणविणारे जैनस्वामी हे गृहस्थासारखे सोनें, रुपें, वगैरे जवळ ठेवतात ह्यावरून प्रत्यक्ष पूर्णपणे कली येऊन पोहोंचला असें वाटतें ! !

पद्मनंदि आचार्य हे पंचमकाळांतीलच मुनि होत, आणि त्यानीं पंचमकाळांतील मुनि ह्मणविणाऱ्यांला उद्देशूनच हें ह्मटलें आहे. मुनीला नुसती लंगोटी ठेवण्यांत सुद्धां मोठमोठे दोष दाखविले आहेत, तर मग - भगवीं वस्त्रें, धोतरजोडा, रुमाल, टोपी, शालजोडी, खडावा, पालखी, म्याना, घोडे, शिपाई हे तर लांबच. दहा दिशा हेंच कायतें वस्त्र. ह्मणजे नग्नदिगंबरच असलें पाहिजे, असें सांगितलें आहे.

> म्लाने क्षालनतः कुतः कृतजलाद्यारंभतः संयमो ।
> नष्टे व्याकुलचित्तताथ महतामप्यन्यतः प्रार्थना ॥
> कौपीनेपिहृते परैश्च झगितिः क्रोधः समुत्पद्यते ।
> तन्नित्यं शुचिरागभृत्शमवतां वस्त्रं ककुन्मंडनं ॥

अर्थः—लंगोटी मळली ह्मणजे ती धुतली पाहिजे. धुण्यानें जळादिक आरंभ करावा लागतो, मग संयम कसचें ? ती गमावली ह्मणजे मनांत तळमळ होते व दुसऱ्या लंगोटीसाठीं कोणाला तरी याचना करावी लागते. जर ती कोणीं चोरली तर त्याच्याशीं भांडण होतेंच, व तेथें क्रोध उत्पन्न झालाच. तेव्हां संयम धारण करणाऱ्याला दहा दिशा हेंच वस्त्र नेहमीं समजलें पाहिजे. (ह्मणजे नग्न राहिल्याशिवाय सुटकाच नाहीं.)

ह्यावरून कोणी ह्मणतील कीं, नग्न राहाणें व फिरणें फार कठीण आहे. सरकार रस्त्यांत फिरूं देत नाहीं व मग गांवोगांव जावें कसें ? व श्रावकांना उपदेश द्यावा कसा ? ह्याचें उत्तर इतकेंच आहे कीं, आत्म कल्याणासाठीं मुनिधर्म पत्करावयाचा असल्यास मुनि सिद्धापा किंवा निर्विकार अनंतकीर्तिसारखे एकांत ठिकाणीं राहावें व जे श्रावक दर्शनाला येतील त्यांना उपदेश करावा. त्यांच्या घरीं आहाराच्यावेळीं जावें लागतें, तेथें वात्सल्यास त्यांस उपदेश करून परत आपल्या ठिकाणीं आल्यास चालण्यासारखें आहे. परंतु ज्यांना उपदेश करण्याची खरी इच्छाच नसते. फक्त डौलासाठीं पालखींत म्यान्यांत बसून श्रावकाच्या घरीं मिरवत जावें आणि श्रावकाला आमची पादपूजा करा, आह्माला इतकेंच पैसे द्या, व न दिल्यास तुह्मावर बहिष्कार घालूं वगैरे ह्मणून पैसे उपटण्यासाठीं जे गांवोगांव आणि घरोघर फिरतात त्यांनीं मुनिदीक्षेच्या भानगडींत पडावें कशाला ? आपला श्रावकपणा काय वाईट आहे ? श्रीमल्लिषेणाचार्य ह्मणतातः—

किं दीक्षाग्रहणेन ते यदि धनाकांक्षाभवेच्चेतसि ।
किं गार्हस्थ्यमनेन वेषधरणेनासुंदरं मन्यसे ॥
द्रव्योपार्जनचित्तमेव कथयत्यभ्यंतरस्थांगजं ।
नोचेदर्थपरिग्रहो गृहमतिर्भिक्षोनरां पद्यते ॥

अर्थः—हे यते, तुझ्या मनांत जर धन मिळवावें अशी इच्छा असल्यास दीक्षा कशासाठीं घेतलीस ? असें सोंग घेण्यापेक्षां हा गृहस्थाश्रम काय वाईट आहे ? तुझ्या मनांतून खरोखर द्रव्य उपार्जन करावें असेंच अ-

सलें पाहिजे. कारण, तसें जर नसतें तर तूं एवढा द्रव्यपरिग्रह ठेवला नसतास.

भट्टारकाची किंवा पट्टाचार्याची दीक्षा ह्मणजे मुनि मंडळींतून विद्वान आणि सदाचरणी असा कोणी पाहून त्यास आचार्यपद द्यावयाचें. तेव्हां प्रथमतः मुनीचे अठ्ठावीस मूळ गुण धारण करून मग पंचाचार आदि आचार्यांचे छत्तीस गुण ग्रहण करितात, ह्मणजे मग त्यास आचार्य, भट्टारक किंवा पट्टाचार्य म्हणतात. हल्लींचे भट्टारक किंवा पट्टाचार्य दीक्षा घेतेवेळीं ह्या सगळ्या प्रतिज्ञा कबूल करितात व लागलींच भगवीं वस्त्रें, धोतरजोडा, शालजोडी, खडावा नेसून सगळ्या प्रतिज्ञा पाण्यांत टाकतात. ह्याबद्दल श्रीमल्लिषेणाचार्यांनीं यांचा कडक रीतीनें निषेध केला आहे तो असाः—

अष्टविंशतिभेदमात्मनि पुरा संरोप्य साधोव्रतं ।
साक्षीकृत्य जिनान् गुरूनपि त्वया कालं कियत्पालितं ॥
भंक्तुं वांछसिशीतवातविहतो भुंक्त्वाधुनातद्व्रतं ।
दारिद्रोपिहतः स्ववांतमशनं भुंक्ते क्षुधार्तोपि किं ॥

अर्थः—हे मुनि, तूं जिनेश्वराच्या आणि गुरूंच्या समक्ष साधूचे अठ्ठावीस मूळ गुण आपल्या ठिकाणीं आरोपण करून घेऊन किती वेळपर्यंत पाळलेंस बरें ? थंडीवाऱ्याची बाधा सहन न झाल्यामुळें तीं व्रतें मोडूं इच्छितोस आणि मोडूनही टाकलीस ना ? अरे, दारिद्र्यानें गांजलेला आणि क्षुधेनें व्याकुळ झालेला असला तरी तो आपलें ओकलेलें आपणच खाईल काय ?

भावार्थः—प्रतिज्ञाभंग चांगला मनुष्य कधींही करणार नाहीं. मल्लिषेणाचार्य हे पंचमकाळांतीलच मुनि होते आणि पंचमकाळांतील मुनीला उद्देशूनच हा त्यांचा उपदेश आहे. ह्यावरून पंचमकाळांतील मुनीला वाटेल तें करण्यास परवानगी आहे असं होत नाहीं.

असें जर आहे, तर मग चतुर्थकाळांतील मुनीमध्यें आणि पंचमकाळांतील मुनीमध्यें जो भेद आशाधरांनीं आणि सोमदेवसूरींनीं केला आहे तो

कोणता असा प्रश्न उत्पन्न होतो. त्याविषयीं विचार केल्यास ह्यांमधील भेद बाह्यस्वरूपांत बिलकूल नसून अंतरंगांतील परिणामामध्यें मात्र भेद असल्याचें शास्त्रावरून दिसतें. ह्मणजे पंचमकाळांत केवलीचा जन्म होत नाहीं. केवलज्ञान प्राप्त होण्यास उत्तम संहनन शरीर लागत असतें तें ह्या पंचमकाळांत नसतें. त्यामुळें पंचमकाळांतील कोणत्याही मुनीला उपशम व क्षपक श्रेणीला चढतां येत नाहीं, व यथाख्यात चारित्र होत नाहीं ह्मणून केवलज्ञान प्राप्त होत नाहीं. हाच तफावत चतुर्थकाळच्या आणि पंचमकाळच्या मुनीमधील आहे. तो बाहेरून दिसण्यासारखा नाहीं. बाहेरून दोघांचीही नग्नमुद्रा, केशलोंच, पाणीपात्र भोजन, षडावश्यक वगैरे अठ्ठावीस मूळ गुण सारखेच असणार. अंतरंगांतील भेद कळणार नाहीं ह्मणून श्रावकांनीं बाहेरील नग्नमुद्रा, पिंछी, कमंडलु हें पाहून त्यांस मुनि समजून नमस्कार पूजा करावी. असाच आशय पंडित आशाधराच्या आणि सोमदेवसूरीच्या ह्मणण्याचा समजावा. ह्मणजेच तो इतर आचार्यांच्या अभिप्रायाशीं जुळतो. नाहीं तर इतर आचार्यांशीं ह्यांचा विरोध येईल.

श्रीयुत अनंततनयाचा एक आक्षेप असा आहे कीं, “ अवसर्पिणी कालानुसार या पंचमकाळांत अलीकडच्या स्वामी लोकांत शास्त्रोक्त गुण नाहींत ह्मणून खेद मानण्याचें कारण नाहीं. वर सांगितलेल्या (किणी, कुंभोज वगैरेकडील) तेरापंथी लोकांनीं प्रथम आपल्यासंबंधीं व आपल्या बरोबर असणाऱ्या पुष्कळ जैन लोकांसंबंधीं कधीं विचार केला आहे काय ? आह्मी गृहस्थ, आमच्या गृहस्थांचीं काय कर्तव्यें आहेत त्याला अनुसरूनच आपण वागतों कीं नाहीं वगैरेसंबंधीं कधीं विचार केला आहे काय ? तसा विचार केला नसेल तर ते लोक आपल्याला श्रावक किंवा गृहस्थ ह्मणवून घ्यायला सुद्धां पात्र नाहींत असें त्यांनीं समजावें. सागारधर्मामृतांत श्रावकधर्म चालविण्यास कोण पात्र असतो याबद्दल विचार केला आहे.

न्यायोपात्तधनो यजन् गुणगुरून् सद्गीस्त्रिवर्गं भजन् ।
अन्योन्यानुगुणं तदर्ह गृहिणीस्थानालयो ह्रीमयः ॥

युक्ताहारविहार आर्यसमितिः प्राज्ञः कृतज्ञोवशी ।
शृण्वन् धर्मविधिं दयालुरघभीः सागारधर्मंचरेत् ॥११॥

अर्थः—१ न्यायानें द्रव्य मिळविणारा, २ सद्गुण व गुरु यांची पूजा करणारा, ३ सत्य व मधुर भाषण करणारा, ४ धर्म, अर्थ व काम या तीन पुरुषार्थांस परस्पर विरोध न आणतां सेवन करणारा, ५ वरील पुरुषार्थ साधण्यास योग्य अशा नगरांत अथवा गांवांत व तेथेंही चांगल्या घरांत कुलवधूसह वास करणारा, ६ मर्यादेनें वागणारा, ७ योग्य आहारविहार करणारा, ८ सज्जनांची संगत धरणारा, ९ विचारवान, १० केलेले उपकार जाणणारा, ११ अंतरंग सहा शत्रूंना स्वाधीन ठेवणारा, १२ धर्मविधि ऐकणारा, १३ दयाळू, १४ पापभीरू असा जो मनुष्य तो श्रावकधर्म चालविण्यास योग्य होय.

" या नियमांला अनुसरून आपल्या महाराष्ट्रांतील जैनांत श्रावकधर्म चालविणारे फार थोडे निघतील. " वगैरे.

ह्या आक्षेपासंबंधी विचार करितांना श्रावकाचे हे चौदा गुण सागारधर्मामृतांत पंडित आशाधरांनीं सांगितलेले इतर ग्रंथांत ह्मणजे श्रीसमंतभद्राचार्यांच्या रत्नकरंडकोपासकाध्ययनांत, वसुनंदि श्रावकाचारांत, अमितगती श्रावकाचारांत आढळत नाहींत. श्रावकांचे आठ मूळ गुण मात्र ह्यांच्या ग्रंथांत आणि इतर ग्रंथांतही पाहण्यांत येतात.

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपंचकं ॥
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहीणां श्रमणोत्तमाः ॥ १ ॥

रत्नकरंडक.

अर्थः—१ मद्य, २ मांस, ३ मध ह्यांचा त्याग, आणि पांच अणुव्रतें पाळणें हे श्रावकांचे आठ मूळ गुण होत.

कित्येकांनीं तीन मकार आणि पांच औदुंबर फळें भक्षणाचा त्याग करणें ह्याला श्रावकाचे आठ मूळ गुण ह्मटलें आहे. सागारधर्मामृतांत श्रावकाच आठ मूळ गुण सांगितले आहेत ते असे—

मद्यपलमधुनिशासन पंचफली विरति पंचकाप्तनुतिः ॥
जीवदया जलगालनमिति च क्वचिदष्टमूलगुणाः ॥

सागारधर्मामृत.

अर्थः—१ मद्य, २ मांस, ३ मध, ४ रात्रिभोजन, ५ पंचउदुंबर, ह्यांचा त्याग, ६ पंचपरमेष्ठीला नमणें, ७ जीवदया, ८ पाणी गाळून पिणें. हे आठ मूळ गुण कोठेंसे सांगितले आहेत (कोठें सांगितले हें पंडित आशाधर कळवीत नाहींत).

तेव्हां ह्या तिन्ही प्रकारच्या आठ मूळ गुणांचे श्रावक पुष्कळ आहेत. रात्रिभोजन न करणारे कांहीं कमी निवतील. परंतु मद्य, मांस, मध आणि पांच उदुंबर फळें न खाणारे हजारों लाखों श्रावक सांपडतील, व ते किणी कुंभोज येथेंही पुष्कळ सांपडतील.

सागारधर्मामृतांतील चौदा गुणांचे धारक श्रावकही पुष्कळ आहेत. तथापि श्रीयुत अनंततनयाच्या ह्मणण्याप्रमाणें 'महाराष्ट्रांत फार थोडे निवतील' असें गृहीत धरून चाललें तरी अभाव नाहीं हें तर निर्विवाद आहे. व ते थोडे असलेले महाराष्ट्रांतील अमुक गांवीं आहेत असे ज्याअर्थी श्रीयुत अनंततनयानीं सांगितलें नाहीं, त्याअर्थी ते थोडे तरी किणी आणि कुंभोज वगैरे गांवीं नसतील हें कशावरून ? किणी, कुंभोज येथील जैन लोक न्यायानें द्रव्य मिळविणारे नसून चोऱ्या, दरवडे घालून पोट भरतात असें श्रीयुत अनंततनयाचें ह्मणणें आहे काय ? ते नेहमीं खोट्या साक्षी देणारे आणि खोटे दस्तैवज करणारे आहेत काय ? भट्टारकाची पादपूजा करीत नसतील. परंतु निर्ग्रंथ दिगंबर असा सिद्धाप्पा किंवा निलिकार अनंतकीर्ति वगैरे गुरूची पूजा करीत नाहींत काय ? मद्य, मांस, मधु भक्षण करीत असतात काय ? वगैरेबद्दल अनंततनयानीं स्पष्टपणें कांहीं लिहिलें नाहीं, त्याअर्थी त्यांच्या अंगीं श्रावकाचे गुण नाहींत असें ह्मणण्यास कांहीं पुरावा नाहीं. पंडित आशाधरानींही वरील चौदा गुण धारण करणारे श्रावक नाहींत अथवा थोडे आहेत असें ह्मटलें नाहीं. चतुर्थकाळांतील आणि पंचम

काळांतील मुनींमध्यें तफावत सांगितलें तसें चतुर्थकाळांतील आणि पंचम-काळांतील श्रावकामध्यें अमुक भेद आहे असें पंडित आशाधरानीं व सोम-देवसूरीनीं सांगितलें नाहीं. चतुर्थकाळांतही श्रावकाचे आठ मूळ गुण आणि पंचमकाळांतही श्रावकाचे तितकेच गुण सर्वांनीं सांगितले आहेत.

आतां श्रीयुत अनंततनयाच्या ह्मणण्याप्रमाणें श्रावकधर्मानें वागणारे जे थोडे आहेत ते खेरीजकरून बाकीचे जे " पिढ्यानपिढ्या धर्मसंस्कारविहीन अशा, व्यवहार आणि निश्चयमार्ग न समजणाऱ्या वर सांगितलेल्या शिष्ट-विशिष्ट असमंजस लोकांनीं स्वामीला फुकट दोष देत फिरूं नये. " एवढी त्यांची आज्ञा मान्य केली तर चौदा गुण पाळणारे महाराष्ट्रांतील थोडेसे जे राहिले व ज्यांत श्रीयुत अनंततनयही मोजावे लागतील त्यांना हा हुकूम लागूं नाहीं असें ह्मणण्यास काय हरकत आहे ? कारण 'ज्यांना आपल्या पायांखालीं काय जळत आहे हें समजत नाहीं' त्यांनीं फार झालें तर शास्त्रोक्त गुण नसणाऱ्या ह्या कलियुगी स्वामीची डोळे झांकून पादपूजा करावी. परंतु ज्या थोड्या लोकांच्या अंगीं श्रावकाचे चौदा गुण आहेत त्यांनीं समजून उमजून यांच्या पायां कां पडावें व यांची पादपूजा कां करावी ?

श्रीयुत अनंततनय ह्मणतात, " समंतभद्राचार्य आपल्या रत्नकरंडकांत सांगतात कीं, आपल्या समानधर्मी जे लोक आहेत, जे धर्मबंधू आहेत त्यांच्याशीं देखील निष्कपटबुद्धीनें वागून त्यांचा आदर ठेवावा ह्मणजे सम्य-क्त्वाचें एक वात्सल्यांग प्राप्त होतें. असें जर त्यांचें सांगणें आहे, तर प्रत्यक्ष पिंछि कमंडलु धारण करून अंगावर भगवीं वस्त्रें धारण करून एकवेळ जेव-णारे आणि दुसरा कोणताही व्यवसाय ज्यांना नाहीं अशा स्वामीचा आदर करूं नये, त्यांच्या पायां प ' नये आणि त्यांना आहारदान देऊं नये असें ह्मणणें न्यायाचें कीं अन्यायाचें, धर्माचें कीं अधर्माचें, सभ्यपणाचें कीं दां-डगेपणाचें, सम्यक्त्वाचें कीं मिथ्यात्वाचें याचा विचार वाचकांनींच करावा." इत्यादि. आतां ह्याविषयीं विचार केल्यास समंतभद्राचार्यांच्या रत्नकरंडकांत वात्सल्य अंग असें सांगितलें आहे.

स्वयूथ्यान्प्रतिसद्भाव सनाथापेतकैतवा ।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ॥

अर्थः—स्वधर्मी लोकांवर निष्कपटबुद्धीनें यथायोग्यपणें प्रेम करणें यास वात्सल्य ह्मणतात.

ह्यांत ' यथायोग्य ' हा जो शब्द घातलेला आहे त्याकडे श्रीयुत अनंततनयानीं दुर्लक्ष केल्यासारखें दिसतें. कारण, भगवीं वस्त्रें धारण करणारे हे कोणत्याही काळांत मुनी ठरत नाहींत हें वरील विवेचनावरून सिद्ध होत आहे. श्रीकुंदकुंदाचार्यानीं जैन धर्मांत तीन लिंगें सांगितलीं आहेत तीं अशीं—

गाथा—**एकं जिणस्स रूवं बीयं उक्किट्ठ सावयाणंतु ।**
अवरीट्ठयाण तइयं चउथं पुणलिंगदंसणेणत्थि ॥१८॥

षटपाहुडेदर्शनपाहुड.

छाया—**एकं जिनस्य रूपं द्वितीयं उत्कृष्टश्रावकानांतु ।**
अपरास्थितानां तृतियं चतुर्थं पुनः लिंगं दर्शनेनास्ति ॥

अर्थः—जिनमतांत तीन लिंगें ह्मणजे वेश असतात. एक जिनस्वरूप नग्न दिगंबर, दुसरें उत्कृष्ट श्रावकांचें आणि तिसरें आर्यिकांचें; ह्यांशिवाय चौथें लिंग नाहीं.

ह्यावरून भगवीं वस्त्रें धारण करणारे ह्यांच्याठायीं नग्नदिगंबर मुनीचें लिंग नाहीं हें उघडच आहे. दुसरें जें उत्कृष्ट श्रावकाचें पिंछी कमंडलु आणि नुसती लंगोटी धारण करण्याचें लिंग तेंही भगवीं वस्त्रें धारण करणाऱ्याला लागूं पडत नाहीं. आणि तिसरें जें आर्यिकांचें तें तर नव्हेंच. तेव्हां यांचा सत्कार कोणतें लिंग समजून करावा हें श्रीयुत अनंततनयानीं दाखवावयास पाहिजे होतें. ह्यांच्या बाहेरील वेषावरून ह्यांना सातवी ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी श्रावक फार झालें तर ह्मणतां येईल. तेंही ह्यांच्या अंगीं खालच्या प्रतिमेचे गुण, त्रिकाल सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्तत्याग रात्रिभोजनत्याग वगैरे असतील तर. ह्यांना दुसरा कोणताही व्यवसाय नसल्यास आठवी आरंभ-

त्याग प्रतिमाधारी श्रावकही ह्मणतां येईल. परंतु ह्यांच्यापाशीं जमिनी असतात त्यांचें उत्पन्न ते करीत असतात. ह्यांच्यापाशीं पैसे असतात त्याचें हे व्याज उत्पन्न करतात, ह्यावरून " सेवा कृषिवाणिज्यप्रमुखादारंभतो व्युपारमतिः ॥ प्राणातिपातहेतोर्योसावारंभविनिवृत्तः ॥ " ह्या आरंभत्याग नांवच्या आठव्या प्रतिमेंत त्यांचा समावेश होत नाहीं. असें असून आपण मुनी आहोंत, आमचा मुनीप्रमाणें सत्कार करा, आमच्या पाया पडा. आमच्या पायांची अष्ट प्रकारें पूजा करा, असें ह्मटल्यामुळें व करून घेतल्यामुळें हे भोळ्या व अडाणी लोकांस फसवितात अशी लोकांची समजूत होणें साहजिक आहे. ह्यांचा भेष कोणत्याही लिंगांत येत नसल्यामुळें व हे आपणास बळेंच मुनीलिंगी ह्मणवून घेत असल्यामुळें ह्यांस कुलिंगीही ह्मटलें आहे, व कुलिंगीच्या पाया पडूं नये असें समंतभद्राचार्य ह्मणतात.

भयाशास्नेहलोभाच्चकुदेवागमलिंगिनां ॥
प्रणामं विनय चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ॥

रत्नकरंडक.

अर्थः—भयानें, आशेनें, स्नेहानें, लोभानें, कुदेव, कुशास्त्र आणि कुलिंगी ह्यांस शुद्धसम्यक्तीनीं नमस्कार करूं नये व ह्यांचा आदर करूं नये.

तसेच जे दर्शनभ्रष्ट पुलिंगी इतर सम्यक्ती लोकांस आपल्या पाया पाडून घेतात त्याबद्दल श्रीकुंदकुंदाचार्य निषेध करितात. पाहा.

जे दंसणेसु भट्टा पाए पाडंति दंसणधराणां ॥
ते हुंतिलुल्लमूआ वोहिपुण दुल्लहातेसिं ॥ १२ ॥

षडपाहुडेदर्शनपाहुड.

अर्थः—जे दर्शनभ्रष्ट लोक सम्यक्ती लोकांस आपल्या पायां पाडून घेतात ते पांगळे आणि मुके होतात व त्यांना रत्नत्रयाची प्राप्ति होणें दुर्लभ आहे.

ह्याप्रमाणें प्राचीनांतील अत्यंत प्राचीन अशा श्रीकुंदकुंदाचार्यांचे आणि

श्रीसमंतभद्राचार्यांचे अभिप्राय पाहिले ह्मणजे भग०या वस्त्रांच्या स्वामीच्या पाया पडण्याची सक्त मनाई आहे असें दिसतें.

उपदेशसिद्धांतरत्नमालेंत ह्मटलें आहे.-

गाथा—**अइया अइपाविठ्ठा सुद्धगुरू जिणवरिंद तुल्लंति ॥**
जोइह एवं मण्णइ सो विमुहो सुद्धधम्मस्स ॥ १३० ॥

अर्थः—ह्यावेळेस देखील अतिशय पापी परिग्रहाचे धारक कुगुरु आहेत, त्यांना सद्गुरु व जिनराजासारखे जे मानतात ते पवित्र धर्मापासून विमुख होतात.

ह्यावरून सिद्ध होत आहे कीं, निर्ग्रंथ दिगंबर मुनी आणि भगवीं वस्त्रें धारण करणारे जैनस्वामी ह्यांचा सत्कार सारख्या रीतीनें करितां येत नाहीं. हे आपणास ब्रह्मचारी श्रावक ह्मणवून घेत असल्यास ह्यांची गाठ पडल्यावेळीं ह्यास जैजिनेन्द्र ह्मणावें. हे उपाशी असल्यास त्यास जेऊं घालावें ह्मणजे बस्स आहे. नमोस्तु करण्याचा आणि पादपूजा करण्याचा सन्मान जो निर्ग्रंथ मुनीसाठीं आहे तो त्यांच्या पुरताच असूं द्यावा. तो सन्मान ह्यांना दिल्यास दोघे सारखेच मोजले जातील, व मग परिग्रह धारण करणाऱ्यापेक्षां निर्ग्रंथ मुनीचें जें महत्व आहे तें राहणार नाहीं, व जर आपल्या अंगीं मुनीचे गुण नाहींत तर मग मुनीप्रमाणें आपला सत्कार झाला पाहिजे अशी फाजील इच्छा त्यांनीं तरी कां ठेवावी? त्यांनीं भट्टारक आणि पट्टाचार्य अशी वरिष्ठ पदव्यांचीं नांवें जीं धारण केलीं आहेत तीं न करितां आपल्या योग्यतेप्रमाणें गृहस्थाचार्य हें नांव धारण केल्यास नमोस्तु आणि पादपूजा करून घेण्याची जरूरी राहणार नाहीं, व मग तेरापंथीचा सुळसुळाट आणि वीसपंथीचा गुणगुणाट हे शब्दच मोडून जातील. आणि मग ह्या दोन्ही पक्षांतील लोकांचा ह्यांच्यावर विश्वास बसून ह्यांच्या हातून जैनसमाजाच्या उन्नतीचीं पुष्कळ काम घडून येतील. हल्लीं नेमिसागरवर्णी, ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी, ब्र० बाबाभगीरथजी, ब्र० गणेशीलालजी, ब्र० कुंवर दिग्विजयसिंहजी, ब्र० पायसागर महाराज उगारकर, ब्र० पार्श्वसागर कुंथलगिरी,

इत्यादि लोकांवर तेरापंथी आणि वीसपंथी अशा दोन्ही बाजूच्या लोकांचा विश्वास असल्यामुळें ह्यांच्या हातून मोठमोठीं जैनधर्माचीं कामें जशीं होत आहेत तशीं ह्या भट्टारकापैकीं एकाच्याही हातून होत नाहींत. कांहीं भट्टारक लोक तर स्वतःच्या स्वार्थामुळें धर्मवृद्धीच्या कामांत अनेक विघ्नें मात्र आणतात. श्रीशिखरजीच्या भंडाराची शेठ माणिकचंद यानीं व्यवस्था लाविली, त्यावेळीं आडवे येणारे भट्टारक सर्येंद्रभूषण. सोनागिरीची व्यवस्था तीर्थक्षेत्रकमिटी स्वाधीन आहे तेथें भांडणतंटे, दिवाणी, फौजदारी करणारे तेथील भट्टारक नरेन्द्रभूषण. बेळगांवांत जैनबोर्डिंगास वीस हजार रुपये देणाऱ्यास मना करणारे लक्ष्मीसेनस्वामी. धवल जयधवल ग्रंथाचें ज्ञान इतर ठिकाणीं जाऊं देऊं नये ह्मणून ज्ञानाला अंतराय करणारे मूडबिदरीचे पट्टाचार्य. वऱ्हाडातील सेनगण आणि बलात्कारगणाचें भांडण श्रावक लोकांत वाढविणारे तरी दोघे भट्टारकच. ज्या श्रावकानें निर्माल्य खाण्याचा त्याग केला आहे. त्याला कपटानें फसवून निर्माल्य खाऊं घालणारे भट्टारक सुरेंद्रकीर्ति. हर्षकीर्ति आणि रत्नकीर्तीची लीला तर जगजाहीर आहेच. नवीन विशाळकीर्तीचा तंटा शेतवाळात चालूच आहे. तेव्हां अशा लोकांची पादपूजा केल्यानें आमचें काय कल्याण होणार? व श्रीयुत अनंततनय तरी ह्या लोकांच्या भक्तीला कां लागले आहेत हें समजत नाहीं. महाराष्ट्रांत जे थोडे लोक श्रावकाच्या चौदा गुणांनीं युक्त त्यांना दिसत आहेत. त्या थोड्या लोकांच्या मदतीनें सर्व महाराष्ट्र सुधारून टाकण्याचा प्रयत्न कां करूं नये? लोकांमधील अज्ञान नाहींसे करण्यास हल्लींचा काळ फार अनुकूळ आहे. जैन धर्म हा परीक्षा करून ग्रहण करण्याचा धर्म आहे. अंधपरंपरेचा धर्म नव्हे. आठ मूळ गुण किंवा चौदा गुण पाळणें हें पंचम गुण स्थानच्या श्रावकांचें काम आहे. ते अंगीं नसले व नुसतें अरिहंत देव, निर्ग्रंथ गुरु आणि जिनमार्गीत सांगितलेला धर्म खरा आहे इतकें श्रद्धान असलें तर तो सम्यक्ती ह्मणावा. स्वर्गातील देवांना श्रावकाचे आठ मूळ गुण किंवा चौदा गुण

नसतात. कारण त्यांना पांचवें गुणस्थान नाहीं चौथें असतें. तरी त्यांना देवगुरु शास्त्राचें श्रद्धान असतें. त्याप्रमाणें किणी, कुंभोज येथील जैन लोकांच्या अंगीं चौदा गुण किंवा आठ मूळ गुण देखील असोत किंवा नसोत नुसतें देव, गुरु आणि धर्म यांचें श्रद्धान असलें तरी त्यांस सम्यक्ती ह्मणतां येईल, व अशा ज्या थोड्या लोकांना देव, गुरु आणि धर्म यांची परीक्षा कळली आहे त्यांचीं अनिष्ट मतें समजूं नका. त्यांच्या मतांमध्ये स्वार्थबुद्धि नाहीं. आमची पादपूजा करा, आह्माला पैसे द्या. असें ह्मणणाऱ्यामध्यें स्वार्थबुद्धि आहे व तीं स्वार्थबुद्धीचीं मतेंच अनिष्ट मतें होत, हें लक्षांत ठेवा; आणि त्या मतांचा प्रतिकार करण्यास झटा.

श्रीयुत अनंततनयानीं शेवटीं एक दृष्टांत श्रावकाला उद्देशून दिलेला आहे.—

" व्याघ्रचर्मप्रतिच्छन्नो वाकृते रासभोहतः ॥ "

" ह्मणजे वाघाचें कातडें पांघरणाऱ्या गाढवाप्रमाणें श्रावकांचें नुकसान होईल." हा दृष्टांत दिलेला श्रावकाला मुळींच लागूं पडत नाहीं. कारण त्यांनीं लोकांस फसविण्यासाठीं कोणतही सोंग घेतलेलें नाहीं. ते आपल्या श्रावक-पदांतच राहून जो कांहीं आपल्या हातून धर्म घडेल तितका करीत आहेत. तेव्हां त्यांनीं वाघाचें कातडें पांघरलेलें नसून ज्यांनीं पांढरें टाकून भगवें घेतलें आणि जे आपली पदवी फार खालची ह्मणजे श्रावकाच्या सातव्या प्रतिमेपर्यंची असून आपण मुनी आहोंत असें ह्मणत आहेत, त्यांनीं मात्र वाघाचें कातडें पांघरलेलें आहे असें ह्या दृष्टांतावरून ह्मटल्यास चालण्यासारखें आहे.

सोलापूर ता. ३१।२।१७. हिराचंद नेमचंद.

भट्टारकाच्या ऐवजीं गृहस्थाचार्य स्थापन केल्यास चांगलें होईल.

अलीकडे भट्टारकांच्या संबंधानें बरीच चर्चा सुरू झाली आहे. भट्टारक ' अशा मथाळ्याखालीं जैनहितैषी मासिकांत कांहीं दिवसापूर्वी एक स्वतंत्र लेख हिंदीमध्यें आला होता. त्याची मराठींत आणि गुजराथींत भाषांतरें होऊन तीं पुस्तक रूपानें वाटण्यांतही आलीं. ह्यांमध्यें भट्टारकशब्दाचा अर्थ, त्याची मीमांसा, व पुढें भट्टारकाच्या नांवानें परीग्रहधारी असलेल्या गादीपतीचा उद्भव कसा झाला वगैरे विवेचन बरेंच केलें आहे. त्यावरून पाहतां भट्टारक शब्द हा फारच मोठ्या पदवीचा आणि सन्मानाचा आहे असें दिसून येतें. तीर्थंकर केवली भगवानाला भट्टारक असें नांव आहे. तसेंच श्रीमान् कुंदकुंदाचार्य, श्रीमान् जिनसेनाचार्य, श्रीमान् शुभचंद्राचार्य, श्रीमान् सकलकीर्ति आचार्य इत्यादि परम निर्ग्रंथ, अठ्ठावीस मूळगुणाचे धारक आणि विद्वान शिरोमणी अशा आचार्य परमेष्ठीलाच भट्टारक नांव दिलेलें पुस्तकांतून आढळण्यांत येत आहे. तेव्हां असें परमपूज्य आणि सर्वमान्य भट्टारक पदवीचें नांव परिग्रहधारी लोकांना दिल्यानें त्या पदवीचा अपमान केल्यासारखें होत आहे. अलीकडे तर गादीपती भट्टारक लोकांचें आचरण फारच बिघडल्यामुळें ह्या लोकांविषयीं जैन लोकांच्या मनांत अत्यंत किळस उत्पन्न झाला आहे, व अन्यमती विद्वान लोक ह्यांचें वर्तन पाहून जैनधर्माचा फारच उपहास करूं लागले आहेत. हें पाहून जैन लोकांस खालीं माना घालाव्या लागतात. तेव्हां ही शोचनीय स्थिती दूर करतां येणें शक्य आहे किंवा नाहीं ह्याचा विचार आणि वाटाघाट करणें आवश्यक दिसतें.

भट्टारक हें नांव तीर्थंकर भगवानाला आणि आचार्य परमेष्ठीला लागलेलें त्यांच्याकडेच राहूं देऊन हल्लींच्या परिग्रहधारी गादीपतीला दुसरें नांव दिल्यास चालेल किंवा नाहीं? व चालत असल्यास कोणतें नांव शास्त्राधारानें सांपडण्यासारखें आहे ह्या विषयीं शोध करूं लागलों तर, श्रीमहापुराणांत श्रावकाच्या ज्या त्रेपन्न क्रिया सांगितल्या आहेत त्यांपैकीं विसावी 'गृहीशिता' क्रिया ह्मणजे जिच्या योगानें 'गृहस्थाचार्य' ही पदवी घेतां येते, ती व त्या पुढील एकेविसावी 'प्रशांती' क्रिया आणि बाविसावी 'गृहत्याग' क्रिया अमलांत आणल्यानें भट्टारकाच्या ऐवजीं गृहस्थाचार्य हें नांव दिल्यास काम भागण्यासारखें आहे. हल्लीं कमी योग्यतेच्या माणसाला फार मोठ्या मानाची पदवी दिल्यामुळें त्या केवली भगवानाचा आणि आचार्य परमेष्टीचा जो अविनय होत आहे तो हें गृहस्थाचार्य नांव दिल्यानें टळण्यासारखा आहे. तेव्हां ह्या तीन क्रिया महापुराणांत सांगितलेल्या कशा आहेत त्या समजण्यासाठीं येथें देतों.

कुलचर्यामनुप्राप्तो धर्मे दार्ढ्यमथोद्वहन् ॥
गृहस्थाचार्यभावेन संश्रयेत्स गृहीशिताम् ॥ १४५ ॥
ततो वर्णोत्तमत्वेन स्थापयेत्स्वां गृहीशिताम् ॥
श्रुतवृत्ति क्रिया मंत्र विवाहैः सोत्तरक्रियैः ॥ १४६ ॥
अनन्यसदृशैरेभिः श्रुतवृत्तिक्रियादिभिः ॥
स्वमुन्नतिं नयन्येष तदार्हति गृहीशिताम् ॥ १४७ ॥
वर्णोत्तमो मही देवः सुश्रुतो द्विजसत्तमः ॥
निस्तारको ग्रामपतिर्मानार्हश्चेति मानितः ॥ १४८ ॥

अर्थः—कुलचर्येचे सेवन करणारा व धर्माविषयीं दृढबुद्धि ठेवणारा असा श्रावक, घरांत असलेल्या सर्व माणसांपैकीं आपण मुख्य आहोंत अशी भावना ठेऊं लागला ह्मणजे त्यानें गृहीशिता क्रियेचा आ-

श्रय करावा. व मग निष्पाप उपजीविका, आचार, मंत्रपाठ, लग्न अशा उत्तर क्रियेनें आपण सर्वापेक्षां श्रेष्ठपणानें राहून आपली गृहीशिता दृढ करावी. इतरांस दुर्लभ अशा शास्त्र, उपजीविका, क्रिया वगैरेच्या योगानें आपणाला उत्कर्षाला नेणारा हा श्रावक तसें करितो त्यावेळीं तो गृहीशितेला योग्य होतो. मग त्याचा—वर्णोत्तम (सर्व वर्णांत श्रेष्ठ) महीदेव (पृथ्वी वरील देव) सुश्रुत (चांगला शास्त्रज्ञ) द्विज=सत्तम (द्विजांत उत्तम) मानार्ह (सत्कार करण्याला योग्य) अशा विशेषणांनीं सन्मान करतात. ही विसावी गृहीशिता म्हणजे गृहस्थाचार्य नांवाची क्रिया झाली.

सोनुरूपं ततोलब्ध्वा सूनुमात्मभरक्षमम् ॥
तत्रारोपितगार्हस्थ्यः सन् प्रशांतिमतःश्रयेत् ॥१४९॥
विषयेष्वनभिष्वंगो नित्यस्वाध्यायशीलता ॥
नानाविधोपवासैश्च वृत्तिरिष्टा प्रशांतता ॥१५०॥

प्रशांतिः २१

अर्थः—नंतर त्यानें आपल्याला अनुरूप आणि आपल्या संसाराचें ओझें घेण्याला समर्थ असा पुत्र आहे असें पाहून, त्यावर संसाराचा भार टाकून, नंतर आपण प्रशांतीचा स्वीकार करावा. ज्यानें प्रशांतीचा स्वीकार केला त्यानें विषयाविषयीं निस्पृह असावें, नेहेमीं अध्ययन करावें, अनेक प्रकारचें उपवास करून शांतवृत्ति ठेवावी, ही प्रशांति क्रिया २१ वी होय.

ततःकृतार्थमात्मानं मन्यमानो गृहाश्रमे ॥
यदोद्यतो गृहत्यागे तदास्यैष क्रियाविधिः ॥ १५१ ॥
सिद्धार्थतां पुरस्कृत्य सर्वानाहूय सम्मतान् ॥
तत्साक्षिसूनवे सर्वं निवेद्यातो गृहं त्यजेत् ॥ १५२ ॥
कुलक्रमस्त्वया तात संपाल्योऽस्मत्परोक्षतः ॥
त्रिधाकृतं च नो द्रव्यं त्वयेत्थं विनियोज्यताम् ॥१५३ ॥

एकांऽशो धर्मकार्येच द्वितीयःस्वगृहव्यये ॥
तृतीयःसंविभागाय भवेत्त्वत्सहजन्मनां ॥ १५४ ॥
पुत्र्यश्च संविभागार्हा समं पुत्रैः समांशकैः ॥
त्वं तु भूत्वा कुलज्येष्ठः संततीर्नोनुपालय ॥ १५५ ॥
श्रुतवृत्तिक्रियामंत्रविधिज्ञस्त्वमतंद्रितः ॥
प्रपालय कुलाम्नायं गुरुं देवांश्च पूजयन् ॥१५६॥
इत्येवमनुशिष्यंत्वं ज्येष्टं सूनुमनाकुलः ॥
ततो दीक्षां समादातुं द्विजः स्वं गृहमुत्सृजेत् ॥१५७॥

इति गृहत्यागः ॥२२॥

अर्थः—नंतर गृहस्थाश्रमांत आपण कृतकृत्य झालों असें समजणारा श्रावक त्यावेळीं त्यानें पुढील क्रिया करावी. आपली इच्छा पूर्ण झाली असें दाखवून आपल्यास इष्ट असतील अशा सर्व लोकांना बोलावून आणून त्यांच्या साक्षीनें आपल्या पुत्राला सर्व देऊन आपण गृहाचा त्याग करावा. (त्यावेळी त्या पुत्राला पुढील प्रमाणें सांगावें) बा पुत्रा, आपल्या कुलधर्मपरंपरेनें चालत आलेली रीति आमच्या मागें तूं रक्षण केली पाहिजे. आणि ज्याचे तीन विभाग केलेले आहेत अशा आमच्या द्रव्याचा तूं असा उपयोग कर कीं, त्यांतील एक भाग धर्मकृत्याकडे, दुसरा गृहकृत्याकडे, आणि तिसरा विभाग तूं व तुझे बंधू ह्यांनीं वाटून घेण्याकडे. ज्याचा विभाग सारखा आहे अशा मुलांबरोबरच मुलीहि विभाग घेण्याला योग्य आहेत. तूं आमच्या पुढील संततींतील जेष्ठ होऊन आमच्या संततीचें रक्षण कर. शास्त्र, सदाचार, क्रिया, मंत्र व विधि ह्यांनां जाणणारा असा तूं नेहमीं सावध राहून गुरू व देव ह्यांची पूजा करणारा असा होत्साता कुलपरंपरेनें प्राप्त झालेलें शास्त्र रक्षण कर. ह्या प्रमाणें आपल्या जेष्ठ पुत्राला सांगून स्वतः अंतःकरण व्यग्र न होऊं देतां द्विजानें दीक्षा घेण्याकरितां आपलें घर सोडावें. ही गृहत्याग क्रिया २२ वी होय.

ह्याप्रमाणें ह्या गृहीशिता, प्रशांति आणि गृहत्याग अशा तीन क्रियांवरून असें दिसून येतें की, संसारसंबंधीं सुखदुःखें कांहीं वर्षे भोगून संसाराचा कंटाळा येऊं लागला ह्मणजे घरचीं कामें मुलाला सोंपवून आपण आत्मकल्याण आणि परोपकार करण्यासाठीं उद्युक्त व्हावें, आणि विरक्तवृत्ती ठेऊन लोकांस धर्मोपदेश करावा; ह्याप्रमाणें तो गृहस्थाचार्य वागूं लागतो. तेव्हां ह्याच्या हातानें सहसा अनुचित कर्म घडण्याचा संभव नाहीं. अनुचित कर्म बहुतकरून तारुण्य वयांत घडत असतें. ह्या गृहस्थाचार्याचें तरुणपण संसारांत जात असल्यामुळें व उतार वयांत ह्याला गृहस्थाचार्यपणा प्राप्त होत असल्यामुळें ह्याची विषयवासना निमालेली असते. हा विद्वान आणि विरक्त असल्यामुळें ह्याच्या उपदेशाचा ठसा लोकांच्या मनावर चांगला उमटण्याचा संभव आहे. ह्यानें आपल्या योग्यतेला अनुसरून गृहस्थाचार्य हें नांव धारण केल्यामुळें ह्याचा फाजील डौल आहे असें कोणालाही वाटणार नाहीं. हा आपली पादपूजा करून घेणार नाहीं: व आपणास निर्ग्रंथ गुरु ह्मणून कोणी नमोस्तु केल्यास त्यास तो मनाईही करील. कारण त्याला नामधारी भट्टारकाप्रमाणें कल्पित मान मिळविण्याची इच्छा नाहीं. त्यामुळें डौलाचा फाजील खर्च ठेवण्याचीहि ह्याला जरूरी राहणार नाहीं. फक्त साध्यां कपड्यांनीं वागून एखादा दुसरा मनुष्य स्वयंपाकासाठीं बरोबर घेऊन गांवोगांव धर्मोपदेश करीत फिरेल. ह्याच्या खर्चाचें ओझें फार आहे असें कोणालाही वाटणार नाहीं. हा श्रावक लोकांशीं मिळून मिसळून वागल्यामुळें ह्याच्या हातानें धर्मोपदेशाचें काम अधिक चांगले होईल. एकंदरींत हल्लीं दिसत असलेल्या भट्टारकापेक्षां ह्याच्या धर्मोपदेशाचें काम अधिक चांगलें होऊन कमी खर्चांत होईल असें मानण्यास कांहीं हरकत नाहीं.

हल्लीं दोन तीन ठिकाणीं भट्टारकाच्या गाद्या रिकाम्या झालेल्या आहेत, त्यावर नवीन भट्टारक बसविण्याच्या खटपटी चालल्या आहेत. व त्यावर अविवाहित तरुण मुलांना बसविण्याविषयीं वाटाघाटी होत

आहेत. अविवाहित तरुण मुलांना ब्रह्मचर्याची दीक्षा अथवा मुनिपदाची दीक्षा देण्याचे विधी सांपडतात. परंतु भट्टारकाची दीक्षा देण्याचा विधी कोठेंही सांपडत नाहीं. असें असून त्याला महाव्रती अशा मुनीची दीक्षा देतात व लागलीच करवतकाठी धोतर जोडा व जरीकाठी शालजोडी आणि किनखापी टोपी त्याला घालतात. ह्या बहुमानाच्या डौलामध्यें तो गुंग झाल्यामुळें शास्त्राध्ययन त्याच्या हांतून होत नाहीं. लोक त्याच्या पाया पडूं लागल्यामुळें त्याला कोणाचाही धाक राहात नाहीं. अडाणी लोकांला आपल्या दांभिक डौलानें वश करून घेण्याकडे त्याची प्रवृत्ती वहात जाते. व त्यामुळें विद्वत्ता संपादन करण्याचे परिश्रम त्याच्या हांतून होत नाहींत. त्याच्या हातून ब्रह्मचर्य पाळलें जात नाहीं ही गोष्ट कित्येक भट्टारक लोकांच्या संबंधानें सर्वत्र प्रसिद्ध आहे. तेव्हां अविवाहित तरुण माणसांनां ब्रह्मचर्याची दीक्षा देऊन ती न पाळली गेल्यानें पातकाचें ओझें घेण्यापेक्षां व पुनः पश्चाताप करण्यापेक्षां संसार भागवून विद्वान अशा विरक्त झालेल्या माणसाला गृहस्थाचार्य नेमून त्याच्या कडून धर्मोपदेशाचें काम करून घेतल्यास तें उत्तम होईल, सशास्त्र होईल, आणि सर्वमान्य होईल, यांत शंका नाहीं.

गृहस्थाचार्य हें नांव थोडेसें अपरिचित आहे; परंतु तें महापुराणांत श्रीमज्जिनसेनाचार्यांसारख्या विद्वान आणि सर्वमान्य आचार्यांनीं वर्णन केलेलें आहे. तेव्हां भट्टारक नांवाच्या अति उंच पदव्या देऊन त्या पदव्याची पायमल्ली न करतां संसारांतून विरक्त झालेल्या विद्वान आणि सदाचरणी माणसाला गृहस्थाचार्य नेमून त्याच्याकडून धर्मोपदेशाचें काम करून घ्यावें हें फार चांगलें आहे.

सोलापूर,
ता. २४।९।१७. } हिराचंद नेमचंद दोशी.

स्वाध्यायाची उत्तम सोय.

मराठी पुस्तकें.

	रु.	आ.
पुण्याश्रव पुराण ओवीबद्ध	२	८
उपदेशरत्नमाला	१	०
त्रिवर्णाचार	३	०
पद्मनंदी पंचविंशति	३	०
जंबुस्वामी पुराण	१	०
जैनधर्मादर्श ...	१	०
पंचास्तिकाय समयसार....	१	०
देवागमस्तोत्र	१	८
जिवंधर चरित	०	१२
जैनकथा सुमनावली....	०	१२
अठरा तीर्थंकर चरितें	०	१२
सम्यक्त कौमुदी	०	१०
तत्वार्थाचा मराठी अर्थ	०	१२
वसुनंदी श्रावकाचार....	०	१०
क्रिया मंजिरी	०	१२
यशोधर चरित	०	८
प्रश्नोत्तर माणिक्यमाला	०	८
जैनसिद्धान्त प्रवेशिका	०	६
षोडश कारण भावना	०	४
जैनव्रत कथा ...	०	४
जैन ऐतिहासिक स्त्रिया	०	४
रूपिणी	०	६
जैन लग्नविधी	०	४
रत्नकरंड मराठी कविता	०	४

हिंदी भाषाके ग्रंथ.

	रु.	आ.
भगवती आराधना	४	०
ज्ञानार्णव	४	०
गोम्मटसार कर्मकांड	२	०
पद्मपुराण	६	०
हरिवंशपुराण	५	०
पांडवपुराण	२-१२	
तेरहद्वीपविधान ...	२-१२	
आत्मख्याति समयसार....	४	०
सर्वार्थसिद्धि	४	०
स्याद्वादमंजरी	४	०
प्रद्युम्नचरित्र	२	१२
नाटकसमयसार ...	२	८
श्रावकधर्म संग्रह	२	४
प्रवचनसार	३	०
धर्मसंग्रह श्रावकाचार ...	२	०
मोक्षमार्ग प्रकाश	१	१२
विश्वलोचनकोश ...	१	८
श्रेणिक चरित्र	१	१२
भक्तामरकथा यंत्रमंत्रकी...	१	४
पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय	१	४
स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा....	१	८
न्यायदीपिका	०	१२
चरचा शतक	०	१२
चोवीस तीर्थंकरपूजा	०	१२

मराठी पुस्तकें.

	रु.	आ.
बालबोध जैनधर्म भा.३-४	०	४
पार्श्वनाथ चरित्र ...	०	२
महावीर चरित्र ...	०	२
सामायिक पाठावली....	०	३
देशभूषण कुलभूषण चरितसुधा		४
गजकुमार चरित्र	०	३
दशलक्षणिक धर्म	०	२
महतिसागर चरित्र	०	२
श्रुतावतार कथा	०	३
नेमिदूतकाव्य	०	२
नेमिदूतकाव्य कविता	०	३
भजन सद्बोधमालिका	०	४
श्रावकप्रतिक्रमण	०	४
श्रावकप्रतिक्रमण कविता	०	१
बुधद्धर्माचे अमोल्य नियम	०	१
द्वादश अनुप्रेक्षा	०	८
भक्तामर अर्थ	०	३
हिंसानिषेध	०	२
स्मृतिपटल	०	२
रविवार व्रतकथा	०	४
कुंदकुंदाचार्य चरित्र	०	३
जैन मेळ्याची पदें	०	१
पद्यावली	०	१
ईश्वर कांहीं करतो काय ?	०	४

हिंदी भाषाके ग्रंथ.

	रु.	आ.
भाषापूजा संग्रह	०	४
भक्तामर स्तोत्र अर्थ	०	४
द्रव्यसंग्रह ...	०	४
रत्नकरंड	०	४
जैनपद संग्रह भाग १	०	४
जैनपद संग्रह भाग २	०	६
जैनपद संग्रह भाग ३	०	४
जैनपद संग्रह भाग ४	०	८
भुधर जैनशतक	०	१०
क्रियाकोश	१	८
हिराचंद अमोलिकची पदें	०	८
दर्शनकथा छंदबंदी	०	६
अकलंकस्तोत्र	०	३
जैनशतक हिंदी अर्थ	०	१२
वृंदावन पूजा	०	१२
पार्श्वनाथ चरित्र छंदबंदी	१	८
भाषापुजा	०	८
चोविसठाण चर्चा ...	०	६
बृहत द्रव्यसंग्रह	२	०
सिद्धांतप्रवेशिका	०	३
मृत्युमहोत्सव	०	३
यशोधर चरित्र हि. अर्थ	२	०
नर्कचित्रादर्श ...	०	१०
नित्यपाठसंग्रह हिंदी	०	८

जैन बुकडेपो सोलापूर.

सोलापूर सच्चिदानंद छा० छा०

जैन बुकडिपो सोलापूर येथें

विक्रीस तयार असलेल्या पुस्तकांची यादी.

मराठी भाषेची पुस्तकें.

पुस्तकांचीं नांवे.	रु० आ०
सार्वधर्म.	०—१
भट्टारक	०—१
सप्ततत्त्वविचार.	०—१
सामायिक पाठावली.	०—३
जैनधर्माची माहिती.	०—२
रत्नकरंड श्रावकाचार (कविता अन्वय व अर्थसहीत.).	०—४
महावीरचरित्र.	०—३
पार्श्वनाथ चरित्र.	०—२
पद्मनंदी श्रावकाचार.	०—२
गजकुमार चरित्र (पद्यमय.)	०—३
नेमिदूत काव्य.	०—१
जैनधर्मस्मृतिपटल.	०—२
महतीसागराचें चरित्र.	०—१
कल्याणमंदिर सार्थ.	०—३
विषापहारस्तोत्र. ,,	०—१
भूपालस्तोत्र. ,,	०—१
यशोधरपुराण (ओंवीबद्ध.)	०—१२
एकीभावस्तोत्र सार्थ.	०—१॥
जैनविवाह पद्धति.	०—४
देशभूषण कुलभूषण चरित्रसुद्धा.	०—४
सामायिक पाठ अष्टदलकमळाचें चित्र व विधिसह.	०—२

२ जिनबुकडिपो सोलापूर येथील वि० पुस्तकांची यादी.

पुस्तकांची नांवें.	रु० आ०
जैनलग्नविधि.	०—४
उपदेशरत्नमाला (ओंनीबद्ध)	१—०

संस्कृत भाषेची पुस्तकें.

कातंत्ररूपमाला.	१—०
अलंकारचिंतामणि.	०—१२
पंचाध्यायी.	०—८
परीक्षामुख.	०—८
पार्श्वाभ्युदयकाव्य.	०—१२
जैनकथाद्वात्रिंशति.	०—२
गोमट्टसार मूल.	०—३
प्रमेय कमलमार्तंड.	५—०
राजवार्तिक.	५—०

इंग्रजी.

इंट्रोडक्शन टू जैनिझम.	०—८

हिंदी भाषेकी पुस्तकें.

ज्ञानार्णव.	४—०
भगवती आराधना.	४—०
सर्वार्थसिद्धि.	४—०
स्याद्वादमंजरी.	४—०

व्यंतरांच्या आराधनेपासून नुकसान.

लेखक व प्रकाशक

हिराचंद नेमचंद दोशी, सोलापूर,

मंगळवार पेठ, घरनंबर २८८६ येथे प्रसिद्ध केले.

प्रिंटर,

मोहनीराज रामचंद्र काकडे, सोलापूर,

यांनी नवीपेठ, घरनंबर ६६ येथें "कल्पतरु"

छापखान्यांत छापिले.

आवृत्ति १ ली, प्रती १०००

सन १९१० इसवी.

किंमत १ आणा.

व्यंतरांच्या आराधनेपासून नुकसान.

व्यंतरदेव हे रागी द्वेषी असतात. ते जिनधर्माला सहाय्य करणारे असले तरी रागद्वेषांपासून मुक्त झाले असे नाहीं. ह्यांची आराधना जे लोक करतात ते कांहीं तरी त्यांच्यापासून आपणास मिळावें अशा लोभबुद्धीनें, अथवा आपणावर त्यांनीं कांहीं संकट आणूं नये अशा भीतीनेंच करतात. आपणांस धनप्राप्ति व्हावी, बायको मिळावी, मुलगा व्हावा, व्याधि मिटावी इत्यादि लालसेनें त्यांची उपासना करीत असलेले बरेच जैन कांहीं दृष्टीस पडतात. परंतु जैनशास्त्रांत व्यंतरदेवांची भक्ति केल्यानें कांहीं फायदा नाहीं, इतकेंच नव्हे परंतु, मिथ्यात्वाचा दोष मात्र लागतो असें आढळतें. तो कल्याणाचा कार्तिकस्वामीनुप्रेक्षा ग्रंथांत ह्मटलें आहे.

भत्तीए पुज्जमाणो विंतरदेवो वि देदि जदि लच्छी ।
तो किं धम्मं कीरदि एवं चिंतइ सद्दिट्ठी ॥ ३२० ॥

छाया:—भक्त्या पूज्यमानः व्यंतरदेवः अपि ददाति यदि लक्ष्मीं ।
तत् किं धर्मः क्रियते एवं चिंतयति सद्दृष्टिः

अर्थ:—भक्तिपूर्वक व्यंतर देवाची पूजा केल्यानें जर ते लक्ष्मी देतात तर मग धर्म कशासाठीं करावा? असा विचार सम्यग्दृष्टि करीत असतात.

दोससहियं पि देवं जीवं हिंसाइसंजुदं धम्मं ।
गंथासत्तं च गुरुं जो मण्णदि सो हु कुदिट्ठी ॥ ३१८ ॥

छाया:—दोषसहितं अपि देवं जीवहिंसादि संयुक्तं धर्मं ।
ग्रंथासक्तं च गुरुं यः मन्यते सः स्फुटं कुदृष्टिः ॥

अर्थ:—रागद्वेषादि दोषांनीं युक्त देव, जीवहिंसादियुक्त धर्म आणि वस्त्रादिपरिग्रह धारण करणारा गुरु, जो मानील तो मिथ्यादृष्टि आहे असें पक्कें समजावें.

णिज्जिय दोसं देवं सव्वजिवाणं दयावरं धम्मं ।
वज्जिय गंथं च गुरुं जो मण्णदि सो हु सद्दिट्ठी ॥ ३१७ ॥

छाया:— निर्जित दोषं देवं सर्वजीवानां दयापरं धर्मं ।
वर्जितग्रंथंच गुरुं यः मन्यते सः स्फुटं सद्दृष्टिः ॥३१७॥

अर्थः—रागद्वेषादि दोषांनीं रहित असा देव, सर्व जीवांवर दया करणारा असा धर्म, आणि वस्त्रादि परिग्रहरहित असा गुरु जो मानील तोच सम्यग्दृष्टि समजावा.

ह्यावरून पाहतां व्यंतर देवाची उपासना निरर्थक आहे असें ठरतें. व्यंतर देवाची उपासना जे लोक करतात ते कांहीं तरी धनप्राप्ति व्हावी, पुत्र प्राप्ति व्हावी, अथवा शरीरांतील व्याधि मिटावी इत्यादि लोभानेंच करीत असलेले दिसून येतात असें वर सांगितलें आहे. त्यांना जेव्हां एका देवाच्या अथवा शासन देवतांच्या आराधनानें इष्ट फल प्राप्त होत नाहीं असें आढळून येतें तेव्हां ते दुसऱ्या देवाची आराधना करूं लागतात. त्यानें नाहीं झाली ह्मणजे तिसऱ्याची करूं लागतात. असें करतां करतां ज्या देवाच्या आराधनेनें आपली व्याधि मिटेल अथवा इष्ट फळ प्राप्त होईल, त्याच्या आराधनेमध्यें ते निमग्न होऊन जातात. मग तो देव क्षेत्रपाळ असो, मारुती असो, खंडोबा असो, पद्मावती असो, कालिकामाता असो किंवा पीरलाडलेमशाक असो. त्याच्याच भक्तीमध्यें ते दत्तचित्त होतात व मग त्या उपासनेला शास्त्राज्ञा नसली, मिथ्यात्वाचें पातक लागत असलें, हिंसा घडत असली तरी तिकडे लक्ष न देतां, त्या देवाच्या उपासनेंत इतके तल्लीन होऊन जातात कीं कांहीं केल्यानें ते त्यापासून पराङ्मुख होत नाहींत. अशीं उदाहरणें जागोजाग दिसून येतात. त्यांपैकीं एक दोन उदाहरणें दक्षिण कानडा जिल्ह्यांतील पंडित उदयलालजी कासलीवाल यानीं जैनहितैषीच्या सन १९१६ च्या जून महिन्याच्या अंकांत "मेरा दक्षिणमें प्रवास" ह्या मथाळ्याखालीं दिलीं आहेत. त्यांतील सारांश आह्मी येथें देतों. ते ह्मणतात—

"दक्षिण कानडा जिल्ह्यांतील जैन लोकांत धार्मिक ग्रंथाच्या पठनपाठनाचा विचार प्रायः नष्ट झालेला आहे. आणि ह्याच कारणामुळें त्यांची धार्मिक प्रवृत्ति आज कित्येक गोष्टींत फारच बिघडून गेली आहे. त्या-

त्यामध्ये निर्माल्यभक्षणाचा प्रचार, अन्य देवदेवतांचे विशेषेंकरून आराधन, इत्यादि कित्येक गोष्टी इतक्या प्रचलित झाल्या आहेत कीं, त्यांच्यामुळें ते आपल्या धर्माला विसरल्यासारखे झाले आहेत. आमच्या ऐकण्यांत येथपर्यंत आलें आहे कीं, कांहीं लोक असेही आहेत कीं, ते आपल्या कार्यसिद्धीकरितां देवदेवीचे नवस करून हिंसक जातीच्या लोकांकडून जनावरांचे बळीही देववितात. × × × अशीच एक हृदयद्रावक घटना मूडबिद्रीमध्यें एका प्रतिष्ठित जैन गृहस्थाकडून चालू आहे. हें ऐकून अंतःकरणाला थरकांप सुटतो ! मूडबिद्रीपासून सुमारें एक मैलाच्या अंतरावर एक ' महामारी ' नांवच्या देवीचें देऊळ आहे. त्यांत तसें तर डुकरीं, बकरें इत्यादि कित्येक जनावराचे बळी दिले जातात; परंतु दर शनिवारीं कोंबडी फार कापली जातात. त्यांच्या रक्तानें देवळाचें आंगण सगळें तर होऊन जातें. ह्या देवळाची व्यवस्था मूडबिद्री येथील एका जैन गृहस्थाकडे आहे. सरकारांतून ह्यांस ह्या व्यवस्थेबद्दल कांहीं रुपये दरसाल मिळत असतात. त्या पैशांतून ते ह्या देवळाची सर्व व्यवस्था करीत असतात. × × × त्यांनीं मनांत आणलें तर हा अनर्थ ते बंदही करूं शकतील. परंतु ते कां बंद करीत नाहींत ह्याचें कारण कांहीं समजत नाहीं. " इत्यादि वर्णन आहे.

"ह्या जैन गृहस्थाला ह्या महामारी देवीचें आराधन करण्याचें कारण असें ऐकण्यांत येतें कीं, त्यांस तरुणपणीं संधिवाताचा रोग झाला होता. तो बरा होण्यासाठीं त्यानें कित्येक जिनशासन देवतांची आराधना केली, परंतु तो रोग मिटला नाहीं. तेव्हां त्यानें ह्या महामारी देवीचें आराधन सुरू केलें, त्यायोगानें व्याधि मिटली. तेव्हांपासून त्यानें ह्या माहामारी देवीची आराधना चालू ठेवली आहे. "

ह्यावरून सिद्ध होत आहे कीं, व्यंतर वगैरे जिनशासन देवतांचें आराधन हळूहळू महामारीसारख्या हिंसाकारक आराधनेला नेऊन पोंहोचविते.

दुसरें एक उदाहरण पंडित उदयलालजींनीं त्याच जिल्ह्यांतील भूत-

पांड्य कायदा करण्यासंबंधान्या कारणाचें एका जैन राजाचें दिलें आहे. त्या कायद्यानें त्या जिल्ह्यांतील जैनांमध्यें आपल्या इष्टेटीचा वारस आपला पुत्र न होतां आपला भाचा होतो. ह्यामुळें जैन लोकांचें फार मोठें नुकसान होत आहे. ह्मणजे पूर्वी मूडबिद्रींत जैन लोकांचीं सुमारें सातशें घरें, आणि कारकल येथें तीनशें घरें होतीं. त्यांच्या जागीं हल्लीं मूडबिद्रींत पंचवीस घरें आणि कारकल येथें पांच घरें जैनांचीं उरलीं आहेत. इतका व्हास ज्या भूतपांड्य नांवच्या कायद्यानें झाला, त्याची दंतकथा अशी आहे.

"प्राचीनकाळीं ह्या प्रांतांत भूत'पांडि' नांवचा एक मोठा धनी राजा होऊन गेला. त्याला बारा पुत्र होते. त्या राजानें एकवेळीं जहाज चालविण्याचा विचार करून एक मोठें थोरलें जहाज तयार करविलें. तें जहाज जेव्हां समुद्रांत सोडलें आणि चालू करण्याची तयारी झाली, तेव्हां तें पुढें न जातां तेथेंच अडकून राहिलें. तें पुढें चालविण्यासाठीं पुष्कळ प्रयत्न केले, परंतु कांहीं केल्यानें तें पुढें चालेना. देव-देवतांच्या पुष्कळ प्रार्थना केल्या; पुष्कळसे नवस केले; तरी पण तें जहाज चालेना. रात्रींच्या वेळीं राजा ह्या चिंतेंत असतांना त्यावेळीं एका यक्षानें येऊन सांगितलें कीं, "तूं मला एक पुरुष बळी देशील तर मी तुझें जहाज चालूं देईन." राजानें सकाळीं उठून ही हकीकत आपल्या बायकोला सांगितली व आपल्या बारा पुत्रांपैकीं एक पुत्र त्या यक्षासाठीं बळी देण्यास मागितला. स्त्रीनें उत्तर दिलें कीं, 'मला तुमच्या धनदौलतीची इच्छा नाहीं. मी आपल्या मुलाला कांहीं केलें तरी देणार नाहीं.' स्त्रीचें हें कोरडें उत्तर ऐकून राजा भूतपांडि निराश झाला. त्यानें आपल्या स्त्रीला अनेक तऱ्हेनें समजावलें, परंतु तें सगळें व्यर्थ गेलें. कोणताही उपाय नाहीं असें वाटून दुःखाच्या आणि पश्चात्तापाच्या लहरींत तो स्वतः आपलाच बळी देण्यास तयार झाला. ही गोष्ट त्याच्या बहिणीस समजली. त्या बहिणीचें आपल्या भावावर अतिशय प्रेम होतें. तिला एकुलता एकच मुलगा होता. ती भावापाशीं येऊन ह्मणाली, "भाऊ, जहाज चालविण्यासाठीं तुह्मांला नरबळीचीच जरूर आहे ना?

एवढ्यासाठीं इतकी चिंता करण्याची काय आवश्यकता आहे? माझ्या मुलाला आपण ह्या कामासाठीं खुशाल घ्यावें." वहिणीचें हें प्रेम—हा अपूर्व स्वार्थ-त्याग-पाहून राजा भूतपांडि फार चकित आणि प्रसन्न झाला. नंतर तो आपल्या भाच्याला बळी देण्यासाठीं जहाजाकडे घेऊन गेला. आणि तेथें त्यास बळी देण्याची तयारी करीत आहे इतक्यांत तो यक्ष प्रगट होऊन ह्मणाला, "बस्स, मी संतुष्ट झालों; मला आतां नरबली नको आहे. ह्याच्याऐवजीं मी तुमच्यापाशीं एवढें मागतों कीं, तुह्मी आपल्या सर्व संपत्तीचे मालक आपल्या भाच्यास करा, आणि पुढें आपल्या सर्व राज्यांत असा कायदा करून टाका कीं, आजपासून बापाच्या संपत्तीचा वारस त्याचा पुत्र न होतां, त्याचा भाचा होईल." भूतपांडि राजानें यक्षाच्या ह्मणण्याप्रमाणेंच केलें. तेव्हांपासून ह्या प्रांतांत भाचा मालक होण्याची रीति चालत आली आहे."

पहा, एका जैन राजानें यक्षावर भरंवसा ठेवल्यामुळें त्याचें स्वतःचें आणि त्याच्या प्रजेचें केवढें मोठें नुकसान झालें? हा कायदा मोडावा अशी सरकारची इच्छा आहे. परंतु तिकडील जैन लोकांपैकीं कांहीं अनुकूल आणि कांहीं प्रतिकूल असल्यामुळें सरकारही त्यांत फारसें लक्ष देत नाहीं. ह्या कायद्यामुळें तिकडील जैन लोकांची वस्ती तर फारच कमी झाली आणि हल्लीं जी थोडी उरली आहे त्यांचेही आपसांत ह्या कायद्यामुळें कोर्टांत हजारो रुपये खर्च होत आहेत व दिवसेंदिवस निर्धनपणा वाढत आहे.

विद्यासाधन करण्यासाठीं देवतांचें आराधन करावें लागतें असें कोणी कोणी ह्मणतात. परंतु प्राचीन आचार्यांच्या ग्रंथांत तसें आढळत नाहीं. श्रीपद्मपुराणांत रावण, कुंभकर्ण आणि बिभीषण यांनीं विद्यासाधन केल्याचें वर्णन आहे. परंतु त्यावेळीं त्यांनी कोणत्याही देवतांचें (यक्षयक्षिणीचें) आराधन केल्याचें ह्मटलेलें नाहीं. रावण, कुंभकर्ण आणि बिभीषण असे तिघे भाऊ भीम नांवच्या महान् भयंकर अरण्यांत विद्या साध्य करण्यासाठीं गेले. त्यांनीं 'ॐ नमो अरहंताणं' ह्या अष्टाक्षरी मंत्राचे लक्ष जप केले. त्या योगानें दीड दिवसांत त्या तिघांनाही सर्व कामप्रदाविद्या साध्य झाल्या. त्या

विद्या ह्यांना अन्न पोहोंचवीत असत, ऱ्यामुळें ह्यांना क्षुधेची बाधा झाली नाहीं. नंतर त्यांनीं चित्त स्थिर करून ' अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यो नमः ' ह्या षोडशाक्षरी मंत्राचे सहस्रकोटि जप सुरू केले. त्यावेळीं जंबूद्वीपाचा अधिपति अनावृति नांवाचा यक्ष आपल्या स्त्रियांसहित क्रीडा करीत तेथें आला. त्याच्या स्त्रियांनीं ह्या तिघा भावांचें तारुण्य आणि सुस्वरूप पाहून ह्मटलें, ' तुह्मी कशासाठीं तप करितां ? उठा, घरीं चला. ' असें त्यांना त्यांनीं समजाऊन सांगितलें. परंतु त्यांनीं तिकडे लक्ष दिलें नाहीं. तेव्हां त्या रागावल्या व जवळ येऊन त्यांनीं आपलीं कुंडलें त्यांच्या छातीवर मारलीं. तरी पण ते ध्यानांतून डगमगले नाहींत. नंतर त्या देवींनीं त्या अनावृत देवाला हें दाखविलें. त्यानें ह्या तिघांला ध्यानांत मग्न झालेले पाहून विचारलें कीं, ' तुह्मी कोणत्या देवाचें आराधन करीत आहांत ? ' तरी पण त्यांनीं उत्तर दिलें नाहीं. चित्रासारखे चुप बसून राहिले. तेव्हां त्या अनावृत यक्षाला राग आला व तो ह्मणाला कीं, ' जंबूद्वीपाचा देव तर मी आहे, मला सोडून तुह्मी कोणाचें ध्यान करीत आहांत ? ' असें ह्मणून त्यांना उपद्रव देण्यासाठीं त्यानें आपल्या चाकरांस आज्ञा केली. त्या चाकरांनीं त्या तिघांला नानाप्रकारचा त्रास दिला. मोठमोठे डोंगर आणून त्यांच्यापुढें आदळले; सर्प होऊन त्यांच्या अंगावर वेटाळे घातले; वाघ होऊन तोंड फाडून उभे राहिले; दावाग्नि पेटविला, असे अनेक उपद्रव केले, परंतु ते ध्यानांपासून डगले नाहींत. नंतर त्यांनीं ह्यांचा पिता जो रत्नश्रवा त्याला जिंकून कुटुंबासुद्धां बांधून आणल्याचें दाखविलें. त्यांची मातोश्री केकशीला मारीत असल्यामुळें ती मोठ्यानें विलाप करीत आहे असें दाखविलें. इत्यादि अनेक प्रकारें त्रास दिला, तरी पण ते डगले नाहींत. नंतर त्यानीं रत्नश्रवाचें डोकें कापून रावणाच्यापुढें आणून दाखविलें. कुंभकर्णाचें आणि बिभीषणाचें डोकें कापून आणलेलें रावणास दाखविलें, परंतु रावण डगला नाहीं. रावणाचें डोकें कापून कुंभकर्ण आणि बिभीषणाला दाखविलें, त्यामुळें त्यांच्या मनांत कांहींसें दुःख झालें. थोडक्याच दिवसांत रावणाला पुष्कळ महाविद्या सिद्ध झाल्या. त्यां-

पैकीं नभःसंचारिणी, कामदायिनी, कामगामिनी, दुर्निवारा, जगतकंपा इत्यादि सत्तावन विद्येचीं नांवें पद्मपुराणांत दिलीं आहेत, व त्याचप्रमाणें अनेक महाविद्या रावणाला प्राप्त झाल्या असें ह्मटलें आहे. कुंभकर्णाला सर्वहारिणी, अतिसंवर्धिनी, जृंभिनी, व्योमगामिनी, निद्रानी अशा पांच विद्या सिद्ध झाल्या. बिभीषणाला सिद्धार्था, शत्रुदमनी, व्याघाता, आणि आकाशगामिनी, अशा चार विद्या सिद्ध झाल्या. याप्रमाणें विद्या सिद्ध झाल्याचें पाहून तो जंबूद्वीपाचा स्वामी आणि यक्षाचा पति अनावृत यक्ष त्यांची फार स्तुति करूं लागला. त्यानें दिव्य वस्त्रेंभूषणें त्यांना दिलीं व मी तुह्मांला नेहमीं मदत करीन असें ह्मणून आपल्या परिवारासह निघून गेला. "

ह्यावरून इतकें दिसून येतें कीं, रावण, कुंभकर्ण आणि बिभीषण ह्यांनीं विद्यासाधन करतेवेळीं कोणत्याही व्यंतर देवतांचें आराधन केलें नाहीं. फक्त " ॐ नमो अरहंताणं " ह्या आठ अक्षरांचा मंत्र व " अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यो नमः " अशा षोडशाक्षरी मंत्राचा जप करीत बसले, आणि जंबूद्वीचा अधिपति अनावृत यक्ष आपल्या स्त्रियांसहित आणि नोकरांसहित येऊन त्यांच्या विद्यासाधनामध्यें विघ्न आणूं लागला तरी हे डगले नाहींत, व त्यांना विद्या साध्य झाल्या.

तसेंच पुढें रावण बहुरूपिणीविद्या साध्य करतेवेळीं श्रीशांतिनाथ तीर्थंकराच्या मंदिरांत गेला, तेथें अभिषेक पूजा करून हातांत स्फटिकाची माळा घेऊन, ती छातीशीं लाऊन, मंदिरांत पद्मासन घालून, एकाग्रतेनें विद्या साधित बसला. तेव्हां अंगदानें पुष्कळ उपद्रव केला, परंतु रावण डगला नाहीं, व मग बहुरूपिणी विद्या येऊन उभी राहिली. रावणानें ध्यान विसर्जन केलें, व शांतिनाथस्वामीच्या मंदिराला प्रदक्षिणा करून घरीं आला.

ह्यावरून पाहतां ह्यावेळींसुद्धा त्यानें कोणत्याही व्यंतर देवतांचें आराधन केलें नाहीं. बहुरूपिणीविद्या प्रत्यक्ष येऊन उभी राहिली तरी देखील त्यानें तिचें आराधन केलें नाहीं. तेव्हां विद्यासाधन करतेवेळीं व्यंतर देवाचें आराधन करावें लागतें हें ह्मणणें सिद्ध होत नाहीं.

कोणी कोणी ह्मणतात, भक्तामरकथेच्या पुस्तकांत संकटें दूर होण्यासाठीं शासन देवताचें आराधन करण्याचें सांगितलें आहे. परंतु मूळ भक्तामर स्तोत्र श्रीमानतुंग स्वामींनीं विक्रम संवत् ११०० च्या सुमारास रचिलें आहे. त्याच्या अठ्ठेचाळीस श्लोकांत कोठेंही यक्षयक्षिणी अथवा शासन देवता, चक्रेश्वरी, पद्मावतीचें नांवसुद्धां नाहीं. सर्व ठिकाणीं जिनेंद्र भगवंताच्या विभूतीचें वर्णन, त्यांच्या नाममंत्राचा आणि चरणरजाचा प्रभाव वर्णन केलेला आढळतो. भक्तामरकथेचें पुस्तक विक्रम संवत् १६६७ सालीं रायमल्ल नांवच्या हुंबड श्रावकानें लिहिलें आहे, तें कोणत्या पुस्तकाच्या आधारानें लिहिलें हें त्यांत सांगितलें नाहीं. ह्यावरून त्या कथेला प्राचीन कुंदकुंदाचार्यादि आचार्यांचा आधार असेल असें वाटत नाहीं; तथापि त्या कथेमध्यें कोणीहि शासन देवतांचे अथवा यक्षयक्षिणीचें आराधन केल्याचें दिसून येत नाहीं. संकटसमयीं कोणी कोणी भक्तामर स्तोत्राचा किंवा त्यांतील एक दोन श्लोकांचा पाठ केला आहे व त्यायोगानें चक्रेश्वरी देवी आली, तिनें संकट दूर केलें आणि मदत केली आहे, असें व दिसून येतें.

१ श्रीमानतुंगस्वामीला भोजराजानें बेड्या घातल्या व बंदीखान्यांत ठेऊन कुलुपें लाविलीं होतीं. मानतुंगस्वामींनीं आदिनाथ भगवंताची स्तुति सुरू केली. त्यायोगानें बेड्या तुटत चालल्या व कोठड्यांचीं कुलुपेंही गळून खालीं पडलीं (मंत्र नाहीं, देवताराधन नाहीं).

२ श्लोक १ । २ हेमदत्त शेठजीला भोजराजानें बांधून खोल आडांत टाकलें. त्यानें तेथें दोन श्लोकांचा पाठ केला. त्याच्या प्रभावानें चक्रेश्वरी देवी प्रगट झाली. तिनें त्याला मोकळें केलें. आडांतील पाणी गुडघ्याइतकें झालें. देवीनें राजाला दुखणें आणलें. तेव्हां हेमदत्त शेठीनें भक्तामरच्या श्लोकांचे योगानें जल मंत्रून राजावर शिंपडलें, राजाला आराम झाला (देवताराधन नाहीं).

३ श्लोक ३।४, सुमति वैश्य नावेंतून जात असतांना नांव फुटली. सुमतीला ह्या दोन श्लोकांचें स्मरण झालें व त्यानें ह्या श्लोकांचे एकाग्र

जिनाचें ध्यान केलें. त्यांच्या प्रभावानें चक्रेश्वरीनें त्यांचें सहाय्य केलें. तो आपल्या बाहूंनीं पोहून समुद्रकिनाऱ्यावर पोहोंचला. देवीनें त्याला रत्नें दिलीं. (यांत देवताराधन नाहीं.)

३. श्लोक ५।६।७ सुधन नांवाच्या श्रेष्ठीचें घर कापालिकाच्या हुकुमावरून पिशाच्चानें दगड भरून बुजून टाकलें. सुधन श्रेष्ठीनें भक्तामराचें स्मरण चालविलें. चक्रेश्वरी प्रगट झाली, तिनें विघ्न दूर केलें. (येथें देवताराधन नाहीं.)

४. श्लोक ८।९ केशवदत्त नांवाच्या वैश्यानें भक्तामराचा पाठ संकटसमयीं केल्यामुळें तो सिंहाच्या तावडींतून वांचला. आडांत ढकलून दिला असतां तेथून निघाला, चोरांच्या सपाट्यांतून सुटला, आणि पाण्यावांचून व्याकूळ होत असतां त्यास पाणी मिळालें. (येथेंही देवताराधना नाहीं.)

याप्रमाणें ४८ श्लोकांच्या तेहतीस कथा आहेत. त्या सर्वांमध्यें भगवंताची स्तुति आणि भक्तामराच्या श्लोकांचा पाठ केल्यामुळें विघ्नें नाहींशीं झालीं असें लिहिलें आहे. त्या स्तुतीमुळें आणि पाठामुळें चक्रेश्वरी देवी येऊन हजर झाली आहे व तिनें सहाय्य केलें आहे. परंतु तिचें स्तवन अथवा आराधना कोणीहि केल्याचें लिहिलेलें नाहीं. तिचें परोक्ष स्तवन आणि आराधना तर नाहींच, परंतु ती प्रत्यक्ष येऊन उभी राहिली, तिनें संकटें नाहींशीं केलीं, द्रव्य दिलें, तरी पण तिची कोणी आराधना अथवा स्तुति केल्याचें दिसत नाहीं, व तिनेंही माझी आराधना करा असें म्हटलेलें नाहीं. तीर्थंकर प्रभूची आराधना करा; सद्गुरूची सेवा करा; असाच तिनें उपदेश केला आहे.

संकटसमयीं देखील देवताराधन (यक्षयक्षिणींचें आराधन) कोणी केल्याचें प्राचीन ग्रंथांत आढळत नाहीं. सीतेला रावणानें हरण करून नेलें व आपल्या बागेंत ठेवलें. तेथें सीतेनें अकरा दिवसपर्यंत उपोषण केलें. परंतु कोणत्याही यक्षयक्षिणीचें आराधन केलें नाहीं. तसेंच रामचंद्रांनीं सीतेला भयंकर अरण्यांत सोडून दिलें होतें, तेथें देखील तिनें

कोणत्याही यक्षयक्षिणींचें आराधन अथवा नवस केले नाहींत. उलट तेथें ती आपल्या पूर्वार्जित कर्माबद्दल पश्चात्ताप करीत व जिनेंद्र भगवंताचें चिंतन करीत असली, इतक्यांत वज्रजंघ राजा तेथून जात असतांना त्यानें सीतेला पाहिलें व आपल्या घरीं नेलें.

सीतेला अग्निकुंडांत प्रवेश करण्यासाठीं रामचंद्रांनीं सांगितलें, हें मोठें भयंकर संकट तिजवर आलें होतें, तरी त्यावेळीं देखील सीतेनें कोणत्याही व्यंतराचें किंवा यक्षयक्षिणींचें अथवा शासन देवतांचें आराधन न करितां फक्त पंचपरमेष्ठींचेंच स्मरण केलें होतें. ह्याविषयीं पद्मपुराणाच्या हिंदी वचनिकेत पत्र १०४८ मध्यें लिहिलें आहे कीं, "जेव्हां कुंडामध्यें अग्नि प्रज्वलित झाला, तो पाहून जवळ असलेल्या स्त्रीपुरुषांच्या डोळ्यांतून अश्रुधारा वाहूं लागल्या; अग्नीच्या धुरानें आकाश सगळें काळेभोर झालें; सूर्य दिसेनासा झाला; जणू काय सीतेचें दुःख त्याला पाहवेना ह्मणून तो कोठें तरी लपून बसला! अग्नीच्या ज्वाळा इतक्या पसरल्या कीं, आकाशांत हजारों सूर्यच फिरूं लागले आहेत आणि त्यामुळें प्रळयकाळच लोटला कीं काय असा भास झाला!! अशा भयंकर अग्नींत उडी टाकण्यासाठीं सीता सती तयार होऊन उभी राहिली आणि स्वयंमें निश्चळ मन करून तिनें कायोत्सर्ग सुरू केला. तिनें आपल्या अंतःकरणांत श्री ऋषभादि चोवीस तीर्थंकरांचें स्तवन केलें; सिद्धांना आणि साधूंना नमस्कार केला. त्यावेळच्या तीर्थंकर मुनिसुव्रतस्वामींचें ध्यान केलें; सर्व प्राण्यांवर दया करण्याचा उपदेश करणारे असे जे आचार्य परमेष्ठी त्यांना नमस्कार केला; सर्व प्राणिमात्रांवर क्षमाभाव ठेऊन ती ह्मणाली, "जर रामचंद्राशिवाय अन्य पुरुषाकडे कायावाचा मनानें स्वप्नांत देखील मी लक्ष दिलें असेल अथवा मी हें खोटें बोलत असेन, तर हे अग्ने, मला भस्म करून टाक; आणि जर मी खरी पतिव्रता, अणुव्रत धारिणी श्राविका असेन तर मला जाळूं नकोस." असें ह्मणून त्या सीता सतीनें पंचनमस्कार मंत्राचा जप करीत अग्निकुंडांत उडी टाकली. परंतु पातिव्रत्याच्या प्रभावानें तो भयंकर

अग्नि देखील स्फटिकासारख्या पाण्यानें जलमय होऊन गेला !! जणूं काय पाताळांतून पृथ्वी फोडूनच ही जलवापिका बाहेर उसळूं लागली आहे असा सर्वांस भास झाला. त्या ठिकाणीं अग्नीचें नांवनिशाणही राहिलें नाहीं. जिकडे तिकडे पाणीच पाणी होऊन गेलें !!! " इत्यादि वर्णन लिहिलें आहे. तेव्हां संकटसमयीं व्यंतरांचें अथवा यक्षयक्षिणींचें किंवा शासन देवतांचें आराधन करावें लागतें असें ह्मणणाऱ्यांनीं हें वर्णन लक्षपूर्वक वांचून पाहावें ह्मणजे त्यांची खात्री होईल. संकटसमयीं पंचपरमेष्ठीच्या नामाचा जप आणि व्रत, शील संयम, तप, दान हींच संकटांतून पार पाडतात असें जैनशास्त्र सांगत आहे.

रामलक्ष्मण रावणाशीं युद्ध करीत असतांना रावणानें लक्ष्मणावर शक्तीचा प्रहार केला. त्यायोगानें लक्ष्मण मूर्छित होऊन पडला. लक्ष्मण मरणार असें समजून रामचंद्र, हनुमान, सुग्रीव, भामंडल हे सगळे घाबरले, व नानाप्रकारचे उपाय शोधूं लागले. परंतु त्यांनीं देवदेवताचें आराधन केलें नाहीं. कोणाचाही नवस केला नाहीं. फक्त औषधोपचारासाठीं विशल्याकुमारिकेला बोलावून आणिलें. तिनें लक्ष्मणाच्या अंगाला चंदनाचा लेप केला, त्या योगानें लक्ष्मण सावध झाला आणि उठून सर्वांशीं बोलूं लागला.

ह्यावरून पाहतां प्राणसंकटाच्यावेळीं देखील व्यंतर देवदेवतांचें आराधन अथवा नवस केल्याचें दिसत नाहीं.

' संशयतिमिरप्रदीप ' नांवाच्या पुस्तकांतील ' शासनदेवता ' प्रकरणांत पंडित उदयलालजी कासलीवाल लिहितात कीं, " शासन देवतांनीं श्री कुंदकुंद, समंतभद्र, अकलंक, विद्यानंदि, वादिराज, मानतुंग, सुदर्शनशेट, महाकवि धनंजय इत्यादि कित्येक महापुरुषांस सहाय्य केलें आहे, त्याअर्थीं त्या आदरपूर्वक विनय करण्यास योग्य आहेत, ह्मणून त्यांचा सत्कार केला पाहिजे. "

वरील उक्तीचा विचार करतांना वर लिहिलेल्या ज्या महापुरुषास शासन देवतांनीं सहाय्य केलें त्यांच्या कथा, कथाकोशांच्या पुस्तकांत नजर पंडितजींनीं

प्रकाशित केलेल्या आहेत. त्या वाचून पाहिल्यास असें दिसून येतें कीं, वर लिहिलेल्या महापुरुषांपैकीं कोणीही शासन देवतास आव्हानन (बोलावण) केलेलें नाहीं. परंतु त्या शासन देवतेनीं त्या महापुरुषांची जिनेंद्र प्रभूवरील भक्ति आणि सम्यक्त्वावर दृढ श्रद्धा पाहून, न बोलावतां आपण होऊन त्याजपाशीं आल्या व त्यांना योग्य साहाय्य करावयाचें तें करून निघून गेल्या. परंतु त्या महापुरुषांनीं त्यांचा कोणत्याही प्रकारचा सत्कार अथवा त्यांची आराधना, पूजन, स्तवन, दान केलेलें दिसत नाहीं. त्यांनीं स्वतः केलें नाहीं व इतर लोकांनीं करावें असेंही आपल्या ग्रंथांत कोठें लिहून ठेवलेलें सदर पंडितजींनीं आपल्या संशयतिमिरप्रदीप नांवच्या पुस्तकांत दाखविलें नाहीं. ह्यावरून शासन देवतांचें आव्हानन, पूजन किंवा आराधन केलें पाहिजे हें ह्मणणें सिद्ध होत नाहीं.

चंद्रगुप्त राजाला सोळा स्वप्नें पडलीं. त्यांची फलश्रुति श्री भद्रबाहु श्रुतकेवलीनीं सांगितली त्यांत पांचव्या स्वप्नाचें फळ असें सांगितलें कीं, पंचमकाळांत देवता मृत्युलोकीं येणार नाहींत. तर मग शासनदेवता आल्या कशा हा एक प्रश्नच आहे.

शासनदेवतांचें स्वागत करण्याविषयीं प्रमाण ह्मणून पंडितजींनीं जिनसेनाचार्यांच्या महापुराणांतील एक श्लोक दिला आहे तो असाः—

विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवताः शांतिहेतवे ।
क्रूरास्तुदेवताः हेया यासां स्याद्वृत्तिरामिषैः ॥

अर्थः विश्वेश्वरादिक देवता ह्या शांतीसाठीं समजाव्या. आणि ज्या मांसभोजन करणाऱ्या क्रूर देवता आहेत त्या त्यागाव्या.

ह्या श्लोकांत 'ज्ञेया' शब्द आहे त्याचा अर्थ 'मानने योग्य है' असा पंडितजींनीं केला आहे, तो ओढूनताणून केला असल्याचें दिसतें. कारण ह्यांचा सत्कार करावा असा जर जिनसेनाचार्यांचा हेतु असता तर त्यांनीं 'ज्ञेया' असा शब्द न घालतां 'आदरणीया' 'सत्कारणीया' असा शब्द घातला असता. तेव्हां त्यांनीं ज्याअर्थी 'ज्ञेया' शब्द वा-

तला आहे त्याअर्थी त्याचा उघड अर्थ 'जाणाऱ्या' इतकाच करतां येईल.

पत्र १४२।१४३ मध्यें पंडितजी लिहितात कीं, "शासनदेवतांच्या सत्कारादिकामध्यें कोणत्याही तऱ्हेची ऐहिक वांछा नसली पाहिजे. कारण ती असल्यास देवतामूढत्वाचा दोष उत्पन्न होतो." तेव्हां शासनदेवतांचा सत्कार करण्याची आवश्यकता एक तर प्रतिष्ठादि कार्यामध्यें अनेक प्रकारच्या क्षुद्र देवादिकांच्या द्वारानें उपद्रव होण्याचा संभव असतो. तो शासनदेवता निवारण करीत असतात म्हणून जिनेंद्र देवाच्याबरोबर त्यांचाही त्यांच्या योग्यतेप्रमाणें सत्कार केला जातो. ह्या कोटिक्रमावर त्यांनीच खालीं प्रश्न केला आहे कीं, "जर ते शासनाचे रक्षक आणि धर्मात्मा आहेत तर ते स्वतः रक्षा करतीलच. ह्यासाठीं त्यांचें पूजन करण्याची काय आवश्यकता आहे?" ह्या प्रश्नावर त्यांनीच खालीं उत्तर दिलें आहे कीं, "जर जैन लोक हलक्यापेक्षां हलक्या व नीचाहूनही नीच अशा लोकांचा मनास वाटेल तसा सत्कार करतात तर मग जिनधर्माचे भक्त आणि रक्षक अशा शासनदेवतांचा थोडासा देखील सत्कार कां करूं नये? एका राजाचा दूत दुसऱ्या राजाकडे गेल्यावेळीं त्यानें त्याचा योग्य सत्कार केल्याच्या कथा पुराणांतून आढळतात. हल्लीं सुद्धां आपल्या घरीं आलेल्या पाहुण्यांचा सत्कार केला जातो, त्यावेळीं त्यांच्याबरोबर आलेल्या नोकरांचाही सत्कार करण्यांत येतो. तर मग जिनदेवाच्या सेवकवर्गाचा सत्कार कां होऊं नये?"

ह्याप्रमाणें पंडितजीचा युक्तिवाद आहे. ह्यांत पंडितजीनीं राजाचा जसा दूत किंवा पाहुण्याचा जसा नोकर तशाच जिनदेवाच्या शासनदेवता असें गृहीत धरून युक्तिवाद केला आहे. परंतु ह्यात महदंतर आहे. राजा आपण होऊन आपल्या दूतास दुसऱ्या राजाकडे पाठवीत असतो. व पाहुणा आपल्या नोकरावर हुकूम करीत असतो, तसा जिनेश्वर हे कोणत्याही शासनदेवतांना कोणताही हुकूम करीत नाहींत. दूताचा सत्कार करतांना कोणताही राजा त्याच्या पायां पडत नाहीं किंवा त्याला आपल्या बरोबरीला सिंहासनावर बसवून घेत नाहीं.

पाहुण्याच्या नोकरालाही कोणी आपल्या शेजारीं जोडाशीं घेऊन बसत नाहींत, किंवा त्याच्या पाया पडत नाहींत. त्यांना उपाशीं असल्यास जेऊं घालतात. एखादें वस्त्रप्रावर्ण बक्षिस देतात. तें घेऊन तो दूत किंवा नोकर आपले आभार मानतो व आपणांस सलाम करतो, नंतर आपणही उलट त्यास सलाम करतों. दूत राजाचा नोकर असला तरी ज्या दुसऱ्या राजाच्या येथें जातो त्याला तो स्वतः पेक्षां श्रेष्ठ मानतो. तसाच पाहुण्याचा नोकरही ज्यांच्या येथें मालकाबरोबर जातो त्यांना स्वतःपेक्षां श्रेष्ठ मानतो. तशी गोष्ट शासनदेवतांच्यासंबंधानें दिसून येत नाहीं. शासनदेवता ह्या बहुत-करून व्यंतर जातीच्या असतात. त्यांना पूर्वजन्मीचें सम्यक्त नसतें असा नियम आहे. कदाचित् ह्या जन्मीं झालें असल्यास सांगवत नाहीं. तें अ-सलें तरी त्यांना श्रावकाचीं सुद्धां व्रतें नसतात. अशांचा सत्कार सम्यक्ती आणि अणुव्रती श्रावकानें करावयाचा तो कसा व कोणत्या रीतीनें हें न समजल्यामुळें देवळाच्या गाभाऱ्यांत जिनेंद्र भगवंताच्या जोडीला, त्यांच्या बरो-बरीला शासनदेवतांच्या मूर्ती बसविण्यांत येतात. जिनेंद्रदेवाला जसा अष्टांग नमस्कार होतो तसाच यांनाही होतो, इतकेंच नव्हें, परंतु कोठें कोठें जिनेंद्र भगवंताची पूजा न करतां ह्या शासनदेवतांचीच मोठ्या थाटानें पुजा केली जाते. कित्येक तर त्यांच्यापुढें नारळ फोडून अर्धा तेथेंच ठेऊन अर्धा प्रसाद ह्मणून घरीं घेऊन जातात व खातात. श्रीक्षेत्र स्तवनिधी येथील ब्रह्मदेव, होंबुज येथील पद्मावति, होनसळ्ळी येथील पद्मावति इत्यादि ठिका-णचा थाट पाहिल्यास खात्री होईल. ह्या देवतापाशीं मुलेंबाळें होण्याचे नवस, रोगमुक्त होण्याचे नवस इत्यादिकांची तर गर्दी आहेच. इतकेंच नव्हे, परंतु रुई, सुत, जवस वगैरेची तेजीमंदीही विचारण्यांत येते व त्यावर भरंवसा ठेऊन व्यापार करणारे कित्येक व्यापारी धुळीस मिळालेले पाहण्यांत येतात. असा शासनदेवतांचा सत्कार जिनेंद्रप्रभूच्या सत्काराप्रमाणें करणें निंद्य आहे असें पंडितजींचेंही ह्मणणें आहे व त्यासाठीं प्रमाण ह्मणून यशस्तिलक चंपूंतील दोन श्लोकही त्यांनीं दिले आहेत. ते असेः —

देवं जगत्रयीनेत्रं व्यंतराद्याश्च देवताः ।
समं पूजाविधानेषु पश्यन् दूरमधःव्रजेत् ॥
ताः शासनाधिरक्षार्थं कल्पिताः परमागमे ।
यतो यज्ञांश दानेन माननीयाः सुदृष्टिभिः ॥

अर्थ—पूजनविधीमध्यें तीन जगांचे नेत्र जे जिनदेव त्यांना आणि व्यंतरादि देवांना जे सारखे पाहतात ते नरकाला जातात. जिनागमामध्यें ह्या देवता शासनरक्षणार्थ कल्पिल्या गेल्या आहेत. ह्यास्तव सम्यग्दृष्टि जीवांनीं जिनयज्ञांपैकीं थोडासा अंश ह्यांस देऊन मानीत जावें.

ह्यावरून दिसतें कीं, शासनदेवतांचा सत्कार करणें ह्मणजे जसें जिनप्रतिमेच्या पालखीच्या मिरवणुकीबरोबर बंदोबस्तासाठीं आलेल्या पोलीसांना दोन पानें आणि सुपारीचें खांड देऊन त्यांची बिदागी करणें होय. त्यांना जिनदेवासारखा अष्टांग किंवा पंचांग नमोस्तु करण्याची जरूरी नाहीं. त्यांना जर जिनदेवासारखा अष्टांग अथवा पंचांग नमोस्तु केला तर वरील श्लोकांत लिहिल्याप्रमाणें आपण अधोगतीला जाऊं. कारण असें करण्यांत जिनेंद्र प्रभूचा अविनय केल्यासारखें होतें. आतां ते आमच्या प्रमाणें जिनदेवाचे उपासक आहेत, त्याअर्थी आम्ही आपसांत श्रावक एकमेकांस जसें जैजिनेंद्र ह्मणून हात जोडतों, तसें ते प्रत्यक्ष असते व त्यांनीं आमच्या प्रमाणें आम्हास जैजिनेंद्र म्हणून हात जोडले असते, तर आम्हीही त्यांस जैजिनेंद्र म्हणून हात जोडण्यास हरकत नव्हती व त्यांस आपल्या घरीं बोलाऊन जेऊं घालण्यास व पानसुपारी देण्यासही हरकत नव्हती. परंतु त्याच्यापलीकडे त्यांचा सत्कार करण्याचा हल्लीं जो प्रघात दिसून येत आहे तो वरील श्लोकांत म्हटल्यासारखा निंद्य आहे, असें यशस्तिलक चंपूकार श्रीसोमदेवसूरीच्या व पंडित उदयलालजीच्या अभिप्रायावरून ठरत आहे. सोमदेवसूरी नवव्या शतकांत झाले आहेत. म्हणजे फारसे प्राचीन नाहींत हेंही लक्षांत घेतलें पाहिजे.

पंडितजी ह्मणतात कीं, " जर जैन लोक हलक्यापेक्षां हलक्या व नी-

च्याहून नीच अशा लोकांचा मनास वाटेल तसा सत्कार करतात तर मग जिनधर्माचे भक्त आणि रक्षक अशा शासन देवतांचा थोडासा देखील त्यांनीं सत्कार कां करूं नये? "

हें पंडितजीचें ह्मणणें अपवादात्मक आहे. कारण सर्वच जैन लोक हलक्या व नीच लोकांचा मनास वाटेल तसा ह्मणजे उत्कृष्ट प्रकारचा सत्कार करीत असतात असें आढळणार नाहीं. कदाचित् कोणी एखादा जैन लोभामुळें अथवा अडचणीमुळें नीच लोकांच्या पाया पडत असल्यास ती गोष्ट अपवादात्मक ह्मणावी लागेल, तिला सार्वत्रिक मोजणें चुकीचें होईल. व याप्रमाणें एकानें एक चूक केली सबब त्यानें दुसरी चूक केलीच पाहिजे हें ह्मणणें सयुक्तिक नाहीं.

अशाच तऱ्हेचें दुसरें एक उदाहरण पंडितजींनीं पत्र १९९ मध्यें दिलें आहे कीं, " क्या चक्रवर्ति सम्यग्दृष्टि नहि होते? क्यों उन्हें चक्ररत्नकी पूजनादि करना पडता है? " ह्मणजे चक्रवर्ती जर चक्राची पूजा करतात तर तुह्मी यक्षयक्षिणींची पूजा केली पाहिजे. हें ह्मणणें ह्मणजे रामा जर दूध पितो तर गोविंदानें ताक प्यालेंच पाहिजे, ह्या ह्मणण्यासारखें आहे. चक्रवर्ती जर चक्राची पूजा करतात तर तुह्मीही चक्राची पूजा करा असें फार झालें तर ह्मणतां येईल. ते चक्राची पूजा करतात, सबब तुह्मी शासनदेवतांची पूजा करा ह्मणणें विसंगत आहे. चक्रवर्तींचें चक्राच्या पूजेचें उदाहरण दिलें त्याच्या ऐवजीं त्यांनीं शासनदेवतेची पूजा केल्याचें उदाहरण दिलें असतें तर तें योग्य दिसलें असतं. व तसें उदाहरण पंडितजीला सांपडलें असतें तर तें दिल्याशिवाय ते राहतेना. परंतु तसें उदाहरण न सांपडल्यामुळें त्यांनीं चक्राच्या पूजेचें उदाहरण दिलें असावे असें दिसतें. भरत चक्रवर्तीनीं चक्राचीच पूजा केली, इतकेंच नव्हें, परंतु श्रावक लोकांचीही त्यांनीं पूजा केली आहे असें महापुराणांत लिहिलें आहे.

नामगारा वसून्यस्मत्प्रतिगृह्णंति निःस्पृहाः ।
सागारः कतमः पूज्यो धनधान्यसमृद्धिभिः ॥ ७ ॥ अ. ३८

अर्थः—मुनी लोक परिग्रह ठेवीत नसल्यामुळे ते आम्ही दिलेल्या धन-धान्यादि वस्तु घेणार नाहींत, तेव्हां श्रावक लोकांना धनधान्यादि वस्तु देऊन त्यांची पूजा करावी.

अणुव्रत धरा धीरा धौरेया गृहमेधिनां ॥
तर्पणीया हि तेऽस्माभिरीप्सितैर्वसुवाहनैः ॥ ८ ॥

[अध्याय ३८.]

अर्थः—जे अणुव्रत धारण करणारे आणि गृहस्थांमध्यें मुख्य आहेत अशा धैर्यवान श्रावकांना त्यांचे इच्छित पदार्थ धनधान्य, वस्त्रवाहन इत्यादि देऊन त्यांस संतुष्ट करावें.

नंतर श्रावकांनीं हिरव्या गवतावरून तुडवीत येण्यानें दोष लागतो म्हणून आम्ही येथेंच उभे राहिलों असें सांगितलें.

इति तद्वचनात्सर्वान सोभिनंद्य दृढव्रतान् ॥
पूजयामास लक्ष्मीवान् दानमानादिसत्कृतैः ॥ २० ॥

[अध्याय ३८.]

अर्थः—याप्रमाणें त्यांचें (श्रावक लोकांचें) भाषण ऐकून ऐश्वर्यशाली भरतचक्रवर्तीनें हे श्रावक लोक आपल्या व्रतांत दृढ आहेत असें समजून त्यांची प्रशंसा केली आणि दान मान आदि सत्कारानें त्यांची पूजा केली.

ह्यावरून पाहता भरतचक्रीनें चक्राची आणि श्रावकांची पूजा केली ती त्यांची मूर्ति स्थापन करून अभिषेक केला किंवा अष्टद्रव्यानें जिनेंद्रप्रभूच्या पूजेसारखी पूजा केली किंवा त्यांना साष्टांग नमस्कार घातला असें ह्मणतां येत नाहीं.

चक्राची पूजा ह्मणजे त्याला झाडून पुसून तेल लावून इतकें तयार ठेवलें कीं तें जरूरीच्या वेळेला कामास पडावें. तसेंच श्रावकाची पूजा ह्मणजे त्यांस बोलावून जेऊं घातलें, वस्त्रादि भूषणें दिलीं आणि उपदेश केला. अशा तऱ्हेची पूजा सर्व माणसें अनेक पदार्थांची करीत असतात. आपल्या घराची पूजा ह्मणजे तें झाडून सारवून रंग लावून शृंगारणें, दुकानची पूजा ह्मणजे वजनें, मापें, कांटे, दउती, लेखण्या वगैरे धुवून व दुरुस्त

करून ठेवणें, असेंच गाडी, घोडे, गाई, हत्ती, शेत, मळे, बागबगीचे, वस्त्रालंकार वगैरे अनेक पदार्थ अनेक प्रकारे लक्ष्यपूर्वक योग्य स्थितींत ठेवणें हीच त्यांची पूजा. ह्या पदार्थांस जिनेंद्रप्रभूंच्या पूजेप्रमाणें आव्हानन, अष्टविधार्चन, साष्टांग नमस्कार, मंत्र, जप वगैरे कोणी करीत नाहींत. पंडितजींचेंही म्हणणें पत्र १६१ मध्यें अशाच तऱ्हेचें दिसून येतें. ते म्हणतात, " पूजनका अर्थ सत्कार है. वह सत्कार अधिकरणकी अपेक्षासे अनेक भेद-रूप है. + + + हमारा यह कहना तो नहीं है कि, जिनदेवके समान शासनदेवताकीभी भक्ति पूजनादि करो "

ह्यावरून शासनदेवतांचा सत्कार जिनेंद्रप्रभूसारखा करूं नये, हें पंडित-जींच्या म्हणण्यावरून व त्यांनीं दिलेल्या यशस्तिलकचंपूच्या दोन श्लोकांवरून सिद्ध होतें.

आतां ह्यांचा सत्कार करावयाचा तो कशा रीतीनें? ह्याबद्दल प्राचीन आचार्यांचें प्रमाण त्यांनीं दिलेलें नाहीं. इंद्रनंदिकृत पूजासाराचें आणि इंद्रनंदिसंहितेचें प्रमाण दिलें आहे. पूजासारांतील प्रमाण असें—

> यक्षं वैश्वानरं रक्षोऽनादृतं पन्नगासुरौ ।
> सुकुमाराभिधानं च पितरं विश्वमालिनं ॥
> चमरं रोचनं देवं महाविद्यं स्मरं तथा ।
> विश्वेश्वरं च पिंडाशं तिथिदेवान्समाव्हये ॥

पूजासार (तिथिदेवतामालामंत्र.)

अर्थ:—यक्ष, वैश्वानर, राक्षस, अनादृत, पन्नग, असुर, सुकुमार, पिता, विश्वमाली, चमर, रोचन, देव, महाविद्य, विश्वेश्वर आणि पिंडाश ह्या तिथिदेवतांचें मी आव्हानन करितों.

इंद्रनंदिसंहितेंतील प्रमाणही ह्याच नमुन्याचें आहे.

ह्या पंधरा तिथिदेवता आहेत असें म्हटलेलें आहे, व त्यांचें आव्हानन केलें आहे. त्यास " आगच्छत, आगच्छत स्वधा " असें म्हटलेलें आहे. नमस्कार केलेला नाहीं. पुढें पंडितजींनीं सारचतुर्विंशतिका पुस्तकांतील सम्यक्त्व प्रकरणांतील कुदेवांचीं नांवें आणि त्यांचा निषेध केलेला दिला आहे तो असा—

यक्षः कुचंडिका सूर्यो ब्रह्माविष्णुविनायकः ।
क्षेत्रपालः शिवो नागो वृक्षाश्च पिप्पलादयः ॥
गोवायसादि तिर्यंचो ह्याचाम्लभोजनादयः ।
यत्रार्च्यंते शठैरेते देवमूढः स उच्यते ॥
देवत्वगुणहीनास्ते निग्रहाऽनुग्रहादिकम् ।
पुंसां कर्तुं क्षमानैव जातु संस्थापिता शठैः ॥

अर्थः—यक्ष, चंडिका, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, विनायक, क्षेत्रपाल, शिव, सर्प, पिप्पलादिक वृक्ष, गौ, काक इत्यादिकांची जे लोक पूजा करितात त्यास देवतामूढ ह्मणावें. जर ते स्वतः देवत्वगुणांनीं रहित आहेत तर ते दुसऱ्याला निग्रहादि करण्यास समर्थ कसे ह्मणतां येतील? यांना मूर्ख लोकांनीं स्थापन करून ठेवलें आहे.

ह्यावरून पाहतां यक्ष, क्षेत्रपाल, नाग, चंडिका, सूर्य ह्यांची पूजा करण्यानें देवमूढतेचा दोष लागतो असें सारचतुर्विंशतिकाकार ह्मणतात व इकडे इंद्रादि ह्यांचें आव्हानन करितात. तेव्हां हीं परस्परविरोधी प्रमाणें होत. हा विरोध दूर करण्यासाठीं पंडितजींचें ह्मणणें ज्या देवता मांसभक्षी आहेत त्या कुदेवता समजाव्या व ज्या मांसभक्षण करीत नाहींत त्या शासनदेवता समजाव्या असें दिसतें. परंतु जैनशास्त्राप्रमाणें चतुर्णिकाय देवांपैकीं कोणीही मांसभक्षण करीत नाहींत. देवांना कवलाहार नाहीं, ते मानसिक आहार करितात. त्यांना मांसाहारी ह्मणणें हा त्यांच्यावर अवर्णवाद आहे असें राजवार्तिकांत ह्मटलेलें आहे.

सुरामांसोपसेवाद्या घोषणं देवावर्णवादः ॥ १२ ॥

टीकाः–सुरा मांसं चोपसेवंते देवाः अहल्यादिष्वासक्त चेतसः इत्याद्या घोषणं देवावर्णवादः ॥ पत्र २६२.

कोणत्याही देवता मांसाहार करीत नाहींत, मद्यपान करीत नाहींत व मनुष्य स्त्रीशीं संभोग करीत नाहींत. तसेंच त्या नारळ, केळें, लिंबू, लाडू, पेढे वगैरेही खात नाहींत. त्यांच्या भक्त लोकांनीं स्वतःच्या स्वार्थासाठीं त्यांस हे पदार्थ अर्पण करण्याची वहिवाट ठेवली आहे. कारण, मांसाहार करणारे

तेवढेच काय ते कुदेव असें ह्मटलें तर सूर्य मांसाहार करणारा नाहीं आणि तीर्थंकराच्या समोशरणांत शतेंद्रांमध्यें तोही असतो तथापि त्याला देखील सारचतुर्विंशतिका पुस्तकांतील पंडितजींनीं दिलेल्या प्रमाणावरून कुदेवामध्यें मोजलें आहे. तेव्हां कुदेवाचें लक्षण मांसाहार करणें हें ठरत नसून श्रीसमंतभद्रस्वामींनीं देवमूढतेच्या वर्णनांत ह्मटल्याप्रमाणें ' रागद्वेषमलीमसाः देवताः ' ह्मणजे रागद्वेषांनीं मलिन झालेले जे देव, ते कुदेव होत आणि त्यांचें आराधन करणें ती देवमूढता होय. मग ते चतुर्णिकाय देवांपैकीं यक्ष, क्षेत्रपाल, सूर्य, चंडि इत्यादि असोत; किंवा मनुष्यांपैकीं, ब्रह्मा, विष्णु, गणपति, महादेव इत्यादि असोत; अथवा जनावरांपैकीं गाय, नाग, कावळा वगैरे असोत, किंवा पिंपळ, तुळशी, वड वगैरे झाडें असोत; ह्यांना देव समजून पूजा करणें ही सगळी देवमूढताच होय. तेव्हां श्रीजिनसेनाचार्यांनीं ' विश्वेश्वरादयोज्ञेयाः देवताः शांति हेतवः । क्रूरास्तु देवता हेया यासांस्याद्वृत्तिरामिषैः ॥ ' असें जें ह्मटलें आहे तेथें देव शब्दाचा अर्थ चतुर्णिकाय देव असा न घेतां श्रेष्ठ मनुष्य असा घ्यावा. कारण, श्रेष्ठ मनुष्याला देव ह्मणतात. ' राजा भट्टारकोदेवस्तत्सुताभर्तृदारिका ॥ देवीकृताभिषेकायामितरासुतभट्टिनी ॥ ' ह्या अमरकोशाच्या प्रमाणावरून पाहतां राजाला देव आणि राणीला देवी ह्मणतात. जसें—मरुदेवी, शिवादेवी, वामादेवी वगैरे. तेव्हां विश्वेश्वरादिक हे शांतता करणारे राजे होत; व विश्वेश्वरी ही तीर्थंकराची माता होय आणि मांसाहार करणारे जे क्रूर राजे ते त्याज्य होत. असा अर्थ केल्यास विरोध येत नाहीं.

विश्वेश्वरी हें नांव तीर्थंकराच्या मातेला दिलेलें महापुराणांत सांपडतें.

विश्वेश्वरी जगन्माता महादेवी महासती ॥
पूज्या सुमंगला चेति धत्ते रूढिं जिनांबिका ॥२२६॥

[पर्व ३८.]

अर्थः—श्रीजिनाची माता ही विश्वेश्वरी, जगन्माता, महादेवी, महासती, पूज्या आणि सुमंगला अशीं नांवें धारण करिते.

ह्यावरून पाहतां महापुराणांत व्यंतरदेवांची आराधना करण्याचें सांगित-

लेलें नसून चक्रवर्तीची सेवा व्यंतरदेवांनीं केली असें सांगितलेलें मात्र आढळतें.

षोडशास्य सहस्राणि गणबद्धामराः प्रभोः ॥
ये युक्ता धृत निस्त्रिंशा निधिरत्नात्मरक्षणे ॥ १४५ ॥

महापु. पर्व ३७.

अर्थः—सोळा हजार व्यंतरदेव हातांत तरवारी धारण केलेले चक्रवर्तीचें शरीर, त्याचीं रत्नें, आणि त्यांचे नवनिधि ह्यांच्या रक्षणाकडे नेमलेले होते.

हिमवद्विजयार्धेशौ मागधाद्याश्च देवताः ।
खेचराश्चो भय श्रेण्योस्तं नेमुर्नम्रमौलयः ॥ १२ ॥

महापु. पर्व ३७.

अर्थः—हिमालय पर्वत व विजयार्द्ध पर्वत ह्यांचे राजे मागध वगैरे व्यंतरवासी देव आणि दोन्ही श्रेणीवर असलेले विद्याधर हे सर्व त्या भरतास मस्तक खालीं वाकवून नमस्कार करूं लागले.

ह्यावरून व्यंतर देवांनीं भरतचक्रवर्तीला नमस्कार केल्याचें व त्याची सेवा केल्याचें दिसून येतें.

महापुराणांतील पर्व ३८ ३९–४० ह्यांत पूजा आणि क्रियेचीच जी विधि सांगितली आहे त्याचे साडेसातशें श्लोक आहेत. त्यांत शासन किंवा देवत चिक्रेश्वरी, चक्रेश्वरी, पद्मावति, क्षेत्रपाळ वगैरेचें आराधन पूजन, नमस्कार हें कांहींच सांगितलें नाहींत. तसेंच सागारधर्मामृत पुस्तकांत पूजेसंबंधी दुसऱ्या अध्यायांत वीस श्लोकामध्यें पूजेचें वर्णन केलें आहे त्यांतही शासन देवतांचें पूजन सांगितलें नाहीं. कुंदकुंदाचार्यांच्या श्रावकधर्मांत, समंतभद्रस्वामीच्या रत्नकरंडकोपासकाध्ययनांत, वसुनंदी श्रावकाचारांत, अमितगति श्रावकाचारांत, पूज्यपाद श्रावकाचारांत, पद्मनंदी श्रावकधर्मवर्णनांत वगैरे शासन देवतांचें (क्षेत्रपाळ, पद्मावति, चक्रेश्वरी इत्यादि व्यंतरांचें) आराधन करण्याचें सांगितलें नाहीं. जर ह्यांचें आराधन करण्याची जरूरी असती तर श्रावकधर्माच्या पुस्तकांत सांगितलें असतें. परंतु ज्याअर्थी सांगितलें नाहीं त्याअर्थी त्याची जरूरी नाहीं असेंच दिसतें.

कोणी ह्मणतात पूजेमध्यें विघ्न येऊं नये ह्मणून शासनदेवतांचें आराधन केलें पाहिजे. ह्या शंकेचें निराकरण पंडित आशाधरांनीं सागारधर्मामृत पुस्तकांत केलें आहे तें असें—

जिनपूजांतराय परिहारोपाय विधिमाह—

अर्थ:—जिनपूजेस विघ्न न येण्याचा उपाय सांगतात.

यथास्वं दानमानाद्यैः सुखीकृत्य विधर्मणः ।
सधर्मणः स्वसात्कृत्य सिध्द्यर्थी यजतां जिनं ॥ १३ ॥

सागार धर्मा. अ. २.

अर्थः—निर्विघ्नपणें पूजा व्हावी अशी ज्याला इच्छा आहे; अथवा मोक्षाभिलाषी जो आहे; त्यानें विधर्मी लोकांस यथायोग्य दान, सन्मान वगैरे करून व आपल्या धर्माच्या लोकांस अनुकूल करून घेऊन नंतर जिनपूजा करावी.

ह्यावरून जिनपूजेमध्यें विघ्न येऊं नये ह्मणून शासन देवतांचें आराधन केलें पाहिजे हें ह्मणणें व्यर्थ आहे असें ठरतें.

इंद्रनंदिसंहितेंत शासन देवतांला ‘ आगच्छत आगच्छत स्वधा ’ अशा शब्दांनीं आमंत्रण देऊन सत्कार केलेला दिसतो. परंतु पूर्वापार आदिनाथस्वामीपासून महावीरस्वामीपर्यंत व त्यानंतर अलीकडे कुंदकुंदस्वामी, समंतभद्रस्वामी, अकलंकस्वामी, विद्यानंदस्वामी, धनंजय वगैरेंच्यावेळीं शासन देवता हजर झाल्या त्या न बोलावतां आमंत्रणाशिवाय हजर झाल्या असें इतिहासावरून दिसतें. तीर्थंकरप्रभू गर्भांत आल्यावेळीं देवतांनीं येऊन जो उत्सव केला तो आपण होऊनच केला. जन्मकल्याणिकाच्यावेळीं भवनवासी, व्यंतरवासी, जोतिषवासी आणि कल्पवासी देव तीर्थंकराच्या घरीं आले त्यावेळीं त्यांस तीर्थंकराच्या मातापित्यांनीं अथवा नातलगांपैकीं कोणीही आमंत्रण पाठविलें नव्हतें. त्यांना अवधिज्ञानाच्या बळानें तीर्थंकराचा जन्म झाल्याचें कळलें कीं, ते लागलीच ऐरावत हत्ती घेऊन येतात व प्रभूला त्यावर बसवून मेरूपर्वतावर नेतात. तेथें अभिषेक करून वस्त्रालंकार नेसवून परत मातोश्रीपाशीं आणून देतात. ह्यावेळीं ह्या चातुर्निकाय देवांचा सत्कार

केल्याचें दिसत नाहीं. तसेंच दीक्षा, केवलज्ञान आणि निर्वाणकल्याणिका-च्यावेळीं कोणाचेंही आमंत्रण नसतां आपण होऊनच देव येतात, व जें कार्य करावयाचें तें करून निघून जातात. त्यावेळीं त्यांची कोणीही सत्कारपूजा केल्याचें दिसत नाहीं, व आपला सत्कार कोणी केला नाहीं ह्याबद्दल त्यांस वाईट वाटल्याचेंही कोठें लिहिलेलें आढळत नाहीं. श्रीकुंदकुंद, समंतभद्र, विद्यानंदि इत्यादिकांच्या कठीण प्रसंगीं शासनदेवता हजर झाल्या त्या न बोलावतां आल्या, व त्यांनीं जें काम केलें तेंही न मागतां, न सांगतां केलें आहे. व त्या प्रत्यक्ष हजर असून त्यांचें कोणीही सत्कार पूजन केलेलें नाहीं. भक्तामराच्या कथा पाहिल्या तरी त्या प्रत्येक कथेंत शासनदेवता न बोलावतां आल्या होत्या व जें कांहीं कार्य करावयाचें तें करून चालत्या झाल्या. परंतु त्यांचा सत्कार किंवा पूजन नमस्कार कोणीही केल्याचें दिसत नाहीं. विद्यासाधन करण्यामध्यें रावण, कुंभकर्ण, बिभीषण हे प्रख्यात झाले. परंतु त्यांनींही देवतांना आमंत्रण केलेलें नाहीं व आराधन केलें नाहीं. ह्यावरून असें दिसतें कीं, त्यांना आमंत्रण देण्याची व त्यांचा सत्कार करण्याची पूर्वीपासून वाहेवाटच नाहीं. त्या धर्मकार्याच्या जरूरीचा प्रसंग अवधिज्ञानानें जाणून त्यावेळीं आमंत्रणाची वाट न पाहतां आपण होऊन येतात, व धर्मकार्याची सेवा करून निघून जातात. आपला सत्कार करून घेण्याची इच्छाच ठेवीत नाहींत. अशांना आह्मी धर्मकार्याच्या वेळीं आमंत्रण करणें व त्यांचें सत्कार पूजन करणें हें त्यांना आवडेल किंवा त्यांच्या मर्जीविरुद्ध होईल हाही एक प्रश्नच आहे. उदाहरणार्थ—राजाच्या भेटीला आपण जातो त्यावेळीं राजाला कधीं कधीं भेट देतों, व कधीं कधीं देतही नाहीं. परंतु त्याचवेळीं राजाचे नौकर जवळच अथवा दारावर उभे असतात त्यांस कांहीं बक्षीस ह्मणून राजाच्या समक्ष देऊं लागलों तर ते घेत नाहींत. आपण घरीं गेल्यावर मग आपल्या घरीं येतात व त्यावेळीं आपण त्यांस कांहीं दिलें तर ते घेतात. परंतु राजाला कळूं देत नाहींत. कारण, राजाच्यासमोर घेण्यामध्यें राजाची अवज्ञा व आज्ञाभंग होतो असें ते मानतात. सरकारी नौकरांनीं इतर लोकांकडून कांहीं बक्षिस घेणें हा illigal gratification नांवचा

गुन्हा आहे असें ते समजतात. तसेंच शासनदेवतांचा सत्कार करावयाचा तो जिनमंदिरांत ह्मणजे जिनेंद्रप्रभूच्या समोरच करूं ह्मटलें तर त्यांना तेथें तर करून घेतां येणार नाहीं व ते आपल्या घरीं जिनेंद्रप्रभूचें सान्निध्य सोडून येणार नाहींत. तेव्हां त्यांचा सत्कार व्हावा कसा ?

जसें हल्लीं सुद्धां कित्येक निःपृह सरकारी अंमलदारांचा असा निश्चय असतो कीं, आपणांस सरकाराकडून जो कांहीं पगार आणि भत्ता मिळतो त्याशिवाय कोणाकडून कांहींही भेट मिळाल्यास ती घ्यावयाची नाहीं. व ह्या त्यांच्या निश्चयामुळें त्यांच्याकडे कोणी भेट पाठविल्यास त्यांस आवडत नाहीं व ते ती भेट लागलींच परत करतात. कदाचित् अधिक आग्रह करून पुनः पाठविल्यास रागावतात व आपणास लांच देण्याचा प्रयत्न केला ह्मणून त्यांच्यावर खटला करितात. त्याचप्रमाणें शासन देवता ह्या निःस्पृह अंमलदारांपेक्षांही निपृह असणार. त्यांना प्राचीनकाळापासून सत्कार करून घेण्याची अथवा जिनपूजेंतील अंश घेण्याची वहिवाट नसल्यामुळें संवय नाहीं. त्यांना आह्मी आतां सत्कारपूजनरूपी भेट देऊं लागलों तर ती कशी आवडेल ? व न जाणो हें आमचें करणें त्यांच्या मर्जीविरुद्ध झाल्यास ते रागावणार नाहींत कशावरून ? तेव्हां त्यांना पसंत पडणारें असें जिनेंद्रपूजन, स्वाध्याय, दान, तप, व्रत, शील, संयम इत्यादि करूनच त्यांस संतुष्ट ठेवावें हें बरें नव्हे काय ? कोणतेंही जैनशास्त्र पाहिलें तरी त्यांत ह्याच गोष्टीचा उपदेश केलेला आढळतो व्यंतरांचें आराधन करण्याचा उपदेश प्राचीन आचार्यांच्या पुस्तकांत आढळत नाहीं आणि व्यंतरदेवही आपलें आराधन करा असें ह्मणत नाहींत. तसेंच त्यांचें आराधन सम्यक्त्वी श्रावकानें केल्याचें उदाहरण सांपडत नाहीं. तर मग अज्ञानपणानें कांहीं तरी लालची-साठीं त्यांचें आराधन करीत बसून आपलें नुकसान करून घ्यावें ह्यांत काय अर्थ आहे ?

सोलापूर
ता. २९।८।१७. } हिराचंद नेमचंद, सोलापूर.

जैनबोधक मासिक पुस्तक.

मराठी भाषेंत चालणारें सर्वांत जुनें मासिक पुस्तक. यांत धार्मिक व सामाजिक विषयांची चर्चा प्रसिद्ध होते. नामांकित लेख येत असतात. वार्षिक वर्गणी १॥ रुपाया टपाल खर्चासह. खालील पत्त्यावर पत्रव्यवहार करणें.

जिवराज गौतमचंद दोशी,

संपादक--जैनबोधक, सोलापूर.

भट्टारकचर्चा.

हें पुस्तक श्री. हिराचंद नेमचंद यांनीं लिहिलें आहे. यांत भट्टारकांची सद्यःस्थिति, त्यांचे खरें स्वरूप व त्यांत कोणता फेरफार करणें इष्ट आहे हें चांगलें दाखविलें आहे. किमत एक आणा.

याशिवाय जैनधर्मी मराठी, हिंदी, संस्कृत पुस्तकें खालील पत्त्यावर विकत मिळतील.

जैन बुकडेपो, सोलापूर.

आगम-प्रमाणता संबंधमें शास्त्रार्थ

अकृत्रिम चैत्यालयोंमें शासनदेवता

पूजनचर्चा

व

वेश्यासेवनकरनेवाला ब्रम्हचर्याणुव्रती होसकता है क्या?

इन दो विषयोंपर अनेक विद्वानोंके

अभिप्राय

प्रकाशक,

हिराचंद नेमचंद दोशी, सोलापूर.

सोलापूर येथें

दामोदर रामचंद माळ्याळकर

यांनीं आपल्या

'सच्चिदानंद' छापखान्यांत छा०

किंमत ४ आणे.

आगष्ट १९२४

अनुक्रमणिका.

आगम-प्रमाणता संबंधमें शास्त्रार्थ.

शासनदेव-चर्चा इस शीर्षकके आपके लेखमें अकृत्रिम चैत्यालयोंके पूजासंबंधमेंका जो " कृत्याकृत्रिमचारुचैत्य० " यह आद्य श्लोक दिया है इस बाबद हमारे शास्त्रीय परिषदके मंत्री पं० न्यायतीर्थ वंशीधरजी उदयराज अपने जुलाई १९२१ के "जैनसिद्धान्त" मासिकपत्रमें लिखते हैं कि—

' कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकीं गतान् ॥
वन्दे भावनव्यंतरान् द्युतिवरान् कल्पामरान् सर्वगान् ॥

इसमें तीनोंलोककी कृत्रिम अकृत्रिम प्रतिमाओंको वंदना और अर्घ देना बताया है; पर बादमें-चारोंनिकायके देवोंकोभी अर्घादि प्रदान करना बताया है.

छोटेपनमें हमें इसका ऐसा अर्थ बताया गया था कि- चारों प्रकारके देवोंके घरोंमेंकी प्रतिमाओंके यह अर्घ प्रदान है. परंतु श्रीयुत पं० गौरीलालजी देहली निवासीने हालमेंही हमें यह सुचाया है कि— भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी व कल्पवासी इन देवोंकाही इसमें उल्लेख है.

प्रतिमाओंका उल्लेख केवल पहिले चरणमें किया गया है. इसका कारण ठीक दीखता है कि- भावन, व्यंतर, द्युतिवर व कल्पामर ये शुद्ध चारों प्रकारके देवोंकेही नाम हैं. यदि इनमें कोई तद्धितका प्रत्यय होता कि— जिससे ये उक्त देवोंके घरमेंकी या संबंधी कोई चीज. ऐसा अर्थ करसक्ते तो प्रतिमा अर्थ करना किसी प्रकार जुडसकता था. परंतु इन देववाचक नामोंमें ऐसा कोई प्रत्यय नहीं है. इसलिये ये चारों प्रकारके देवोंकेही नाम हैं. इसपर उत्तर सोचे.

इसपरसे सिद्ध होजाता है कि- चार निकायके देवोंका आव्हान-पूजन जिनपूजनके साथ किया जाताहै. '

इस विषयपर जैनधर्मभूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी अपने आश्विन सुदी ५ वीर सं. २४४७ (ता. ६ सितम्बर १९२१) के जैनमित्रमें कहते हैं कि—

"जैनविद्वान् प्रमाद छोड समाधान करें,
क्या यह अर्थ ठीक होगा ?"

"जैनसिद्धांत अंक १२ वा प्रथम वर्षमें **शासनदेव-चर्चाके** लेखमें सम्पादकने जो दि० जैनशास्त्रीय परिषदके मंत्री हैं रूफा ४१ में एक अर्द्ध श्लोक नीचे लिखादकर उसका नीचेलिखा अर्थ किया है—

कृत्याऽकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकी गतान् ।
वंदे भावनव्यंतरान् द्युतिवरान् कल्पामरान् सर्वगान् ॥

इस आध श्लोकका भाव पं० गौरीलाल देहली निवासीकी साक्षीमें यह प्रगट किया है कि—"इसमें तीनोकालकी कृत्रिमाकृत्रिम प्रतिमाओंको वंदना और अर्घ देना बताया है: पर बादमें चारों निकायोंके देवोंको भी अर्घादि प्रदान करना बताया है।"

सम्पादक महाशयको उचित था कि— पूरा श्लोक देकर अर्थ करते। यह पूरा श्लोक **अकृत्रिम चैत्यालयका** अर्घ इस शीर्षकसे छपी **नित्यनियम पुजा** संस्कृतमें है; तथा ऐसा ही भाव लेकर प्रायः बहुतसे मंदिरोंमें सिद्ध पूजाके पहले बोला जाता है अर्थात् जैनजनता यही समझ कर इस श्लोकको पढती है कि- इसको पढ कर तीन लोकके कुल अकृत्रिम तथा कृत्रिम चैत्यालयोंको अर्घ चढाया जाय। कोई भी जहांतक हमें मालूम है यह नहीं समझता है कि—इन चैत्यालयोंके सिवाय भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी कल्पवासी देवोंको भी उन मंदिरोंके साथ २ अर्घ चढाकर नमस्कार किया गया है। जैसा अर्थ सम्पादकजीने प्रगट किया है वह पुरा श्लोक यह है: -

"**कृत्याऽकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकीं गतान्**
वन्दे भावनव्यन्तरान द्युतिवरान् कल्पामरान सर्वगान्

**सद्गन्धाक्षतपुष्पदामचरुकैर्दीपैश्च धूपैः फलै
र्नीराद्यैश्च यजे प्रणम्यशिरसा दुष्कर्मणां शान्तये।**

इस श्लोकका अर्थ हम व हमारे अनुसार बहुतसी जैनजनता यह समझती है कि–" मैं कृत्रिम अकृत्रिम सुन्दर तीन लोकमें प्राप्त मंदिरोंको तथा भवनवासी आदि चारों प्रकारके देवोंके भवन या विमानोंमें जो मंदिर हैं उन सबको वन्दना करता हूं और दुष्ट कर्मोंकी शांतिके लिये मस्तक झुकाकर नमस्कार करके जलगंधादि आठ द्रव्योंसे पूजता हूं।

यदि यह अर्थ ठीक नहीं है और जैसा सम्पादक ' जैनसिद्धांत ' अर्थ करते हैं वह ठीक है; तब नीचे लिखी शंकाओंका समाधान होना चाहिये।

(१) जैन मंदिरोंके साथ २ चार प्रकार देवोंको नमस्कार व पूजन एक ही श्लोकमें एक ही रीतिसे क्यों की गई? क्या चार प्रकार देवोंका दरजा जिनमंदिरके समान है?

(२) इस श्लोकमें पुजनका हेतु " खोटे पापकर्मोंकी शांति " (दुष्कर्मणां शांतये) ऐसा दिया है। यह हेतु वीतराग भगवान् व उनके जिनमंदिरोंके लिये तो बन सक्ता है; क्योंकि उनकी भक्तिसे वीतराग भाव होंगे जिससे कर्मोंकी निर्जरा होगी. परंतु रागद्वेषविशिष्ट चौथे गुणस्थानसे अधिक न रखनेवाले हमारेसमान इंद्रिय भोगोंमें आसक्त व्रतरहित देवोंके लिये किसीभी तरह नहीं बन सक्ता है। यह कैसे प्रार्थना की जा सक्ती है कि– हे भवनवासी व्यंतरादि हमारे पापोंको शांत करो?।

[३] यदि सम्पादकजीका अर्थ ठीक माना जाता है तो यह बात सिद्ध होती है कि– जिनमंदिरोंकी नमस्कार करते वक्त चार प्रकार देवोंकोभी उसी तरह नमस्कार करना चाहिये। क्या यह बात जैन सिद्धांतसे मान्य हो सक्ती है? यदि यह बात मान्य हो तो उन्हीके

साथ २ श्रावकव्रतधारी मनुष्य तथा पशुओंको भी उसी तरह नमस्कार तथा पूजन सिद्ध हो जायगा जैसे जिनमंदिर व प्रतिमाओंका।

(४ तीनलोकके मंदिरोंके अर्थ व्रतधारीश्रावक भी यही अर्घ बोलकर यदि चढाते हैं तो उनके लिये यह असंगत हो जायगा कि वे पांचवें गुणस्थानवर्ती होकर अपनेसे नीचे चौथे गुणस्थानवाले देवोंकी भी पूजा करें। यदि यह बात ठीक नहीं है और अर्थ इस श्लोकका वही बनता है जो सम्पादकजीने सिद्ध किया है; तो यह प्रश्न है कि– यह श्लोक सिद्धांतविरुद्ध है या सिद्धांतके अनुकूल ?

(५) महान् २ ग्रंथोंके कर्ता आचार्योंने ग्रंथकी आदिमें नौ देवताओंको तो नमस्कार किया है; पर चार प्रकार भवनवासी आदिको तो नमस्कार नहीं किया है. फिर इस श्लोकमें क्यों किया ? वे नौ देवता ये हैं–पांच परमेष्ठी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनवाणी और जिनधर्म।

[६] यदि संपादकजीका अर्थ ठीक बैठता है, और श्लोकका भाव सिद्धांतसे विरुद्ध बैठता है, तब क्या यह आवश्यकता नहीं है कि– इस श्लोकको अशुद्ध बताकर इसका प्रचार रोका जाय ?।

[७] यदि संपादकजीका अर्थ ठीक नहीं है, और इसका अर्थ वही है जो जैनजनता समझती है, तब संम्पादकजीने जो ऐसा असंगत अर्थ है उनको भलेप्रकार समझाना चाहिये जिसमें जिस हेतुको ध्यानमें रखकर उन्होंने ऐसा अर्थ किया है वह हेतु उनके मनसे निकल जावे. क्योंकि यदि वह हेतु ठीक नहीं है तो उसका प्रचार उनके द्वारा दि० जैनसमाजमें होगा; क्योंकि वे शास्त्रीयपरिषद्के मंत्री हैं।

आशा है दि० जैनविद्वान् आलस्य छोडकर इस श्लोककी तरफ ध्यान देवेंगे और इसका अर्थ व्याकरण और जैनसिद्धांत दोनोंसे अविरोधरूप सिद्ध करके हमारेऐसे अल्पज्ञोंकी शंकाओंका समाधान करेंगे। जो विद्वान इसका अर्थ व भाव लिख भेजेंगे उनको हम उचित समझकर **जैनमित्र**में प्रकाशित कर देंगे।

इसही विषयपर पौष सुदी ७ वीरसंवत २४४८ के जैनमित्रमें श्रीमान् पं० बनवारीलालजीका एक लेख प्रगट हुवा है वह इसप्रकार है—

शासनदेव–पूजा अर्थ नहीं निकलता।

(लेखक पं० बनवारीलालजी, खेकडा–मेरठ)

कृत्याऽकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकीं गतान्।
वंदे भावनव्यंतरान् द्युतिवरान् कल्पामरान् सर्वगान्॥
सद्गन्धाक्षतपुष्पदामचरुकैर्दीपैश्च धूपैः फलै।
र्नीराद्यैश्च यजे प्रणम्य शिरसा दुष्कर्मणां शांतये॥

अन्वयः—अहं कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान नित्यं वंदे च पुनः नीराद्यैः अष्टद्रव्यैः यजे। नीराद्यष्टद्रव्यसमूहैरघैश्च यजे। किं कृत्वा शिरसा प्रणम्य। कस्मै प्रयोजनाय दुष्कर्मणाम शांतये कथम् भूतान् तान् भावनव्यंतरान् द्युतिवरान् कल्पामरान् सर्वगान् इति। अथ व्याख्यार्थः॥

वर्तमानसमय श्रीजिनमंदिरोंमें यह आम्नाय है कि–प्रथम नित्य नियमकी सर्व पूजन करनेके पश्चात उक्त श्लोक और ॐ ह्रीं कृत्याकृत्रिम चैत्यालय संबंधि जिनबिंबेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा इति। यह मंत्र उच्चारण करके अर्घ उत्तारन करते हैं. और कहीं २ ॐ ह्रीं कृत्याकृत्रिम चैत्यालयेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा. इतनाही पढकर अर्घ चढा देते हैं; और नित्य नियमकी पूजाओंकी पुस्तकोंमेंभी यह ही क्रम लिखा है। तातें वर्तमान आम्नाय अनुकूल यह निश्चय हुवा कि उक्त श्लोकसे प्रधान करके तो चैत्यालयोंका पूजन है। और गौण करके चैत्यालयसंबंधी जिनबिम्बोंका पूजन होता है। तथा चोक्तं प्राधान्यम् शब्देन विवक्षितत्वाच्छब्दाधिनम्॥ शब्देनानुपातस्यार्थतो गम्यमानस्याऽप्राधान्यामिति किन्तु अर्हंतादि देवोंका पूजन विधान इस श्लोकसे नहीं होता है क्योंकि प्रथम देवगुरु शास्त्रादि नित्य नियमकी पूजन करके अर्घ चढाते हैं। और शांतिपाठ विसर्जन आदि पढकर समाप्त कर देते हैं. इस आम्नाय

अनुकुलही उक्त श्लोकका अर्थ निश्चय होता है सो लिखिये हैं । मैं जो पूजक हूं सो कराये हुवे या स्वतः सिद्ध अतिमनोहर चैत्यालयोंकी नित्यं कहिये निरंतर वंदना करता हूं । और जलादि अष्टद्रव्योंसे तथा जलादि अष्टद्रव्योंको मिलाकर अर्घसे पुजन करता हूं; क्या करके? शीस नवाय प्रणाम करके. किस प्रयोजनके अर्थ? पाप कर्मोंकी शांतिके अर्थ–जिनचैत्यालयोंकी मैं वंदना करता हूं । सो ये कहां २ हैं? सो सामान्य अपेक्षा तीन लोकमें हैं । त्रिलोकीं गतान् यह विशेषण सामान्यसे चैत्यालयोंका अधिकरण निरूपण करता है । अधिकरण दो प्रकार होता है सामान्य और विशेष्य । सो सामान्य अधिकरण चैत्यालयोंका तीन लोक है । और विशेष्य अधिकरण अधोलोकमें भवनवासी, व्यंतर देवोंके आवास है । ऊर्ध्वलोकमें कल्पवासी देवोंके आवास हैं । मध्यलोकमें ज्योतिषीदेवोंके विमान हैं. सो भावनव्यंतरान् द्युतिवरान् कल्पामरान् इन तीनों विशेषणोंसे अधो मध्य ऊर्ध्वलोकमें क्रमसे अकृत्रिमचैत्यालयोंके विशेष्य अधिकरण कथन किये हैं । यद्यपि भावन, व्यन्तर, द्युतिवर, कल्पामर नामसंज्ञक शब्दोंका अविधाशक्ति करके देवपर्याय विशेष्य वाच्य अर्थ होता है । किंतु जो यहांपर वाच्य अर्थ किया जाय तो उक्त श्लोकमें च शब्द और अपिशब्द चाहिये । जब ऐसा अर्थ हो मैं चैत्यालयोंकी वंदना करता हूं च पुनः भावनादि देवोंकीभी वंदना करता हूं क्योंकि विना च शब्द और अपि शब्दके एक क्रियापदके साथ दो कर्मवाची पदोंका संबंध नहीं हो सक्ता । और यह अर्थ प्रकरण विरुद्ध भी है । क्योंकि यहां प्रकरण अधिकरणका है जब कि त्रिलोकींगतान् इस विशेषण करके सामान्यअधिकरण कथन किया है; तो तीन लोकके विषय कहां २ यह अवश्य बतलाना चाहिये; क्योंकि विशेष्यके विना सामान्य खरविषाणवत् है. उक्तं च– निर्विशेष्यं हि सामान्यं भवेत् खरविषाणवत् और बिना विशेष्य अधिकरण निरूपणके कविका ज्ञान और वाक्यभी प्रमाणभूत नहीं होसक्ता. क्योंकि केवल सामान्याधिकरण विषयक वक्ताका

ज्ञान प्रमाण नहीं; तब वाक्यभी प्रमाण नहीं होसक्ता।

इस कारण उक्त कहा हुवा श्लोकभी अप्रमाण ठहरेगा. तातै सामान्य विशेषात्मक पदार्थको विषय करनेवाले ज्ञानकोही प्रमाण माना गया है। इसी हेतुसे सामान्य विशेष आत्मक पदार्थही प्रमाणका विषय कथन किया है। तथा चोक्तं- सामान्य विशेष्यात्मा तदर्थो विषयेति। और बिना विशेषाधिकरण निरूपणके एकाधिकरण होनेसे सर्व कृत्रिम चैत्यालयोंका भेदभी नहीं प्रतीत होगा। चैत्यनिलयान् इस पदमें बहुवचनभी नहीं बनेगा। किंतु चैत्यनिलयं ऐसा प्रयोग करनेसे छंद बिगड जायगा. और जो किसी अन्य अपेक्षासे चैत्यालयोंका भेद सिद्ध करोगे तो तीन जुदे २ चैत्यालयोंका भिन्न २ अधिकरण अवश्य बतलाना पडेगा, तातै भावनव्यंतरान इत्यादि विशेषण निश्चयसे चैत्यालयोंके विशेषाधिकरण निरूपणमें तत्पर हैं. और भावनादिदेवोंको दुष्कर्मोंकी शांति करनेके अर्थ जैनसिद्धान्तोमें अष्ट द्रव्योंसे पूजन करनेका कहीं विधानभी नहीं किया है. चाहे सम्यग्दृष्टि हों या मिथ्यादृष्टि. और जो कुयुक्तियोंसे सर्व देवोंको सम्यग्दृष्टि सिद्ध किये जांय तो अभव्य जीवभी सम्यग्दृष्टि हो जांयगे. क्योंकि अभव्योंकी गति नौ ग्रैवेयकपर्यंत सिद्धांतोंमें कथन करी है. तो अभव्यभी मोक्षके पात्र होनेसे अभव्यपदार्थका ही लोप होगा। सर्व संसारीजीव भव्य पदके ही वाच्य ठहरेंगे। अव्रती सम्यग्दृष्टियोंकीभी अष्टद्रव्योंसे पुजा करनी कहीं नहीं लिखी है. तातै अभिधा शक्ति करके भावनादि शब्दोंका देव अर्थ करनेसे तात्पर्यकी सिद्धी नहीं होसक्ती। यहां कविका तात्पर्य विशेषाधिकरण निरूपण करनेका है; और देव चैत्यालयोंका अधिकरण नहीं होसक्ते। तातै तात्पर्यकी अनुपपत्ति होनेतैं लक्षणशक्ति करके लक्ष्य अर्थका ग्रहण है। शब्दोंमें अर्थके बोध करनेकी शक्ति तीन प्रकार है। **अभिधा, लक्षणा, व्यंजना** सो अभिधाशक्ति करके वाच्य अर्थका बोध होता है. और लक्षणाशक्ति करके लक्ष्य अर्थका बोध होता है. और व्यंजनाशक्ति करके व्यंग्य अर्थका

बोध होता है। तातै शब्दके अर्थभी तीन प्रकार हैं. वाच्य, लक्ष्य, व्यंग्य तथा चोक्तं श्लोक "वाच्यार्थोऽभिधया बोध्यो लक्षणया मतः लक्ष्यो। व्यंग्यो व्यंजनयाताः स्युस्तिस्रः शब्दस्य शक्तयः" इति जिस प्रकरणमें जो नयसे अर्थसे तात्पर्य सिद्ध हो वहां वह अर्थ ग्रहण करना चाहिये। सो लक्षणा भी तीन प्रकार हैं। **जहत, अजहत, जहताजहत** सो यहां जहत लक्षणा ग्रहण करनी तिसकर देव भावन आदि शब्दोंका जो वाच्य अर्थ जो देवपर्याय विशेष्य है तिसका त्यागकर और स्वाश्रय संबंध कर भावनादि शब्दोंके जो लक्ष्य अर्थ देवोंके आवास सो ग्रहण करने और त्रिलोकींगतान् इस विशेपणसे गतार्थ लेकर ऐसा प्रयोग करना भावन व्यंतरावासगतान् अर्थात् तीन लोकके मध्य अधोलोकमें भावनव्यंतर देवोंके आवासोंमें जो मुझे आगमप्रमाण करके अकृत्रिम चैत्यालय प्राप्त हैं तिनको मैं वंदना, पूजन करू हूं। क्योंकि सिद्धान्तोंमें अधोलोकमें देवोंके आवासोंमें ही अकृत्रिम चैत्यालय विधान किये हैं तातैं ही भवनवासी और व्यंतर दो जातिके देवोंका समुच्चयरूप भावनव्यंतरान् यह एक भिन्न विशेषण कथन किया है. और मध्य लोकवर्ती अकृत्रिम चैत्यालयोंका विशेष्याधार जनानेके अर्थ द्युतिवरान् यह द्वितीय विशेषण कथन किया तिसकाभी जहतलक्षणा करके आवास या विमान लक्ष्य अर्थ पूर्ववत जानना. इसी प्रकार ऊर्ध्वलोकमें कल्पामरान् इस तृतीय विशेषणकाभी अर्थ समझना. और यहां कविका लक्षक पद भावनादिकों करके लक्ष्य अर्थ आवासविमानादिकोंको कथन करते करते भावनादि शब्दोंकी व्यंजनाशक्तिसे चैत्यालयोंका महत्व दिखलानेका है। अर्थात् भावनादि चतुर्णिकायके देव भी चैत्यालयोंकी पूजन करते हैं। सो चतुर्णिकायके देवों करके चैत्यालयोंका वंदना पूजन व्यंग्य अर्थ भावनादि शब्दोंकी व्यंजनाशक्तिसे ज्ञात होता है। इत्यलम्।

और सर्वगान् यह विशेषण जो है सो शेष चैत्यालयोंका आधार निरूपण करता है। सर्वेषु गम्यंते प्राप्यंते इति गाः। तान् सर्वगान्

अर्थात् मध्यलोकमें ज्योतिषी देवोंके विमानोंको त्यागकर शेष सर्व स्थानोंका वाचक सर्व शब्द है। सो मनुष्योंके कराये कृत्रिम चैत्यालय मनुष्योंके ग्रह ग्राम नगर वन उपवन पर्वतादिकोंमें और अकृत्रिम सुमेरु आदि पर्वतोंमें नंदीश्वरादि द्वीपोंमें जो विद्यमान चैत्यालय हैं, सर्वकी मै वंदना वा पूजन करूं हूं। तथा चोक्तं—श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जंबुवृक्षे। वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकररुचके कुण्डले मानुषांके। इष्वाकारेऽजनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यंतरे स्वर्गलोके। ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भवनमहितले यानि चैत्यालयानि॥ अर्थ— मेरु, कुलाचल, रुपाचलवक्षार, रतिकररुचक, कुण्डल, मानुषोत्तर, इष्वाकार, अंजन, दधिमुख, इत्यादिक पर्वतोंमें और शाल्मली जम्बूचैत्य आदिक वृक्षोंमें और व्यंतर, स्वर्ग, ज्योतिष्क, भवन आदिके लोकमें जिनमंदिर हैं, उनको मैं वंदना करूं हूं।

नोट —सम्पादक जैनसिद्धांत इस लेखपर विचार करके आशा है कि अपने पहले अर्थपर स्वयं निषेध प्रगटकर देंगे. जिससे जैनजनता भ्रमसे निवृत्त हो।

श्रीमान् पं० बनारसीदासजीका इस विषयपर एक लेख फाल्गुन वदी ५ वीरसं० २४४८ के जैनमित्रमें प्रकाशित हुवा है वह इस मुजब है——

शासनदेव-चर्चापर विचार।

(लेखक-पं० बनारसीदास, सहारनपूर जैनसिद्धान्त अंक १२)

अनादि सिद्ध श्री सर्वज्ञ प्रणीत श्री जैनागममें वीतराग विज्ञानताको ही मोक्षके प्रति असाधारण कारण माना है. तथा पुर्णतया अथवा एक देश वीतराग विज्ञानताके आधार स्वरूप श्री पंचपरमेष्ठी भगवानकी पुजा सेवा उपासना भक्ति आदि परिणामको ही व्यवहार दृष्टिसे वीतराग विज्ञानताकी प्रापिका हेतु कथन किया है। यही कारण है कि-

हितेच्छु पुरुष अव्रत सम्यग्दृष्टी अवस्थामें भी संसारिक रागीद्वेषी देवों-
की सेवा पूजा भय स्नेह किसी प्रकारकी वांछा आदिके वश हो कदापि
नहीं करते, सेवा पुजा तो दूरही रही मनमें भी उस पदको उपादेय
नहीं समझते. परन्तु खेद है कि– विद्वद्वर इसही श्री जिनागमसे सरागी
देवोंकी पुजा अर्पणको गृहस्थोंके लिये मुख्य धर्म सिद्ध करना चाहते हैं!
इसका अनुभव पाठक महाशयोंको जैनसिद्धान्त अंक १२ के शासन-
देव चर्चा शीर्षक लेखको पढनेसे पूर्णतया होगया होगा। इसमें लेखक
महाशयने कतिपय श्रीआदिपुराणजीके मंत्रोंद्वारा इन्द्रको अर्घ अर्पण
करना ही श्री १००८ श्री भगवानकी पूजन होना सिद्ध करना चाहते
हैं परंतु यह केवल धर्म विरुद्ध क्रियाके प्रचारका आग्रह मात्र है।
कुछ युक्ति अथवा आगमसे संगत नहीं है जैसे इन्द्र शब्दका अर्थ है।
देवोंका ईश्वररूप लिया है और उससे श्रीसिद्धार्चन माना है यह बिल-
कुल असत्य है क्योंकि श्रीजिनसेनस्वामी जैसे विद्यमान आचार्य ऐसी
आज्ञा कदापि प्रदान नहीं कर सक्ते कि -इन्द्रको आहुती दी जाय और
श्रीसिद्ध भगवानकी पूजन हो जाय। यह कथन तो ऐसा है।कि– ब्राह्म-
णोंको जिमाना और पितेश्वरोंको तृप्त होना !

कृपया किंचित विचारशक्तिको काममें लाइये जिससे यथार्थ
अर्थका अनुभय हो, हजारबार सिर पटकनेसे अर्थके अनर्थका अनुभव
न होगा।

शब्द अनेकार्थ होते हैं और उनका अर्थ प्रकरणानुसार किया
जाता है। यह नियम नहीं है कि– शब्द केवल रूढी मात्र अर्थकोही
प्रकट करे. प्रकरण पाकर यौगिक अर्थकोभी प्रगट किया करता है जैसे
मंडप यह शब्द रूढितः किसी स्थान विशेषका वाचक होनेपरभी पुरु-
षका विशेषण होनेपर ' मंडंपिबतीति' इस निरुक्तिके द्वारा मांड पीने
वाला इस अर्थको प्रकाशित करता है. उस ही प्रकार इन्द्र यह शब्द
रूढसे देव राजरूप अर्थका सूचक होनेपरभी इन मंत्रोंसे श्रीमान्

सिद्ध महाराजका पूजन करो इस विशेष वचनसे इंदतीति इन्द्रः इस यौगिक अर्थको रखता है अर्थात् परम ऐश्वर्यरूप अवस्थाकी प्राप्तिवान् जो श्रीसिद्ध महाराज उनकाही विशेषण होता है. यह अर्थ इन्द्र शब्दका श्रीपूज्यपाद स्वामीने इन्द्रिय शब्दकी निरुक्तिमें किया है और इन्द्र शब्दसे आत्मा अथवा नामकर्म यह अर्थ लिया है। यदि सर्वत्र इन्द्र शब्दको रूढिही मानकर देवराजरूप ही अर्थ लेंगे तो उपर्युक्त आगमसे बाधा आयेगी।

आगाडी चलकर आप लिखते हैं कि– गृहस्थकी इतनीही मजाल है कि– परमात्म दशाके साध्य साधकोंको तथा भक्तोंको होसके उतना वही इकट्ठा करले. सो महाशयजी इन्द्रसे असंख्यात गुणी निर्जराका धारक पंचम गुणस्थानी ग्रहस्थको क्या परमात्म दशा यह साध्य साधक नहीं अथवा युक्त नहीं? जिसमें इन्द्रकी पूजामें मन लगावें या भावें?

इससे आगाडी लिखते हैं कि– अकृत्रिम चैत्यालयोंके अर्थमें जो भावनव्यन्तरकल्पामरद्युतिवर शब्द हैं वे देवविशेशके वाचक हैं; क्योंकि इनके उत्तर– कोई **ताद्धित प्रत्यय** नहीं है. सो यहभी नितान्त अनाभिज्ञता है, क्योंकि– यहां तद्धित प्रत्ययका लुक् होगया है; जिसका सूत्र पाणीनीय व्याकरणमें यह है– " **तद्राजस्य बहुषु तेनेवा स्त्रियां** " अतः इन देवों संबन्धी श्रीजिनमंदिरोंके वाचक उपर्युक्त शब्द हैं। यदि ऐसा नहीं मानोंगे तो भावनव्यन्तरद्युतिवरकल्पामर देवोंका ग्रहण करेंगे और इनका वन्दे क्रियामें अन्वय अवश्य करेंगे कारण कि नियम है– " सहनियोग प्रविष्टानां सहवा प्रवृत्तिः सहवा निवृत्तिश्च " अर्थात् जो जिनका सहयोग होता है उनकी साथ ही प्रवृत्ति होती है साथही निवृत्ति; अतः जिस प्रकार अकृत्रिम श्रीचैत्यालयोंका वन्दे क्रियामें अन्वय होकर श्री अकृत्रिम चैत्यालयोंका वंदना नमस्कार करता हूं यह अर्थ होता है; उसी प्रकार भावनव्यन्तरद्युतिवरकल्पामरोंको वंदना नमस्कार करता हूं यह अर्थ होगा. और इसका खंडन लेखक महाशयने स्वतः किया है जैसे–

आर्ष ग्रंथोंमें नमस्कारके प्रकरणमें देव शास्त्र गुरुके सिवाय सबका नि-षेध किया है इत्यादि ।

इस लिये भावनव्यन्तरद्युतिवरकल्पामर शब्दोंका अर्थ देव करनेमें स्ववचन विरोध आवेंगे ।

इत्यादि कथनमें सिद्ध है कि-श्री जिनशासनके देव जो सर्वज्ञ वीतराग ही हो सक्ते हैं. अन्य इन्द्रादि रागी द्वेषी देवोंकी सेवाको सं-सारका कारण मिथ्यात्व कहा है ।

जो महाशय रागी द्वेषी देवोंकी पुजाको पुष्ट करते हैं वे निः संदेह पापसे नहीं डरते; पर श्रीविद्वज्जन बोधकजीके कर्ता आत्म हिते-च्छु थे. उन्हें पापसे डर था इस कारण उन्हांने आगमसे विरुद्ध आपके समान अर्थ नहीं किया इसमें उनका पक्षपात कहना नितांत अपनी सज्जनता प्रगट करना है । उन्हांने जो भी उपकार किया उसकी प्रशंसा लेखमें नहीं आसक्ती । हम सबको उनका अनुकरण कर यथावत अर्थसे सर्व साधारणको सुचित करें और अपना तथा अन्यका उपकार करें ।

विज्ञेषु किमाधिक्येन शुभं ।

श्रीमान् पं० पन्नालाल गोधाजी उदासीनश्रावक हमारे पास भेजे हुये अपने-" जैनसिद्धान्तके लेखोंपर विचार " इस शीर्षकके लेखमें इस विषयपर अपना अभिप्राय इस मुजब देते हैं-

तथा जो तीन लोककी जिनचैत्यालयोंके अर्घमें केवल जिन भगवानकोही वंदना और पूजन कहा है. परंतु आप उस्का अर्थ करने लगे कि-चारों निकायके देवोंकोभी अर्घ्यादि प्रदान करना बताया है. सो एभी आपकी चतुराई ठीक नहीं है! जबकी आप चारों देवोंको अर्घ प्रदान करना सिद्ध करते हैं; तो वहां "वंदे" शब्द भी हैं.तो क्या व्यंतरादिकोंको वंदना भी करना होगा ? जो कहो कि नहीं, तो फिर

दो बातमें एक मानो; एक नहीं मानो. अर्थात् अर्घ चढाया मानो और वंदना करना नहीं मानो सो कैसें बने ? और जो कहो कि वंदना करे. तो फिर आप इसका पुजनसे जादा महत्व बताते है. और कह चुके हैं कि–शासनदेवोंकी पूजन तो करना किंतु नमस्कार नहीं करना. सो ये वाक्य आपके स्ववचन बाधित होते हैं.

अथवा इस 'वंदे' शब्दका अर्थ आप चतुराईसे दूसरा अर्थ बनाओगे.सो कदाचित् नहीं बनेगा क्योंकि जब अकृत्रिम बिंबोंके अर्थ वंदे शब्द है; वह सिवाय नमस्कारके दूसरा अर्थ हो नहीं सकता. सो यो ही शब्द आपकेही मतसे शासनदेवोंके अर्थ कैसे होसकता है ? इस वास्ते उक्त श्लोकसे व्यंतरादि ४ प्रकारके देवोंके स्थानमें चैत्यालय है. उन्हीको नमस्कार और अर्घ प्रदान है; व्यंतरादि देवोंको कदापि नहीं. आपका अर्थ पक्षसे है सो ठकि नहीं.

श्रीमान् पं० आप्पाशास्त्रीजी उद्गांवकरको पं० वंशीधरजीका–" वंदेभावनव्यंतरान्द्युतिवरान् " इस बाबद जो मत है उसपर अपना आभिप्राय भेजनेकी कृपा करें इस आशयकी मैंने विनति करीथी उसका उत्तर उन्होंने इस प्रकार दिया है कि–

" उद्गांव—आश्विन वद्य २।१८४४, ता. ७।१०।२२

श्री० रा. रा. शंकर पंढरीनाथ रणदिवे मु० सोलापूर यांस, आपण पत्र पाठाविलें तें पोहोंचलें; सर्व मजकूर समजला. त्यावर माझा अभिप्राय–(वन्दे भावनव्यंतरेत्याद्युपरि–अभिप्राय लेखक.)

" आप्पाशास्त्री उद्गांवग्रामनिवासी ।

" वन्दे भावनव्यंतरान् द्युतिवरान् कल्पामरान् सर्वगान् "

अस्यवाक्यस्यार्थः पं० न्या० श्री० वंशीधरशास्त्रिणा– "चतुर्णिकायदेवान् वन्दे " इति कृतस्तर्हि किं भवदभिप्रायः ? इति लिखित्वा

श्री० रणदिवे शंकरेणैका पत्रिका मन्निकटे प्रेषिता। ततो मदभिप्रायो यथामति संक्षेपाल्लिख्यते तथाहि—

उपरि लिखितं वाक्यमशुद्धं प्रायः। अतएव—"चतुर्णिकायदेवान् वंदे" इत्यर्थो भवति, तस्मात्—

"वन्दे भावनव्यंतरद्युतिवरान् कल्पामरान् सर्वगान्।" इति प्रशस्तं मे भाति। अस्यस्पष्टीकरणं— "भावनव्यंतरद्युतिवरान्" इत्येक पदं च "काल्पामरान्" इत्येकपदं। अस्यार्थः— भवनव्यंतरद्युतिवराणामिमे भावनव्यंतरद्युतिवरास्तान्। "तस्येदमित्यण्" भवन व्यंतरद्युतिवर संबंधिन इत्यर्थः। अपिच। कल्पामराणामिमे कल्पामरा स्तान्। अत्रापि—"तस्येदमित्यण्" कल्पामरसंबंधिनः सर्वगान्—सर्वज्ञ बिंबान् वंदेऽभिवादये। ये गत्यर्थकास्तेज्ञानार्थका इति वचनात्-सर्वे- गच्छंतिजानंतीति सर्वगास्तानित्यर्थः। तत्संबंधिन इति कुत्र वर्तते? इति चेत् पश्यत—चैत्यभक्तौ ताडपत्रक पुस्तके ११९ पृष्ठे।

भवनविमानज्योतिर्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवंदितानां त्रेधा वंदे जिनेंद्राणाम्॥ ९॥

टीका—भवनेत्यादि। भवनानिच विमानानिच ज्योतिषश्च व्यं- तराश्च ज्योतिर्व्यंतरनरास्तेषां। लोकानि वासस्थानानि। भवनविमाना- निच ज्योतिर्व्यंतरलोकाश्चतेषां। विश्वचैत्यानि सर्वप्रतिमाः। केषां जिनें- द्राणां। कथं भूतानां? त्रिजगदभिवंदितानां—त्रिलोकाभिस्तुतानां। त्रेधा— मनोवाक्कायैः वंदे। इति टीकाकारः प्रभाचंद्रभट्टारकः। इत्युक्त्वात्— "भवनव्यंतरद्युतिवरसंबंधिनो जिनाबिंबान् वंदे। इत्यर्थो भवतीति मद भिप्रायो ज्ञातव्यः।"

युष्मत्प्रेमाभिलाषी,
आप्पाशास्त्री उदगांवकर.

भावार्थः—तत्रस्थचैत्यालयोंमें होनेवाले जिनबिंबोंको मै नमस्कार करता हूं, ऐसा इस-"वंदे भावन" वाक्यका अर्थ होता है; और इसमें **तद्धित प्रत्यय**भी हो सक्ता है. ऐसा मेरा अभिप्राय है यह ज्ञात होवें.

श्री. पं. अजितकुमार शास्त्रीजीका भी इस विषयपर एक लेख मगसिर वदी १ वीर सं० २४४८ के जैनमित्रमें प्रगट हुवा था वह यह है—

एक निर्णय विषय।

चैत्यालयोंके साथ चतुर्निकाय देवाराधन।

जैनमित्र अंक ४५ ता० ६ अक्टूम्बर २१ में जो सम्पादकने विद्वानोंसे समाधान पूछा है इसके विषयमें हमें यहां और विषयोंमें न जाकर केवल अकृत्रिम चैत्यालय पूजाके प्रथम श्लोकका अर्थ विचारना है। इस श्लोकका अर्थ पं० बंशीधरजी शास्त्री सोलापूरने जो किया है वही है? या उससे भिन्न है?।

यह तो सर्व साधारणकी धारणा है, या होगी अथवा होनी चाहिये कि-अकृत्रिम चैत्यालय पूजामें अकृत्रिम चैत्यालयोंके जिनबिम्बोंका ही पूजन है। अति घनिष्ठता तथा समीपताके कारण कृत्रिम चैत्यालयोंको भी ले लिया हे। क्योंकि इस शब्दका उद्दिष्ट अर्थ यही है। इसके सिवाय इस पूजनका आहुतीमंत्र भी अपने शब्दोंसे केवल चैत्यालयोंको ही प्रकट करता है। इन मंत्रोंमें न तो कोई श्लेष ही है, न कोई विवादस्थल ही है और न इन मंत्रोंमें ऐसा होता ही है। अतः यह मंत्र ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति) स्पष्ट बतलाता है कि-हमारा पूजन कृत्रिम, अकृत्रिम चैत्यालयोंका है; न कि चारनिकायके देवोंका है। क्योकि यह सभीको ज्ञात है तथा वास्तवमें है ही। कि-प्रत्येक पुजाके द्रव्य चढाते

समंतभद्रमें जो कुछ कहा जाता है शुद्ध संक्षिप्त रूपसे वही इन मं-त्रोंमें भी प्रकट किया जाता है।

यदि ' कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकीं गतान्। वंदे भावनव्यंतरान् द्युतिवरान् कल्पामरान् सर्वगान्, सद्गंधाक्षतपुष्प-दामचरुकैर्दीपैश्च धूपैःफलै, नीराद्यैश्च यजे प्रणम्य शिरसा दुष्कर्मणां शांतये॥ इस श्लोकमें चारों प्रकारके देवोंका नाम लिया होता तो उस मंत्रमें भी उनका नाम अवश्य होता। किंतु उसमें किसी भी देवका नाम नहीं है।

इसके सिवाय ऐसा अर्थ करनेसे प्रकरण असंगत बैठता है। क्योंकि चैत्यालयोंकी पूजाके साथ चतुर्निकाय देवोंका क्या सम्बन्ध ? कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकीं गतान्, इस चरणमें तो चैत्यालयोंको नमस्कार हो, तथा ' वंदे भावनव्यंतरान् द्युतिवरान् कल्पामरान् सर्वगान् ' इस दूसरे चरणमें स्वर्गवासी देवोंको नमस्कार हो, यह कौनसी समानता ? तथा कौनसा प्रकरण ?। बादरायण संबंध ही इस अर्थको बता सक्ता है ! कर्मोंके क्षयार्थ चैत्यालयस्थ जिनबिंब तो हो सक्ते हैं; किंतु चतुर्थ गुणस्थनवर्ती देव जो–राग, द्वेषसे लिप्त हैं जिनका ध्यान भोगोपभोगोंकी ओर चित्तको खींचता है, किस प्रकार कर्मोंको क्षय करनेमें सहकारी हो सक्ते हैं? परिणामोंकी विशुद्धतामें तो इनसे अधिक तिर्यंच भी होते हैं। मनुष्योंमें तो फिर क्या कहना ? श्रावक, मुनि, अनेक ऋद्धियोंके धारक ऋषि, श्रतकेवली आदि चरमोन्नतिके पानेवाले विद्यमान हैं; उनका नाम क्यों न लिया ? उनके प्रभावके कर्मक्षपणमें अधिक सहायता मिलती। इस लिये सिद्ध होता है कि– देव बाह्य उपसर्गादिके निवारक तो हो सक्ते हैं; किंतु कर्मोंके क्षय कर-नेमें कारण नहीं हो सक्ते हैं।

श्लोकका अर्थ कैसा किया जाय ? इस शंकाके निवारणके लिये प्रथम तो ' अण् ' प्रत्ययको स्वार्थमें नकरके ' तस्येदम् ' (सम्बन्ध)

अर्थमें करना चाहिये । वैसा करनेसे अभीष्ट संगत अर्थ निकाल सक्ता है । इस लिये इस धारणाको तो छोड ही देना चाहिये कि– यह प्रत्यय यहां स्वार्थमें किया है । क्योंकि ऐसा करनेसे एक तो अर्थका अनर्थ हो जायगा दूसरे अर्थ भी असंगत रहेगा । श्लेष शब्दोंमें भी प्रकाणानुसार अर्थ करना पडता है । भोजन करते समय यदि 'सैन्धवमानय' कोई कहे तो उसको नमक ही मिलना चाहिये. क्योंकि– शाक, दाल, आदिमें नमककी आवश्यकता हो सक्ती है; उसमें घोडेकी आवश्यकता नहीं है । इसी प्रकार यदि चलते समय 'सैंधवमानय' कहा जाय तो उसको घोडा मिलना चाहिये. क्योंकि– वहां वैसा ही प्रकरण है । उस जगह नमक देना मूर्खता समझी जायगी । इस लिये श्लोकका अर्थ पूर्वापरसे संबद्ध बैठालना चाहिये; और प्रयत्न भी तदनुकूल ही करना चाहिये । अन्यथा नहीं ।

यदि तब भी अर्थ ठीक न निकले तो निश्चय कर देना चाहिये कि श्लोक अशुद्ध है । इसमें पाठान्तर हो गया है । यह दूसरी बात है कि– किसी विद्वाननें पूर्ण प्रयत्न तथा ध्यान इस ओर नहीं किया है । यदि ऐसा होता तो मालूम हो जाता कि–श्लोक अशुद्ध है ।

और हर्षका विषय तो यह होता कि– विद्वानोंकी यह धारणा सच निकलती । हमको जैनसिद्धांतभवन आराकी एक पूजन पुस्तकको देखनेसे ज्ञात हुआ है कि– श्लोक अशुद्ध छपा गया है । इसमें पाठान्तर हो गया है जिसकी वजहसे इतना टकराना पडता है ।

यहांपर किसीकी यह कुतर्क तो चल नहीं सक्ती है कि– पुस्तकमें किसी आधुनिक विद्वानने सुधार कर दिया होगा; क्योंकि वह प्रति प्राचीन है अर्वाचीन नहीं है । और फिर ऐसी शंका यहां क्यों होय? इस शंकाके लिये तो हमारी छपी हुई पुस्तकका पाठ तयार है । वहां अर्थ संबद्ध बैठे उस स्थानपर पाठांतर होनेका क्या भ्रम? अस्तु ।

'यह श्लोक इस प्रतिमें इस प्रकार है—

कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकीं गतान् । वंदे भावनव्यन्तरद्युतिवरस्वर्गामरावासगान् ।

सद्गन्धाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलै । द्रव्यै र्नीरमुखैर्यजामि सततं दुष्कर्मणां शांतये ॥

इसका भावार्थ यह है— " मैं पापकर्मोंको शान्त करनेके लिये त्रिलोकवर्ती कृत्रिम तथा अकृत्रिम चैत्यालयोंको तथा भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और कल्पवासी देवोंके विमान या भवनवर्ती चैत्यालयोंको सर्वदा वंदना करता हूं। और शुद्ध जल प्रमुख [जलादि] चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल इन द्रव्योंके द्वारा नमस्कार करता हूं।

इस श्लोकका यही अर्थ होता है. अन्य असंगत कोई भी अर्थ नहीं निकलता है ।

इसमें यह शंका भी नहीं उठानी चाहिये कि– " जब त्रिलोकवर्ती सभी चैत्यालयोंका नाम ले लिया फिर देवोंके विमानवर्ती चैत्यालयोंका क्यों नाम लिया? क्योंकि - ये चैत्यालय भी तो उसीमें शामिल हैं " क्योंकि–विशेषता दिखानेके लिये शब्दोंका प्रयोग इस प्रकार प्रायः हुआ है। जैसे—वर्द्धमान तीर्थंकरके उत्पन्न होते ही त्रिलोकवर्ती समस्त जीवोंको स्वभावसे ही सुख—शांति मिली तथा नारकी जीवोंके लिये भी कुछ क्षण तक शांति मिली। इत्यादि दृष्टान्तोंसे यह शंका सर्वथा उड जाती है. क्योंकि— सामान्य रूपमें अंतर्भाव होनेपर भी विशेषता दिखाने लिये मुख्य शब्दोंका प्रयोग ऐसा करना ही पडता है। इसी प्रकार तीन लोकके कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालयोंका ग्रहण होने पर भी देवोंके विमानस्थ अकृत्रिम चैत्यालयोंका नाम लिया। यहांपर विशेषता एक तो अकृत्रिमताकी वजहसे है तथा अकृत्रिम चैत्यालयोंमें भी देवोंके विमानवर्ती चैत्यालय होनेसे भी विशेषता है। इस लिये

सामान्यतासे उनका नाम आजानेपर भी फिर उनको ग्रहण किया। अतएव उपर्युक्त शंका यहां स्थान नहीं पाती है।

इसके अतिरिक्त संस्कृत नंदीश्वरद्वीपकी पूजामें अकृत्रिम चैत्यालयोंका नाम तो लिया है किंतु उन देवोंका नाम नहीं लिया है। यदि श्लोकमें अकृत्रिम चैत्यालयोंके साथ चारनिकायके देवोंको भी कुछ नमस्कार होता तो यहांपर भी कुछ न कुछ अवश्य होना चाहिये था। वहां स्पष्ट लिखा हुआ है– " श्रीचंदनाद्याक्षततोयपूतं विकाशिपुष्पांजलिना सुभक्त्या। सद्भावनावासजिनालयस्थान् जिनेन्द्रबिंबान् प्रयजे मनोज्ञान्। (भवनवासी देवोंके भवनवर्ती चैत्यालयोंके जिनबिंबोंका अष्टद्रव्यसे पूजन करता हूं) श्री चंदनाद्या० सद्व्यन्तराणां निलयेषु संस्थान् जिनेन्द्र० [व्यंतरदेवोंके गृहवर्ती चैत्यालयों जिनप्रतिमाओंका जलादिक द्रव्यसे पूजन करता हूं। श्रीचंदनाद्या० चंद्रार्कताराग्रहऋक्षज्योतिष्काणां यजे वै, जिनबिंबवर्यान्, [चंद्र, सूर्य, तारे, ग्रह, नक्षत्र इन पांच प्रकारके ज्योतिषी देवोंके विमानस्थ जिन प्रतिमाओंका अष्ट द्रव्यसे पूजन करता हूं)। कल्पेषु कल्पातिगकेषु चैव देवालयस्थान् जिनदेवबिम्बान्। सन्नीर गंध्यक्षतमुख्यद्रव्यैर्यजे मनोवाक्कायतनुभिर्मनोज्ञान्। (कल्पवासी तथा कल्पातीत स्वर्गवासी देवोंके विमानवर्ती जिनप्रतिमाओंका मनवचन कायसे अष्ट द्रव्य द्वारा पूजन करता हूं।) इन श्लोकोंसे स्पष्टतया मालूम होता है कि– चैत्यालय पूजामें देवोंके विमानस्थ चैत्यालयोंकी ही पूजा है। उन देवोंकी नहीं है। इस प्रकार पुष्ट प्रमाणोंसे अच्छी तरह सिद्ध होता है कि– उस श्लोकमें देवोंके विमानस्थ चैत्यालयोंका ही पूजन है अन्य नहीं अपनी पुस्तकके अशुद्ध पाठको हटाकर शुद्ध पाठ सर्व भाईयोंको करलेना चाहिये जो हमने लिख दिया है।

यदि इससे भी जबरदस्त कोई प्राचीनप्रतिका प्रमाण चार प्रकारके देवोंकी पूजनको सिद्ध करनेवाला हो; या अन्य ही कोई अनिवार्य

दशा होय तो पंडितजी महोदय सुचित करें ताकि निर्णय ठीक निर्णीत हो जाय। निवेदक—

अजितकुमार शास्त्री, कलकत्ता.

नोट— इस लेखमें जो पं० बंशीधरजीके अर्थका खंडन किया गया है उसपर अन्य विद्वान् भी ध्यान देकर अपनी सम्मति प्रगट करें।

———

पं० अजितकुमार शास्त्रीजीने अपने इस लेखके बारेमें पौष सुदी ५ वीर नि० २४४८ के खं० जैनहितेच्छुमें विरोध किया है कि— " वह लेख यद्यपि मैंने लिखकर भेजाथा किंतु लेख काटछांट करके छपा है। अर्थात् लेखका कुछ भाग प्रकाशित नहीं किया है." इत्यादि.

और फिर आषाढ वदी ५ वीर नि० २४४८ के खं० जैनहितेच्छुमें प्रसिद्ध किया है कि— " इसके लिये हमको केवल इतना कहना है कि— आधुनिक पूजनपुस्तकोंमें जो कृत्याकृत्रिमादि श्लोक है उसका अर्थ वही है कि— पं० वंशीधरजीने किया था. यह यदि आप न जान सकें तो किसी संस्कृतज्ञ अजैन विद्वानको ही दिखा लीजिये. "

इससे यह सिद्ध होता है कि— जैनमित्रके संपादकजीने इनके लेखमें जो कुछ काटछांट की होगी सो यह ही ठहरेगी; जिससे कि— और कुछ दूसरी की हुई काटछांट पं० अजितकुमार शास्त्रीने अभीतक भी किसी पत्रमें प्रसिद्ध की नहीं.

अब इसपर हमारे शास्त्रीजीसे हमारा इतनाही कहना है कि—

" वंदे भावनव्यंतरान् द्युतिवरान् कल्पामरान् सर्वगान् " इस चरणके बारेमें पं० ब्र. शीतलप्रसादजी, पं० बनवारीलालजी और पं.

बनारसीदासजी आदि संस्कृतज्ञ जैनविद्वानोंने जो कहा है उसको तो आप मानते नहीं तो फिर अजैन विद्वानोंने कहाहुवा आपको कैसे श्रद्धेय होगा ? हां यदी उनका कहना आपके प्रतिकूल न हो तब न ? और कदाचित अनुकूल न हो तो उनका कहना आप मान्य करेंगे क्या? नहीं. या ऊपर कहे हुवे ये जैनविद्वान क्या संस्कृतज्ञ नहीं हैं? तो फिर इससे ऐसा सिद्ध होता है कि–जिसका कहना अपने अनुकूल हो वह आप श्रद्धेय मानोगे: चाहे वह विद्वान जैन हो या अजैन ! अस्तु फिर इस विषयमें और एक जैनविद्वानका मत देताहूं; लेकिन वह मानना या न मानना आपके मर्जी ऊपर है. मैने इसबारेमें पं० न्यायाचार्य माणिकचंद्रजीको पुछाथा; उनोंने अपने चैत्र सुदी ५ सं. १९७९ के पत्रमें लिखा है कि–" कृत्याकृत्रिम " श्लोकका अर्थ– तत्रस्थचैत्यालय है. पूर्वापर संदर्भ और मत्वर्थीय अच् प्रत्यय करनेसे तथा विरुद्ध सामानाधिकरण्य दोष न होजाय अतः चैत्यालय अर्थही उपयुक्त है। "गंगायां-घोषः" का अर्थ लक्षणावृत्तीसे गंगातीरही किया जाता है। "दुष्कर्मणां शान्तये " के समाभिव्याहारसे नवदेवताही लिये जा सक्ते हैं। सामानाधिकरण्यन्यायसे मत्वर्थीय प्रत्यय होता है। " भावनव्यंतरान् " का अर्थ–भावनस्थ व्यंतरस्थ हो जाता है।

भवदीय,

माणिकचंद मोरेना (ग्वालियर)

अकृत्रिमचैत्यालयोंकी वंदनाके बारेमें जो– " वंदे भावनव्यंतरान् द्युतिवरान् कल्पामरान् सर्वगान् ॥ " ऐसा कहा है उसका अर्थ मेरठके पं० बनवारीलालजी और सहारनपुरके पं० बनारसीदासजी और मोरेनाके पं० न्यायाचार्य माणिकचंद्रजी व जैनधर्मभूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी और भी इंदोरके श्री. उदासीन श्रावक पं० पन्नालाल गोधाजी और शासनदेवता भक्त पं० आप्पाशास्त्री उदगांव

षिवासी भी. ऐसा करते हैं कि– भवनवासी, व्यंतरवासी, ज्योतिष-वासी और कल्पवासी देवोंके विमानोंमें जे अकृत्रिम चैत्यालयें हैं उनको मै वंदना करता हूं. परंतु पं० बनसीधरजी अपने जुलाई १९२१ के जैनसिद्धांत पृ० ४१ में लिखते हैं कि– ऐसा होता नहीं, भवनवासी, व्यंतरवासी, ज्योतिषवासी और कल्पवासी देवताओंकोही वंदना करनी चाहिये.

उभयपक्षकारोंने अपने पक्षके समर्थनार्थ व्याकरण न्याय दिखाये हैं पंडितलोग उनका विचार करेंगेही. लेकिन साधारण बुद्धीमान इतना कहसकेंगे कि– इस वंदनामें अकृत्रिम चैत्यालयोंकी वंदना यदि नहीं है फक्त चतुर्णिकाय देवोंकी ही वंदना है; तो फिर उन चतुर्णिकाय देवोंमेंसे ज्योतिषवासीदेव हररोज अपने दृग्गोचर होते हैं. सूर्य दिन-भर दीखताहै और रात्रीमें चंद्र, मंगल, बुध, शनि, शुक्र दीखते हैं. तो उनकोभी वंदना करनी चाहिये और अर्घ्य देना चाहिये; जैसे अन्य-मति ब्राह्मणलोग सूर्यको नमस्कार करकें अर्घ्य देते हैं; वैसेही पंडि-तजीने करना चाहिये. लेकिन् पंडितजी वैसे करते हुये देखनेमें आते नहीं !

ऐसे कोईभी जैन सूर्यको वंदना करता नहीं, कदाचित् कोई सूर्यको वंदना करने लगा, या अर्घ्य देने लगा तो उसको मिथ्या दृष्टि कहते हैं. और शास्त्रभी ऐसाही कहता है, तो फिर हमारे पंडितजी सूर्यकी प्रत्यक्ष वंदना कैसी करेंगे ?

यदि सूर्यचंद्रके विमानोंको कदाचित् वंदना किई तो भी वह करनेवाला ऐसी सबब कहेंगा कि– मैने सूर्यको वंदना किई नहीं; किंतु फक्त सूर्यके विमानमेंके अकृत्रिम चैत्यालयको किई है. लेकिन् हमारे पंडितजीका कहना वैसा नहीं है. वे कहते हैं कि– अकृत्रिम चैत्याल-योंकी वंदना तो अलग है, लेकिन अब मै सूर्यचंद्रादिकोंको वंदना करता हूं।

सूर्यके विमानमेंके अकृत्रिमचैत्यालयकी आनंद राजा हररोज पूजा करताथा; उसको देखकर औरप्रजाजन भी सूर्यकी पूजा करने लगे ऐसी कथा पार्श्वनाथपुराणमें है. उस विषयमें श्रीसकलकीर्ति आचार्यने लिखा है.—

तद्विलोक्य जनाः सर्वे तत्प्रामाण्यात्स्वयं च तत् ॥
स्तोतुमारेभिरे भक्त्या पुण्याय रविमंडलं ॥ ८० ॥
अहो लोकाः प्रवर्तंते नृपाचारेण भूतले ॥
सद्विचारं न जानंति कार्याकार्य–शुभाशुभं ॥ ८१ ॥
तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन् बभूवार्कोपसेवनं ॥
मिथ्याकरं च मूढानां विवेकविकलात्मनां ॥ ८२ ॥

अर्थः —राजाका वह पूजन देखकर प्रजाजनभी राजाका अनुकरण करनेके हेतुसे सूर्यमंडलकी भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे. देखो,—राजाके देखादेखसि पृथ्वीपर लोकप्रवृत्ति चलती है. विचार करते नहीं, शुभाशुभ कार्यको जानते नहीं. तबसे इस दुनयामें सूर्यकी पूजा करनेकी प्रथा शुरू हुई ! मूर्ख और विवेकहीन लोकोंने यह मिथ्याप्रवृत्ति चलाई है.

यहांपर श्रीसकलकीर्ति आचार्य तो सूर्यके पूजन– बंदनाको मिथ्याप्रवृत्ति बताते हैं; और पंडित बनसीधरजी सूर्यचंद्रादिक चातुर्णिकाय देवोंकी बंदना करना और अष्टद्रव्योंसें पूजा करना धर्म बताते हैं. इससे रागीद्वेषियोंका पूजन आराधन बढाने तरफ उनका अभिप्राय प्रगट दीखता है. उस अभिप्रायसेही उनको महापुराणमेंसे ' इंद्राय स्वाहा ' इसका अर्थभी बीतराग इंद्रको छोडकर सरागी इंद्रको आहुति देने तरफ झुक गया है.

इस प्रकार इस " कृत्याकृत्रिम० " श्लोकमेंसे जो– " वन्देभावन० " इस चरणसे पं. न्या. वंशीधरजी– चतुर्णिकाय देवताओंको

अर्घ देना व नमस्कार करनाभी [इनके ' अर्घादि ' इस शब्दमें जो ' आदि ' है इससे स्पष्ट है] लिखते हैं; और संबंधी कोई चीज (ताल्लुक) ऐसा अर्थ यहां निकलता नहीं. व इससे यह भी सिद्ध करना चाहते हैं कि– चारनिकायके देवोंका आव्हान–पूजन जिनपूजनके साथ किया जाता है; ऐसे कहते हैं;

इसपर पांच छे विद्वानोंका विरुद्ध मत भी हमने यहां प्रसिद्ध किया है. सो विद्वज्जनको हमारी यह नम्र प्रार्थना है कि– ये हमारे शास्त्रीय परिषद्के मंत्री पं. न्या. वंशीधरजीकी यह आगम प्रमाणता " युक्तिशास्त्राविरोधिवाक् " इस न्यायसे प्रमाण है या अप्रमाण ? इसका खुलासा करनेकी आवश्य कृपा करें.

सोलापूर,
ता. ९ । १ । २१

आपका विनीत.
शंकर पंढरीनाथ रणदिवे.

भूल संशोधनः – इस लेखमेंसे पत्र १४, लाइन् ५ में जो– ' कल्पामरान् ' ऐसा लिखगया है उस जगह— ' काल्पामरान् ' ऐसा बाचना.

आगम–प्रमाणता संबंधमें शास्त्रार्थ.

वेश्यासेवनकरनेवाला ब्रह्मचर्याणुव्रती होसक्ता है क्या?

यशस्तिलकचंपू (उत्तर खण्ड) काव्यमेंसे सप्तम आश्वासमें श्री० सोमदेव पंडितने उपासकाध्ययन प्रकरणमें जो गृहस्थके ब्रह्मचर्याणुव्रतका कथन किया है उसमेंका प्रथम श्लोक यह है–

वधू-वित्तस्त्रियौ मुक्त्वा सर्वत्रान्यत्र तज्जने ॥
माता स्वसा तनूजेति मतिब्रह्म गृहाश्रमे ॥१॥

अर्थात्ः—अपनी स्त्री और वित्तस्त्री माने वेश्या या रखेलीको छोडकर शेष समस्त स्त्रियोंमें माता, बहिन और पुत्रीके समान बुद्धि रखना गृहस्थाश्रममें ब्रह्मचर्य माना जाताहै।

इस श्लोकमें पं० सोमदेवने जो ब्रह्मचर्याणुतके बाबद कहा **है** कि– अपने स्वस्त्रीसमान ही वेश्या वा रखेलीकोभी सेवनकरें व शेष परस्त्रियोंका त्याग करना चाहिये; माने ब्रह्मचर्याणुव्रती यदि रंडी रखलें अथवा वेश्या सेवन करें तो भी उसका वह ब्रह्मचर्याणुव्रत नष्ट नहीं होता.

ऐसे ही पं० आशाधरजीने भी अपने सागारधर्मामृत अध्याय चौथेमें ब्रह्मचर्याणुव्रतके अतिचार कथनमें– वेश्या वा रखेलीस्त्रीका सेवनही क्या लेकिन इससे भी कुछ अधिक बढकर व्यभिचारपोषक प्रसंग लिखा है; सो इस मुजब है– " **अन्ये त्वपरिगृहीतकुलांगनाम-प्यन्यदारवर्जिनोऽतिचारमाहुः।** " माने परस्त्रीत्यागी गृहस्थने अपरिगृहीत कुलांगना स्त्रीका सेवन करना यहां अतिचार है ऐसा कहा **है.**

ग्रंथकर्ताने अपने टीकामेंसे- " **अपरिगृहीता स्वैरिणी, प्रोषित भर्तृकाकुलांगना वा अनाथा।** " इस वाक्यमें प्रोषितभर्तृकाकुलांगना माने जिसका पति परदेशमें परागंधा होगया हो ऐसी कुलांगना;

और अनाथा शब्दसे जो विधवा कुलांगना स्त्रीका ग्रहण होगा. इनैं दोनों प्रकारके कुलांगनाको अपरिगृहीत सदरेमें शामिल किया है. सो इनके सेवन करनेसे भी ब्रह्माणुव्रती गृहस्थका वह व्रत नष्ट न होकर अतिचार मात्र लगता है ऐसा कहा है.

और पं. वंशीधरजी अपने दिसेंबर १९२१ के जैनसिद्धान्तमेंसे पत्र ४६ में कहते हैं कि– " वेश्यागामीका वह व्रत अतीचार सहित है और परस्त्रीगामीका वह कर्म अव्रतरूप है. " इस प्रकार आप कहचुके हैं; तो फिर आपके अभिप्रायसे भी यहां इस व्रतका नष्ट होना ठहरता है; कारण वेश्या और कुलांगना इनमें तफावत आपको मान्य है.

इसपर आप कहेंगे कि– यह किसी दूसरे ग्रंथकारका कहना है आशाधरजीका नहीं. इसपर हमारा कहना है कि– यह किसीका मत पं० आशाधरजीने विधेय मानकरही अपने स्वोपज्ञ टीकामें उद्धृत क्यों किया ? वास्तवमें इसका निषेध करना योग्य था सो किया नहीं! व ऐसे कथन करनेवालेका नाम भी नहीं दर्शाया !

देखिये ब्रह्मचर्याणुव्रती इत्वरिका तो क्या लेकिन कुलांगनाभी सेवन करें तो उसका वह व्रत नष्ट होता नहीं. यह बडी आश्चर्यकी बात है कि– ऐसे ऐसे कथनकोभी व्यभिचारपोषक न समझकर हमारा कुछ पण्डितगण इसही कथनको बडे बडे ग्रंथका सहारा लेकर पुष्टी करने लग रहे हैं ! इसपर विद्वानलोक आवश्य ध्यान देवें.

इन दोनों ग्रंथकारका [पं० आशाधर और सोमदेव] कहना दूसरे कोईभी श्रावकाचार कथनकरनेवाले आचार्य– श्री० कुंदकुंदाचार्य, उमास्वामी, पूज्यपाद, अकलंक, समंतभद्र, विद्यानंदि, जिनसेन, पद्मनंदि, अमितगति, स्वामिकार्तिकेय, श्रुतसागर, शुभचंद्र, अमृतचंद्र, चामुण्ड-राय आदि आचार्योंके अभिप्रायसे बिलकुल विरूद्ध है. इसवास्तेही मैंने एक लेखमें जाहीर किया था कि– श्री० सोमदेवसूरीका यशस्तिलकचंपू उत्तरखंड, और पं० आशाधरकृत सागारधर्मामृत ये दो पुस्तकें शिथि-

लाचार-व्यभिचारपोषक होनेसे इस कथनका असर विद्यार्थियोंके कोमल अंतःकरणपर न होवें; इसलिये इन ग्रंथोंको अपने पाठशाला-के पठनक्रमसे हटा देवें ऐसा लिखाथा.

इसपर पं० न्यायतीर्थ बंशीधरजी अपने दिसेंबर १९२१ के ' जैनसिद्धान्त ' मासिक पत्रमें (पत्र नं. ४६ में) विरोध करके कहते हैं कि-

" श्री० सोमदेवसूरीने अपने यशस्तिलकचंपू काव्यमें प्रसंग-वशात् गृहस्थके ब्रह्मचर्याणुव्रतका स्वरूप बताया है; उस जगह ऐसा लिखा है कि- वेश्या तथा अपनी स्त्रीके सिवा अन्य किसीभी स्त्रीको माता, बहिन या पुत्रीके समान माने. " ऐसा लिखकर फिर आगे चलकर कहते हैं कि-

" इत्वरिकागमनको सोमदेवने तथा आशाधरने उसीप्रकार व्रत-का दोष बताया है जिस प्रकार कि- श्रीतत्वार्थसूत्रकर्ता बताते हैं "

और जून १९२१ के जैनसिद्धान्तमेंसे " शासनभेद और आगमकी प्रमाणता " इस शीर्षकके अपने लेखमेंभी इसही विषयपर पहले ऐसे लिखकर चुके हैं कि-" सोमदेवका भावार्थ यह है कि- परस्त्री व वेश्या ऐसे दो व्यसनोंमेंसे परस्त्री अधिक पापका कारण है. इसलिये जो दोनों नहीं छोडसकता उसेभी परस्त्रीतो छोडनीही चाहिये।

सोमदेवनेही नहीं बल्कि इनके श्रद्धेय समंतभद्रनेभी जो कहा है वह देखें तो समझ आजाय. उन्होंने-परस्त्रीत्याग व स्वदारसंतोष दोनों ही अणुव्रतके भेद बताये हैं. "

इसही प्रकार पं० लालारामजीने अपने वीरसं. २४४१ के सार्थ सागारधर्मामृत पूर्वभाग पत्र २८७ में और पं० कल्लप्पा भरमप्पा निट-वेनेभी दिसेंबर १९२१ व एप्रिल १९२२ अंक ९ वर्ष ३२ के ' जैन-बोधक ' नामक शोलापुरके मासिकपत्रमें अपना अभिप्राय प्रगट किया है.

इसतरह इन यशस्तिलक और सागारधर्मामृतमें लिखा हुवा इस ब्रह्मचर्याणुव्रतमें जो शिथिलताप्रेरक माने व्यभिचारपोषक कथन है; उसका संबंध कोईभी प्रकारसे जो बने वैसा श्रीमत् उमास्वामि,

स्वामिसमंतभद्र, स्वामिपूज्यपाद आदि आचार्योंके ग्रंथोंको जुडा देनेका प्रयत्न हमारे इन पण्डितोंने किया है, जिससे कि—बडे बडे ग्रंथोंसे इस कथनकी पुष्टी ठरहानेसे उसका समर्थन करना ठीक होजाय !

लेकिन ऐसा बादरायण संबंध जुडाना कैसा निराधार ठहरता है यह हमने मंगाये हुये विद्वानोंके अभिप्रायोंमें स्पष्ट सिद्ध होता है. वे अभिप्राय हमारे प्रश्नपत्रिकासह हम यहां प्रकाशित करते हैं—

प्रश्नपत्रिका.

श्रीमान मान्यवर महाशय पं० + + + जयजिनेंद्र.

निचे लिखी शंकाका समाधान करनेकी कृपा करें.

न तु परदारान गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत ॥
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसन्तोषनामापि ॥

यह श्रीसमंतभद्राचार्यके रत्नकरण्ड उपासकाध्ययनका ब्रह्मचर्याणुव्रतका श्लोक है. इस श्लोकसे वेश्यासेवन करनेवालाभी ब्रह्मचर्याणुव्रती होता है; ऐसा अर्थ निकलता है क्या ?

इसमें- " सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसंतोषनामापि ॥ " ऐसे दो पद पडे हैं. लेकिन 'नामापि' इस शब्दमे एकही अभिप्रायके दो नाम हैं ऐसी मेरी समजमें आता है यदि दो नाम देनेसे दो भेद होते हैं ऐसा कहेंगे तो परिग्रह प्रमाणव्रतमें इसी मुजब दो नाम दिये हैं- " परिमितपरिग्रहस्यादिच्छापरिमाणनामापि ॥ " इसके भी दो भेद करने पडेंगे. और अतिचार भी एकेकके पांच पांच अलग देने पडेंगे सो दिये नहीं है.

टीकाकार प्रभाचन्द्रजीने भी दो भेद कहे नहीं है. सो आपका अभिप्राय जाननेकी अभिलाषा है.

सोलापूर,
ता. ११।१२।२१.

भवदीय,
शंकर पंढरीनाथ रणदिवे.

विद्वानोंके अभिप्राय.

श्रीमान् मान्यवर महाशय पं० पन्नालालजी गोधा अपने पत्रमें लिखते हैं—

श्रीयुत मान्यवर पं० शंकर पंढरीनाथ रणदिवे सोलापुर धर्मस्नेह उभयत्रशम.

आपका पत्र ११।१२।२१ का लिखा इंदोर होकर आज यहां मिला. उत्तर नीचेसे ज्ञात हो—

आपने श्रीरत्नकरण्ड श्रा० के ब्रह्मचर्याणुव्रतके श्लोकके अर्थमें पूछा कि— इससे वेश्यासेवन करनेवालाभी ब्रह्मचर्याणुव्रती होसकता है क्या ? सो भाईसाहेब यह नवीन पण्डितोंकी कुविद्याकी खूबी है!

जबकी पाक्षिकश्रावककोही सात व्यसनोंमें वेश्यासेवन छुडाया है. और प्रथम प्रतिमामें वेश्या व्यसनके अतीचारोंमें **वेश्यासे संबंधतक** छुडा दिया है तब वेश्यासेवनवालेको अणुव्रती बताना अनर्थ **है.**

उस श्लोकका अर्थ स्पष्ट है कि— जो परस्त्रीप्रति नहीं गमन करता और दूसरोंकोभी गमन नहीं करावा; पापके भयसे वह परदारनिवृत्तिरूप स्वदारसंतोषनाम अणुव्रती है अथवा परदारनिवृत्तिव्रत है और इस व्रतका स्वदारसंतोष नामभी है. यहां जो ' **अपि** ' शब्द है उसका प्रायः (भी) ही अर्थ होता है; इससे उस एकही व्रतके दो नाम स्वामीने बताये हैं.

सं. १९७८ पौष वदी ७ मुकाम शेरगढ (कोटा)

———
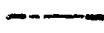
श्रीमान् मान्यवर महाशय पं० तर्करत्न न्यायाचार्यका उत्तर—

मोरेना-गवालियर. ता. २३-१२-२१

श्रीयुक्त धर्मप्रेमी पं० रणदिवे शंकर पंढरीनाथजी योग्य सस्नेह जुहारु. आपका पत्र आया.

मेरी बुद्धीमें ऐसा आया है कि - वेश्यासेवन करनेवाला ब्रह्मचर्याणुव्रती नहीं होसक्ता है. । जो वेश्यासेवन सप्तव्यसनोंमें परिगृहीत है. और सप्तव्यसन अनन्तानुबंधीकषायके उदय होनेपर होते हैं । अत्यंत गृद्धि होनेपर वेश्यासेवन होता है । व्रतीके अनन्तानुबन्धीका उदय सर्वथा नहीं है । अतः वेश्यासेवन करनेवाला ब्रह्माणुव्रती होसक्ता है क्या ? । इस आपके प्रश्नका उत्तर है-" **नहीं** "

और न उक्त श्लोककाही वह अर्थ है. दोनों पदोंका अर्थ एकही है । यह केवल दीक्षितपात्रके अपेक्षासे है । परस्त्रीसेवन करता हुआ पुनः दीक्षित होय उसको परदारनिवृत्ति व्रती कहते हैं ।

कुलक्रमसे स्वदारसंतोष रखता हुआ पुनः प्रतिज्ञात होनेपर पुनः व्रतदीक्षा लेता है वही स्वदारसंतोषव्रती है ।

इसीतरह- परिमितपरिग्रह इच्छापरिमाणमेंभी । द्रव्य, भाव परिमितीसे भेद है वैसे दोनों एकही है । न इनके भिन्न २ अतिचार देनेकी आवश्यकता है. ।

भवदीय,— **माणिकचंद**

श्री० मान्यवर प्यारेलाल श्रीलालजी अलीगढसे लिखते हैं—

" माननीय-सस्नेह जुहारु ।

वेश्यागामी-अणुव्रती नहीं हो सकता ।

परदारनिवृत्ति, स्वदारसंतोष - ये एकही है दो नहीं है ।

वेश्यागमनका अभाव-स्वदारसंतोष शब्दसे पुष्ट होता है । "

अलीगढ. ता. १२।१।२२ प्यारेलाल श्रीलाल.

श्री० मान्यवर महाशय पं० जयदेवजी कलकत्तासे लिखते हैं—
ता. २।२।२२ कलकत्ता.

श्रीमान् मान्यवर पं० शंकर पंढरीनाथ रणदिवे.

योग्य कलकत्तेसे जयदेवका सादर जुहारु बांचियोगाजी उभय-त्रक्षम् अपरंच पत्र आपका आया ऊत्तरमें निवेदन है कि— श्रीस्वामी समंतभद्राचार्यके— " न तु परदारान् " श्लोकसे वेश्यागामीको चतुर्था-णुव्रत होसक्ता है ऐसा सिद्ध नहीं होता.

प्रथम प्रतिमामें सप्तव्यसनमेंही वेश्याका त्याग होजाता है; फिर द्वितीय प्रतिमामें यह कैसे होसक्ता है? तथा श्रीसकलकीर्तिके प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें—" वेश्यादिपरनारीषु संगं कुर्वन्ति येऽधमाः ॥ मातंगा इव तेऽस्पर्शा भवन्ति भुवनत्रये॥ इत्यादि चतुर्थाणुव्रतका स्वरूप लिखा है.

सुभाषित रत्नसंदोहमेंभी—

" तां वेश्यां सेवमानस्य कथं चतुर्थमणुव्रतम् ? "

ऐसा पाठ है. इत्यादि शास्त्रोंसे यही सिद्ध होता है.

क्या दूसरी प्रतिमावालाश्रावक वेश्यासेवन करसक्ता है; ऐसा अभिप्राय दो व्रत माननेवालोंका है?

भवदीय,— जयदेव जैन.

श्री० मान्यवर महाशय पं० दरयावसिंह सोधियाजीने अपने ' श्रावक--धर्मसंग्रह ' पुस्तकके सफा १२७ में लिखा है कि—

" इस दोषसे बचनेके लिये अन्यस्त्री (वेश्या, दासी, परस्त्री, कुमारिकादि) सेवनका सर्वथा त्याग करना चाहिये, तभी परस्त्रीत्याग अथवा स्वस्त्रीसन्तोष व्रत पलसक्ता है।

कोई कोई कुपण्डित कहते हैं कि—परस्त्रीका त्यागी वेश्यासेवन करे तो अतिचार दोष लगता है क्योंकि वेश्या परस्त्री नहीं है उसने किसीके साथ विवाह नहीं किया. सो ऐसा कहना महा अनर्थ एवं पापका कारण है। वेश्यासे बोलने, आने, जाने, दैन—लैन रखनेसेंही

शीलव्रतमें अतीचार दोष लगता है, उसका सेवन–सप्तव्यसनका मूल, अनेक रोगों व आपदाओंका उत्पादक है।

वेश्याको " **नगरनारि** " कहा है। वह एकही परपुरुषकी स्त्री नहीं है किन्तु **नगर–परनगर** सभी स्थानोंके पुरुषोंके **पैसेकी स्त्री** है, इसी कारण वेश्यासेवन व्यसनको पहिले छोडनेका आचार्योंने उपदेश दिया है पीछे परस्त्रीत्यागका। अत एव जिसने वेश्या व्यसनका त्याग किया हो, वही परस्त्रीत्याग एवं स्वदारसंतोषव्रत धारण करनेका अधिकारी होसक्ता है, क्योंकि–लघुपापत्याग, महापापसेवन करना सर्वथा **क्रमविरुद्ध** और **अनुचित** है, पुनः ऐसी विधिको निरूपण करनाभी **महापाप** है. ॥ "

सोमदेवसूरीका वाक्य–' वधू-वित्तस्त्रियौमुक्त्वा० ' माने ब्रह्मचर्याणुव्रतीभी रंडी रख सकता है ऐसा वाक्य और उसका समर्थन करनेवाला पं. आशाधरका वाक्य जिसका अर्थ पं. कल्लापाने न देनेका सबब अज्ञ लोक इसका विपरीत उपयोग करेंगे, इस भयसे नहीं दिया लिखा है. उसही हेतुके अनुसार मैंनेभी–ऐसे पुस्तक कोमल अंतःकरणके बालकोंके बाचनेमें आनेसे उनके विचार रंडीबाजी तरफ झुक जायंगे ऐसा लिखाथा. मेरा हेतु और पं० कल्लापाका हेतु एकही है. देखिये वे अपने पत्रमें इस मुजब कहते हैं कि—

मु० कुम्भोज.– " बाहुबलिडोंगर, का. व. १४, १८४३

आपली सर्व पत्रें बिनचूक नेमकी पोहोंचलीं आहेत; आळसामुळें उत्तरें दिलीं नाहींत माफी असावी. शास्त्रार्थ विचारण्यांत आला; उत्तर देणें भाग पडलें.

सागारधर्मामृतातील अ० ४, श्लो. ५२, पृ. ३०६

" यस्तु " इत्यादि टीकेचें भाषांतर समग्र लिहिण्याचें मुद्दाम टाळलें होतें. कारण—अज्ञलोक विपरीत ग्रहण करितील.

श्री० उदासीन श्रावक पं. पन्नालालजी गोधा अपने ज्ये. कृ. ५ सं. १९७९ के हमारे पास भेजा हुवा शासनदेवतासंबंधके लेखमें इस बाबद लिखते हैं कि–

" तथा पं० वासुदेव नेमिनाथजी बारामतीवालेने पं० आशाधरजी बाबत आपपर आक्षेप किया है. (जिस पं० आशाधरजीको शिथिलाचार पोषक यह अवर्णवाद देकर उनका ग्रंथ–सागारधर्मामृत–पठनक्रमसे हटा देनेतक शंकरजी जैनसमाजको इतल्लाकर चुके हैं; अफसोस है–खं. जैन हि. वैशाख सुदी ५ वीर सं. ५ वीर सं. २४४८) उसका उत्तर इतनाही है कि–अन्यमति हिंदुमुसलमान जो यज्ञादि तथा मसजिद आदिमें जीवघात करके धर्म मानते हैं उन्हींके शास्त्र कुरानसे दिखायाजाय कि–हिंसा निषेध है तो क्या उनके शास्त्र जैनियोंको सर्व ही प्रमाण होसक्ता है ?

पं० आशाधरने–पाक्षिकको सप्तव्यसनमें वेश्या व परस्त्रीका त्याग कराया, और प्रथम प्रतिमामें सात व्यसनके अतिचारोंमें वेश्याका आवागमन भी छुडाया, और दूसरी प्रतिमामें वेश्यासेवनको अतीचारमें कहा, और वह अतीचार पहली प्रतिमा व पाक्षिकमें लगाना सिद्ध किया सो स्थापन और निषेध एकस्थान दोनों विरोधरूप हुये "

श्री. पं. महाशय बनारसीदासजी आषाढ वदी ६ वीरसं. २४४८ के जैनमित्रमेंसे अपने–" क्या रागी देवोंकी पूजाभी मोक्षमार्ग होसक्ती है ? " इस शीर्षकके लेखमें इस विषयपर उन्होंने जो अपना मत प्रगट किया है. वह इस मुजब —

" अपने लेखके पूर्वमें सेठीजी [रा. रावजी सखाराम दोशीनें मार्च १९२२ के जैनसिद्धांतमें इंद्रायस्वाहाका अर्थ नामकी एक पत्रिका प्रसिद्ध की है उसमें लिखते हैं] लिखते हैं कि—शंकरजीने श्री० सोमदेव और आशाधरजीको अब प्रमाण माना है और पहिले व्यभि-

चार पोषक है और अप्रमाण हैं ऐसा बताकर उनकी कृतिको परीक्षालयसे पृथक् करा चुके हैं। इसका उत्तर यह कि—किसीकी भी कृतिमें जो वचन आर्ष आगमके विरुद्ध होंगे वे तो अवश्यमेव विरुद्ध और अप्रमाण माने जायंगे; और जो अनुकूल होंगे वे प्रमाण माने जायंगे"

श्री. पं. महाशय बनवारीलालजीने भादों वदी २ वीरसं. २४४८ के जैनमित्रमें " शासनदेवताचर्चा " यह लेख प्रसिद्ध किया है उसमें इस विषयपर उन्होंने ऐसा लिखा है—

" स्ववचन बाधित होनेसे आगे पंडितजीने पं. वंशीधरजीने रा. रावजी सखाराम दोशीके ओटमें होकर जो— " इंद्रायस्वाहाका अर्थ " नामक पत्रिका जैनसिद्धांतमें प्रसिद्ध की है) रा० शंकरजीके श्रद्धानमें दोष व्यक्त करनेके लिये यह पङ्क्ति लिखी है— [श्रीसोमदेव सूरि और पं० आशाधरजी ये दोनों ग्रंथकार व्यभिचार कार्यके पोषक हैं इसालिये इनके ग्रंथ विद्यार्थियोंके पठनक्रममें न रखने चाहिये ऐसा एक वक्त लिखते हैं] रा० शंकरजीका किसी समयका यह लेख जो पंडितजीने याद करके लिखा है इसके लिखनेसे पंडितजीके अभिप्रायकी सिद्धि न होकर रा० शंकरजीके श्रद्धानकी प्रशंसा हुई. परीक्षा करके प्रमाण मानते हैं. क्योंकि—व्यभिचारपोषक ग्रन्थ कैसे ही विद्वानका क्यों न हो कोईभी जैनी प्रमाण नहीं मान सकता; और निश्चय है कि पंडितजीभी प्रमाण नहीं मानते होगें.

श्री० जैनधर्मभूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी जैनमित्रके संपादक लिखते हैं कि—

" हमारा अभिप्राय यह है कि—**एकही भावके ये दो नाम हैं। वेश्यासेवी अणुव्रती नहीं होसक्ता** "

ता. ५।१२।२२ **शीतल.**

इत्वरिका-गमन.

पं० न्या० वंशीधरजी अपने दिसेंबर १९२१ के ' जैनसिद्धांत' पत्र ४६ में लिखते हैं कि- " इत्वरिका गमनको सोमदेवने तथा आशाधरने उसी प्रकार व्रतका दोप बताया है जिस प्रकार कि-श्रीतत्वार्थसूत्रकर्ता बताते हैं. " और इनही पंडितजीने इसवी सन १९१९ में जो अमृतचंद्रसूरि विरचित ' तत्वार्थसार ' सार्थ लिखा है उसमेंके ब्रह्मचर्याणुव्रतके वर्णन पत्र २४२ में लिखा है कि- " मूल ग्रंथमें जो ' गमन ' शब्द है उसका अर्थ हमने संबंध रखना किया है। गमनका अर्थ कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीकामें तथा श्रुतसागरीतत्वार्थटीकामें ऐसाही लिखा है परंतु पण्डित आशाधरके सागारधर्मामृतमें गमनका अर्थ संभोग करना लिखा है। " इस प्रकार पंडितजीने तीन वर्ष पहले लिखा है. इसमें यह प्रश्न खडा होता है कि- श्रुतसागर टीकाकारने श्रुतसागरीमें जो ' गमन ' शब्दका अर्थ दिया है वह क्या तत्वार्थसूत्रकर्ता श्रीमदुमास्वामीके अभिप्रायानुसार नहीं है ? या तत्वार्थसूत्रकर्ताओंनें ' इत्वरिका गमन ' इसमेंसे गमन शब्दका अर्थ पं० आशाधरके माफक संभोग ऐसाही किया है यह किस आधारसे आप कहते हैं ?

गमन शब्दका अर्थ टीकाकार श्रुतसागर और शुभचंद्रने श्रुतसागरी तत्वार्थटीकामें और सटीक स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें इस मुजब लिखा है— " **गमने इतिकोऽर्थः— जघनस्तनवदनादिनिरीक्षणं संभाषणं पाणिभ्रूचक्षुरंतादिसंज्ञाविधानमित्येवमादिकं निखिलं रागित्वेनदुश्चेष्टितं गमनमित्युच्यते।** "

भावार्थ— इत्वरिकागमन माने व्यभिचारिणी वेश्या आदि स्त्रियोंके साथ कामवासनेसे वार्तालाप करना, उनका अंग उपांग निरीक्षण करना व हस्त चक्षु स्वरूप आदिसे इषारा देना आदि रागभावसे

दुष्ट चेष्टा करना उसको गमन कहते हैं.

ऐसेही श्रीमन् अमितगतिआचार्यने आपके सुभाषितरत्नसंदोहमेंसे चतुर्थाणुव्रतके कथनमें वेश्यासेवनका निषेध किया है वह इस प्रकार—

वर्चःसदनवत्तस्या जल्पने जघने तथा ॥
निक्षपंति मलं निंद्यं निंदनीया जनाः सदा ॥ ७८५ ॥
मद्यमांसादि सक्तस्य या विधाय विडंबनं ॥
नीचस्यापि मुखं न्यस्ते दीना द्रव्यस्य लोभतः ॥ ७८६॥
तां वेश्यां सेवमानस्य मन्मथाकुलचेतसः ॥
तन्मुखं चुंबतः पुंसः कथं तस्याप्यणुव्रतम् ॥ ७८७ ॥
ततोऽसौ पण्यरमणी चतुर्थव्रतपालिना ॥
यावज्जीवं परित्याज्या जातनिर्घृणमानसा ॥ ७८८ ॥

भावार्थ —जिस प्रकार शौचकूपमें सदा कोईभी मलक्षेपण करते हैं उसी प्रकार वेश्याके मुख व योनीमें नीच लोग अपनी लाला और वीर्यक्षेपण करते हैं. और जो मद्यमांसादि भक्षण करनेमें आसक्त होकर कपटसे केवल द्रव्यलोभार्थही नीच लोगोंको मुखचुंबन देकर दीनतासे याचना करनेवाली ऐसे वेश्याका जो कामी सेवन करता है व उसके अपवित्र मुखको चुंबता है. उस पुरुषका वह ब्रह्मचर्याणुव्रत काहेका ? अतः ब्रह्मचर्याणुव्रत पालनेवाले गृहस्थोंने उस वेश्याका त्याग करना ही योग्य है.

इस प्रकार अमितगति आचार्यकाभी अभिप्राय— ब्रह्माणुव्रती वेश्यासेवन करेतो उसका वह व्रत अव्रतरूप होगा. ऐसाही है.

इसही प्रकार शुभचंद्रकृत सटीक स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रंथमें ब्रह्मचर्याणुव्रत बाबत इस मुजब लिखा है—

" जो मण्णादि परमहिलं जणणी बहणी सुआई सारित्थं ॥
मणवयणे कायेणवि बंभवई सो हवे थूलो ॥ ३३८ ॥

टीका—स भव्यात्मा स्थूलब्रह्मव्रतीभवेत् स्थूलब्रह्मव्रती चतुर्थ-ब्रह्मचर्याणुव्रतधारी स्यात् स कः यः मणवयणे कायेणावि मनसाचित्तेन, वचनेन वचसा, कायेन शरीरेणापि ' अपिशब्दश्चकारार्थे ' । अन्यां तां जानाति कीदृशां परमाहिलां परेषां स्त्रियं अन्येषां युवतिं, स्वकलत्रं विहाय अन्यां तां जानाति । कीदृशीं परमाहिलां जननी, भगिनी, सुतादि सदृशीं । जननी माता, भगिनी स्वसा, पुत्रीसुता । अपि शब्दात्— मातामही, पितामही, श्वश्रू इत्यादि सदृशा समाना मन्यते ।।" इत्यादि.

भावार्थ - जो परस्त्रीको माता, बहन व पुत्री ऐसे मनवचन कायसे मानता है; वह स्थूलब्रह्मचर्याणुव्रतका धारी समझना यह गाथा का अर्थ हुवा.

अब टीकामें इस प्रकार है- " स्वकलत्रं विहाय अन्यां तां जानाति कीदृशीं-परमाहिलां जननी, भगिनी, सुता सदृशीं । " इस वाक्यमेंसे जो-" स्वकलत्रं विहाय " ऐसा लिखा है इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि- स्वस्त्रीविना बाकीके सब स्त्रियां माने वित्तस्त्रीहो वेश्याहो या कोईभीहो उसको वह ब्रह्माणुव्रती अपने माता, बहन समान मानेगा.

यहांभी टीकाकार शुभचंद्रजीने सोमदेवसूरीका- " वधूवित्त-स्त्रियौ मुक्त्वा " यह वचन नहीं स्वीकारा; यदि वह स्वीकारते तो इस टीकाकार अपने टीकामें- " स्वकलत्रवित्तस्त्रियौ विहाय " ऐसे लिख देते थे किंतु उन्होंने ऐसा लिखा नहीं. उन्होंने परकलत्र माने स्वकलत्र शिवाय इतर सभी स्त्रियां ऐसा अर्थ लिया है.—

और महापुराण पर्व ३९ श्लोक ३१ में भगवाज्जिनसेनाचार्यने मुनीकी और गृहस्थकी कामशुद्धि इस मुजब कही है.

कामशुद्धिर्मता तेषां विकामा ये जितेंद्रियाः ।।
संतुष्टाश्च स्वदारेषु शेषाः सर्वे विडम्बकाः ।। ३१ ।।

इसका अर्थ पं० लालारामजी इस प्रकार लिखते हैं- " जो

कामरहित जितेंद्रिय मुनि हैं उन्हींके कामशुद्धि समझनी चाहिये। अ-थवा जो गृहस्थ स्वदार संतोषी है उनकेभी कामशुद्धि मानी गई है; इनके सिवाय जो लोग हैं उन्हें अन्य लोगोंकों फंसानेवाले समझना चाहिये."

इस श्लोकके उत्तरार्धमें आचार्योंने गृहस्थके ब्रह्मचर्याणुव्रतका जो लक्षण कहा है इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि— ब्रह्मचर्याणुव्रतके स्व-दारसंतोष व परस्त्रीत्याग ऐसे दो भेद नहीं है एकही अर्थका दर्शक दूसरा नाम है. स्वस्त्रीसेही संतुष्ट रहनेवाला ब्रह्मचर्याणुव्रती है; बाकीके सब (सागारध. व यशस्ति. का कथन) जो- परिगृहीता अपरिगृहीता इत्वरिका सेवन करनेवाले या अपरिगृहीत प्रोषितभर्तृकाकुलांगना आ-दिका सेवन करकेभी वह व्रत नष्ट होता नहीं ऐसे माननेवालेको आ-चार्य- ' विडंबक ' माने फंसानेवाला, दांभिक, धूर्त ऐसा कहते हैं.

इस श्लोकमें आचार्यने-स्वदारसंतोषीके व्यतिरिक्त ब्रह्माणुव्रत धारनकरनेवालेको ' विडंबक ' ऐसा विशेषण दिया है. इसपर आवश्य ध्यान देना चाहिये.

इस प्रकार " वधू-वित्तस्त्रियौ मुक्त्वा " इस श्लोकमें सोमदे-वनें- वेश्यासेवन करनेवाला ब्रह्माणुव्रती होसक्ता है. और आशाधरने अपने सागारधर्मामृतमें- वेश्यासेवन करनेवाला या अपरिगृहीता कुलां-गना (प्रोषितभर्तृका कुलांगना; अनाथा- विधवा कुलांगना) सेवन करनेसे भी इस ब्रह्मचर्याणुव्रतीके उस व्रतको अतिचार लगताहै; ऐसा कहाहै. व इत्वरिकागमन इसमेंसे ' गमन ' शब्दका अर्थ जो 'संभोग' ऐसा किया है. इस प्रकार इन सब शिथिलाचारपोषक-व्यभिचार-पोषक कथनका संबंध श्री० उमास्वामि, स्वामिसंमतभद्र, पूज्यपादस्वामि इनके बचनको जोड़ देनेका प्रयत्न पं० न्या० वंशीधरजी, पं० लाला-रामजी, पं० कल्लप्पा निटवे इन्होंने जो किया है उसपर दूसरे विद्वा-नोंके अभिप्राय मंगवाकर यहां प्रकाशित किये हैं.

सो इन श्री० वंशीधरादि पण्डितोंने जो आगम-प्रमाणता हमको बताई है वह प्रमाण है या अप्रमाण? कृपाकरके विद्वज्जन खुलासा करें.

सोलापूर. ता. ११।१।२३ } आपका नम्र, शंकर पंढरीनाथ रणदिवे.

भूलसंशोधन-इसही लेखके पत्र २५ में जो संस्कृत श्लोकमें—" भुत्क्वा " ऐसा लिखा गया है उस जगह —" भुक्त्वा " ऐसा बाचना.

याद रखने योग्य श्लोक
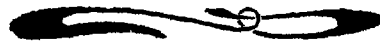
वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः ॥
देवता यदुपासीत देवता–मूढमुच्यते ॥
भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिंगिनाम् ॥
प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ॥

श्रीसमंतभद्राचार्य.

श्रावकेणापि पितरौ गुरू राजाप्यसंयताः ॥
कुलिंगिनः कुदेवाश्च न वंद्याः सोऽपिसंयतैः ॥

टीकाः—कुलिंगिनः तापसादयः पार्श्वस्थादयश्च।, कुदेवाः रुद्रादय शासनदेवतादयश्च:

अनगारधर्मामृत—आशाधरेण.

आपदाकुलितोऽपि दर्शनिकः तन्निवृत्त्यर्थं ।
शासनदेवतादीन् कदाचिदपि न भजते पाक्षिकस्तुभजत्यपि:

सागारधर्मामृत—आशाधर.

पंडितैर्भ्रष्टचारित्रैर्बठरैश्चतपोधनैः ॥
शासनं जिनचंद्रस्य निर्मलं मालिनीकृतं ॥

अनगारधर्मामृत.

देवार्चकश्च निर्माल्य–भोक्ता जीवविनाशकः ॥

\+ × × ×

इत्यादि दुष्टसंसर्गं संत्यजेत् पंक्तिभोजने ॥

सोमसेन—त्रिवर्णाचार.

निर्माल्यविषयक यादरखने योग्य श्लोक-

पुत्तकलत्तविहीणो दारिद्दो पंगुमूकबहिरंधो ॥
चाण्डालाइकुजादो पूजादाणाई दव्वहरो ॥ ३२ ॥

(श्रीकुंदकुंदाचार्यकृत-रयणसार)

" देवतानिवेद्यानिवेद्यग्रहणम् ॥ "

(श्रीअकलंकाचार्यकृत-राजवार्तिक)

प्रमादाद्देवतादत्तनैवेद्यग्रहणं तथा ॥
+ + + इत्येवमंतरायस्य भवन्त्यास्रवहेतवः ॥

(श्रीअमृतचंद्रसूरिकृत-तत्वार्थसार)

देवशास्त्रगुरूणां भो निर्माल्यं स्वीकरोति यः ॥
वंशच्छेदं परिप्राप्य स पश्चाद्दुर्गतिं व्रजेत् ॥ ६३ ॥

[श्रीसकलकीर्तिकृत-सुभाषितावलि]

इत्यादिवर्णनापेत नरकेऽर्चानिषेधकाः ॥
लभंते च महादुःखं पूजाद्रव्यापहारिणः ॥ ८२ ॥
निर्माल्यभक्षका ये च मानवा मदमोहिताः ॥
तेऽपि तत्र महादुःखभाजिनः स्युर्न संशयः ॥ ८३ ॥

(श्रीसकलभूषणकृत-उपदेशरत्नमाला)

देवार्चकश्च निर्माल्यभोक्ता जीवविनाशकः ॥
+ + + इत्यादि दुष्टसंसर्गं संत्यजेत्पंक्तिभोजने ॥

[पं० सोमसेनकृत-त्रिवर्णाचार]

परस्त्रीगमने नूनं देवद्रव्यस्यभक्षणे ॥
सप्तमं नरकं यान्ति प्राणिनो नाऽत्र संशयः ॥

[श्रीसोमकीर्तिसूरिकृत-प्रद्युम्नचरित्र]

जो णय भक्खेदि सयं तस्सण अण्णस्स जुज्जदे दादुं ॥
भुत्तस्स भोजितस्सहि णत्थि विसेसो सदोकोवि ॥ ७९ ॥

(स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा)

इंद्रायस्वाहाके अर्थपर विचार.

एप्रिल १९२२ के जैनबोधकमें ' इंद्रायस्वाहा का अर्थ ' इस शीर्षक लेखमें श्रीयुत रावजी सखाराम दोशी लिखते हैं कि—" इंद्रायस्वाहा " इसका अर्थ क्या करेंगे ? ऐसा पूर्वपक्ष उठाकर रा. रा. शंकर पंढरीनाथ रणदिवेनें एक पत्रिका निकाली है " इत्यादि लिखाहै. सो पूर्वपक्ष मेरा है ऐसा जो श्री. रावजी सखारामनें और पं. वासुदेव शास्त्रीने भी (वैशाख शुद्ध ५ वीरसं. २४४८ खं. हितेच्छु में) लिखा है सो गलत है. मेरा लेख पं० बनसीधरजीके ' इंद्रायस्वाहाका अर्थ क्या करेंगे ? ' इस पूर्वपक्षके लेखपर उत्तर है सो मेरा लेख पूर्वपक्ष नहीं होता उत्तरपक्ष होसकता है.

फिर नीचे लिखते हैं " रा. शंकरजी आगमप्रमाणता यह चीज क्या मानते हैं ? यह एक बखत प्रकाशित करेंगे तो ठीक होगा. " इसका उत्तर ऐसा है कि— आगमप्रमाणता जितनी आप मानते हैं उतनीहि मैं मानता हूं कोई ग्रंथके कोई वाक्य आप भी तो मानते नहीं हो. आदिपुराण का वाक्य ' विश्वेश्वरादयो ' ऐसा कंई हस्त लिखित ग्रंथोंमें मिला, पं. बनसीधरजीके श्रद्धेय आपाशास्त्रीनें भी दो वखत प्रसिद्ध कर दिया. तोभी उसको आप और पं. बनसीधरजी और पं. जिनदास मानते नहीं हैं. तथा अर्हत भगवानका विसर्जन होना ही नहीं है, वह शासनदेवताओंका होता है ऐसे आप अपने जानेवारी १९२२ के जैनबोधकमें लिखते हैं. क्या यह आपका मत आगमप्रमाण है ? पं. कल्लापा निटवेने किया हुवा और पं. फत्तेलालजीने किया हुवा सुरेंद्र मंत्रोंका अर्थ आप मानते नहीं. शासनदेवताको बृहद्द्रव्यसंग्रह टीकाकार ' **मिथ्यादेवता** ' कहते हैं और पं. आशाधर ' **कुदेव** ' कहते हैं उसको आप मानते नहीं हैं. पं. तोडरमलजी और पं. सदासुखजी शासनदेवताको पूजनेमें मिथ्यात्व होता है ऐसा लिखते हैं उसको आप मानते

नहीं. सोमदेवसूरीका वाक्य ' वधूवित्तस्त्रियैमुक्त्वा० ' माने ब्रह्मचर्याणुव्रती भी रंडी रख सकता है ऐसा वाक्य और उसका समर्थन करनेवाला पं. आशाधरका वाक्य जिसका अर्थ पं. कल्लापाने न देनेका सबब अज्ञ लोक इसका विपरीत उपयोग करेंगे, इस भयसे नहीं दिया लिखा हैं. उसही हेतूके अनुसार मैने भी—ऐसे पुस्तक कोमल अंतःकरणके बालकोंके बाचनेमें आनेसे उनके विचार रंडीबाजी तरफ झुक जायंगे ऐसा लिखाथा. मेरा हेतू और पं० कल्लाप्पाका हेतू एकही है. देखिये वे अपने पत्रमें इस मुजब कहते हैं कि—

" बाहुबलिडोंगर, का. व. १४. १८४३
मु० कुम्भोज.

आपलीं सर्व पत्रें बिनचूक नेमकीं पोहोंचलीं आहेत आळसामुळें उत्तरें दिलीं नाहींत माफी असावी. शास्त्रार्थ विचारण्यांत आला: उत्तर देणें भाग पडलें.

सागारधर्मामृतांतील अ० ४. श्लो० ५२. पृ० ३०६ " यस्तु " इत्यादि टीकेचें भाषांतर समग्र लिहिण्याचें मुद्दाम टाळलें होतें. कारण— अज्ञलोक विपरीत ग्रहण करितील. "

आपने लिखा है कि.— " क्या आप पं. आशाधरजी और श्री. सोमदेवसूरीसें पं. कल्लाप्पा भरमाप्पा निटवे और पं. फत्तेलालजी और पं. पन्नालाल गोधाजी इनके किये हुये अर्थको ज्यादा प्रमाणता देते हो? इस प्रश्नका उत्तर पं० शंकरजीको देना चाहिये. " इत्यादि. ऐसा धमकीका हुकूम पं. बनसीधरजीके--हजारवार सिर पटकनेके आव्हानन माफिक ही मालुम होता है. परंतु विचार कीजिये सुरेंद्रमंत्रोंके अर्थ पं. आशाधरजीने और श्री. सोमदेवसूरीने फलाने दिये ऐसा मैंने लिखा नहीं है और आपके लेखमें भी उनके दिये हुये अर्थ नहीं है. तो फिर उनके अर्थका और पं. कल्लाप्पा, पं. फत्तेलाल और पं. गोधाजीके अर्थो-

का मुकाबला उनसे कैसा होसकता है? सो आपका प्रश्नही उत्तर मांगने माफक नहीं है. जैसे—एक विद्यार्थीको किसीने प्रश्न किया कि एक रुपियेके पचीस आम मिलते हैं तो दस शेर जुवारीकी कीमत क्या? भाव तो बताते हैं आमका, और कीमत पूछते हैं जुवारीकी! वह विचारा क्या जवाब देगा? घबडा जायगा. उसी माफक यह आपका प्रश्न है. इसका उत्तर हो ही नहीं सकता.

अब आपका सात पत्रके लेखका सारांश यह है कि, सज्जाति, सद्गृहीत्व, पारिव्राज्य, सुरेंद्रता, साम्राज्य, परमार्हत्य, परमनिर्वाण. ऐसे सात परमस्थानोंकी प्राप्ति होनेकेलिये उनको आहुति देना चाहिये, उनको पूजना चाहिये. यहांपर प्रश्न है कि,—इनकूं आहुति न दें न पूजें और फक्त अर्हत और सिद्धकीहि पूजा करें तो ये सब परमस्थान प्राप्त होंगे या नहीं? इस प्रश्नका उत्तर अर्हतकी पूजा करनेसे मिलते हैं ऐसा आपकेही लेखमें मिलता है. देखिये—

पत्र ३२३ में आपने लिखा है कि,— " यह सात तीनों लोकमें श्रेष्ठ स्थान माने जाते हैं. जीवोंकी अर्हत देवकी वाणीरूप अमृतके आस्वादन करनेसे अर्थात जिनवाणीका अभ्यास करनेसे प्राप्त होते हैं. यही सात कर्त्तन्वय क्रियायें हैं." इसमें जिनवाणीका अभ्यास करनेसे सब परमस्थान प्राप्त होते हैं ऐसा लिखा है. फिर पत्र ३२४ में आपने लिखा है कि,— " यह जो सात परमस्थान कहे गये हैं वे अर्हतकी सेवा करनेवाले सम्यग्दृष्टिको प्राप्त होते हैं."

रत्नकरंडका श्लोक " देवेंद्रचक्रमहिमा० " जो आपने दिया है सो भी इसी अर्थकी पुष्टि करता है. खुद आपने इस श्लोकका अभिप्राय दिया है सोही बताता है कि—" इस श्लोकपरसे जिनभक्ति करनेवालेको चार परमस्थान प्राप्त होते हैं ऐसा भी आशय निकलता है." सुरेंद्रकी भक्ति करनेसे सुरेंद्रका पद मिलता है ऐसा इस श्लोकका भाव नहीं वह बात आपके ही प्रमाणसे सिद्ध हो चुकी.

फिर पत्र ३२४ में आप लिखते हैं– " ये स्थान अर्हतकी सेवा करनेवाले सम्यग्दृष्टीकोंही मिलते हैं. " ऐसे तीन बखत आप कबूल करचुके हैं तो फिर बाकी क्या रहा ?

अब सुरेंद्रके पदकी प्राप्ति होनेके वास्ते सुरेंद्रको आहुति देनेकी जरूरत है या अर्हतके पूजासे सुरेंद्रपद मिलता है ? इस विषयमें पं० आशाधर लिखते हैं सो देखिये—

" यथाशक्ति यजेतार्हद्देवं नित्यमहादिभिः
संकल्पतोपि तं यष्टा भेकवत्स्वर्महीयते ॥ २४ ॥ "

सागा० अ० २

भावार्थः—यदि जिनपूजेका फगत संकल्प करनेसेही स्वर्गके इंद्रका पद मंडूक तिर्यंचको प्राप्त हुवा तो फिर जो मनुष्य मन, वचन कायसे अर्हत भगवानकी पूजा करेगा तो उसको सुरेंद्रका पद मिलना क्या बडी बात है ? अर्थात सुरेंद्रका पद मिलानेको सुरेंद्रकी पूजा करनेकी जरूरत नहीं है. अर्हतके पूजनसे वह पद सहजही मिलता है. जैसे–मामलेदारका हुद्दा मिलानेकेवास्ते मामलेदारको अर्जी देनेसे वह हुद्दा नहीं मिलता है. उनसे श्रेष्ठ अधिकारी जो रेव्हिन्युकमिशनर हैं उनके तरफ अर्जी करनी पडती है, आप तो सुरेंद्रपद मिलनेको सुरेंद्रकी पूजा करो कहते हैं सो वर प्राप्तिकेलिये रागीद्वेषीकी उपासना करनेका ही उपदेश हुवा. तो फिर यह भी देवमूढता हुई.

शब्दोंके अर्थ दो दो चार चार होते रहते हैं जहां जो अर्थ इष्ट लगता है वहां वह अर्थ लिया जाता है. आपनेही " सत्यजाताय स्वाहा " और " अर्हज्जाताय स्वाहा " व " नेमिनाथाय स्वाहा " इत्यादि मंत्रोंके दो दो अर्थ दिये हैं. सो आशीर्वादमें–जो सुरेंद्रका अर्थ किया वही अर्थ आहुतीके बखत करनेकी जरूरत नहीं है अपनेको सुरेंद्रपदसे मतलब है. यदि सुरेंद्रपद वीतराग अर्हतकी पूजा करनेसे मिलता है तो फिर सरागी सुरेंद्रकी पूजा करके देवमूढताके दोषमें क्यों फसना ?

सुरेंद्र शब्दका अर्थ स्वर्गमेंका इंद्र भी होता है और भगवान अरिहंत भी होता है. आशीर्वादके समय सुरेंद्रका अर्थ—स्वर्गस्थ इंद्र लेना और आहुतिके बखत भगवान अरिहंत लेना. सैंधवका अर्थ लोण भी होता है और घोडा भी होता है. भोजनके समय सैंधवका अर्थ लोण किया जाता है और सवारीके समय सैंधवका अर्थ घोडा किया जाता है.

'अज' शब्दका अर्थ बकरा भी होता है और तीन बरसका पुराना धान ऐसा भी होता है अब वेदके मंत्रोंमें अजाहुति देनेको लिखा है. उसका अर्थ बकरा ऐसा वसुराजाने किया उस हिंसाके पापसे वह जमीनमें दट गया. वेदमतानुयायी लोक उस अज शब्दका अर्थ बकरा करके यज्ञमें पशुहत्या करते हैं. आर्यसमाजी लोक वेदको मानते है और उस मंत्रका अर्थ—यज्ञमें पशु होमना नहीं ऐसा करते हैं. 'अहिंसा परमोधर्मः' यह श्रुतिवाक्य है. इस श्रुतिवाक्यका रक्षण अज शब्दका अर्थ तीन बरसका धान ऐसा करनेसेही होसकता है. बकरा अर्थ करनेसे अहिंसा धर्मका पालन होता नहीं. उस ही मुजब यदि अपन दिगंबर जैन हैं तो अपनेको तो वीतराग निर्ग्रंथकीहि उपासना करनी चाहिये. रागीद्वेषी अथवा सरागी ऐसे इंद्र, सुरेंद्र, अहमिंद्र, चक्रवर्ती इत्यादिकी उपासना वर्ज करनी चाहिये. और इस अभिप्रायको पकड करही मंत्रोंके अथवा शब्दोंके अर्थ करना चाहिये. यदि रागीद्वेषीको आहुति देनेका अथवा उपासना करनेका अर्थ करोगे तो देवमूढता बढ जायगी. यदि कहोगे कि, तीर्थंकरोंके पंचकल्याणिक समय शासनदेवताओंने जो सेवा बजाई है उसके बदलेमें उनको आहुति देनी चाहिये. तो इसका उत्तर यह है कि जिस बखत तीर्थंकरके कल्याणिक समय शासनदेवता प्रत्यक्ष आयेथे उस बखत उनको किसीने आहुति दिई नहीं. तीर्थंकरके पिताने दिई नहीं, माताने दिई नहीं, अयोध्या, बनारस, हस्तनापूर इत्यादि शहरमेंके कोई भी नगरवासीने दिई नहीं. तो फिर हम आहुति क्यौं दें? हम उनका अनुकरण करैं या

उनके विरुद्ध चलें ? प्रतिष्ठापाठमें और पूजापाठमें जो आहुति देना अथवा पूजा करना लिखा है सो पाक्षिकके वास्ते है, दर्शनिकके वास्ते नहीं है. पाक्षिक श्रावक और दर्शनिक श्रावकमें बडा फेर है. और वह फेर शासनदेवताके पूजन बारेमें मुख्यतासे है ऐसा पं. आशाधरके " आपदाकुलितोऽपि दर्शनिकस्तन्निवृत्त्यर्थं शासनदेवतादीन कदाचिदपि न भजते । पाक्षिकस्तु भजत्यपीत्येवमर्थमेकग्रहणं । " इस वाक्यसे मालुम होता है. (सागा. अ. ३, श्लो. ७, सं. टीका.)

फिर भी विचार करनेकी बात हैं कि.—सुरेंद्रपद प्राप्त करलेनेके वास्ते आचार्योंने क्या क्या उपाय बताये हैं जिसके तरफ भी ध्यान देना चाहिये. सुरेंद्रपद प्राप्त होनेकेलिये देवायूके आस्रव संगृहीत करना चाहिये. श्रीमान उमास्वामीने देवायूके आस्रवोंके कारण " सरागसंयम संयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य " यह सूत्र और "सम्यक्त्वंच " यह सूत्र ऐसे दो सूत्र बताये हैं. इन सूत्रोंका विस्तारपूर्वक खुलासा श्री अमृतचंद्र आचार्यने श्री तत्वार्थसारमें दिया है सो इस मुजब है—

" अकामनिर्जरा बालतपो मंदकषायता ॥
सुधर्मश्रवणं दानं तथायतनसेवनं ॥ ४२ ॥
सरागसंयमश्चैव सम्यक्त्वं देशसंयमः ॥
इति देवायुषो ह्येते भवंत्यास्रवहेतवः ॥ ४३ ॥

अर्थः—अकामनिर्जरा, बालतप, मंदकषाय, सत्यार्थ धर्मश्रवण, दान, देव, गुरु, धर्मरूपी आयतनसेवन, सरागसंयम धारन करना, सम्यक्त्व धारन करना, देशसंयम पालन करना ये सब देवायूके आस्रवके कारण हैं.

इसमें सुरेंद्रपद मिलनेके वास्ते सुरेंद्रको आहुति देना अथवा उसकी पूजा करना ऐसा बताया नहीं है. किंतु अर्हत देव, निर्ग्रंथ गुरु और दयामयी धर्म ये जो धर्मके आयतन हैं उनकी सेवा करनेसे सुरेंद्रपद मिलता है ऐसा बताया है. तो फिर सुरेंद्रपद मिलानेको सुरेंद्रको आहुति देना और चक्रवर्तिका पद मिलानेको चक्रवर्तीकी खुषामत करना

व्यर्थ है. जैसे—मामलेदारका हुद्दा मामलेदारको अर्जी करनेसे नहीं मिलता. मामलेदारके श्रेष्ठ अधिकारी जो रेव्हिन्युकमिशनर है उनको अर्जी देनेसे, और अर्जदारकी लायकी उस जगेको होगी, तो मिलता है. आपतो सुरेंद्रपद मिलनेको—सुरेंद्रकी पूजा करो उसको आहुति द्यो ऐसा कहते हैं. सो वरप्राप्तीकेलिये रागीद्वेषीकी उपासना करनेकाही उपदेश हुवा. यह भी तो देवमूढताही हुई.

' अग्नींद्रायस्वाहा 'का अर्थ भी इस तरह होताहै-

पं० आशाधरने अपने जिनसहस्रनाममें—" अमलाभोऽप्युद्भरोऽग्निस्संयमश्च शिवस्तथा " श्लो० ८६ ॥ इस श्लोकार्धमें जिनभगवानको " अग्नि " ऐसा नाम दिया है तो फिर जिनेंद्रको " अग्नींद्र " यह नाम देनेसे कौनसी बाधा आयगी ? वैसेहि भगवानको आसन्नभव्य, निर्वाण पूजार्ह और सम्यग्दृष्टि ये विशेषण लगाये तो भी बिगडता नहीं. देखो आपके श्रद्धेय पं० आशाधरने अपने जिनसहस्रनाममें— " तीर्थकृत्तीर्थसृट् तीर्थकरस्तीर्थंकर: सुदृक् " श्लो० ४७ ॥ ऐसा कहा है इसमें जो " सुदृक् " शब्द है वह सम्यग्दृष्टि वाचक है. इस शब्दकी निरुक्ति श्रुतसागरने— " शोभना दृक् क्षायिकं सम्यक्त्वं यस्य स सुदृक् " ऐसी किई है तो फिर—" अर्हनको रत्नत्रयपूर्ण कह सकेंगे न की केवल सम्यग्दृष्टि " यह आपका कहना किस प्रमाणसे सिद्ध होता है ? वैसेहि आसन्नभव्य और निर्वाणपूजार्ह ये दो विशेषण भी भगवानको अयोग्य कैसे ठहरेंगे ? इसपरसे यह मालुम होता है कि— पं० फत्तेलालजीने अपने विवाह पद्धतीमें " अग्नींद्रायस्वाहा " का अर्थ जो किया है वह योग्य है ऐसा विचार करनेसे ज्ञात होता है.

और आगे चलकर ' परमार्हताय स्वाहा ' इस बारेमें आपका यह कहना है कि—इसमें मूल शब्द अर्हन् है उसकी चतुर्थी अर्हते ऐसी होगी; यहां आर्हत शब्द है इसवास्ते इसका अर्थ अर्हतके तरफ नहीं लगेगा.

लेकिन इस शब्दके व्याकरण संबंधमें पं० न्यायाचार्य माणिकचंद्रजीको मैने पूछा था उनोंने अपने वैशाख वदी ११ सं. ७९ के पत्रमें– "अर्हतां समुदायः आर्हतम् तस्मै आर्हताय हो सक्ता है। अर्हतोंका समुदाय यह अर्थ होता है।" ऐसा कहा है. सो इससे ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता है कि– "परमार्हताय स्वाहा" इसका अर्थ अर्हतके तरफ लगानेसे आपने अपने उस लेखमें कहे मुजब व्याकरण दृष्टीसे भी यहां कुछ दोष लगता नहीं यह सिद्ध होता है.

पं० आशाधरके अनगारधर्मामृत पृ० ५७६ में जो– "**कुदेवा** रुद्रादयः शासनदेवतादयश्च।" ऐसा कहा है इस बारेमें पं० वासुदेव नेमिनाथ बारामतिवाले खं. हितेच्छुमें (वै. सु. ५ वीर सं. २४४८) कहते हैं कि–" शासनदेवताको कुदेव कहनेका अर्थ वस्तुतः सिद्ध होता हो यह बात नहीं है।"

और इसही प्रकार श्री० रावजी सखारामजीने अपने जून १९२२ जैनबोधकके अग्रलेखमें अपना मत प्रगट किया है.

किंतु यहांके चतुरबाई श्राविकाविद्यालयमें जैनसमाजसेवक मंडलके मार्फत ता. २७ जून १९२० को शेठ हीराचंद नेमचंद और पं. वंशीधर उदयराज इनके जो प्रश्नोत्तर हुये वे प्रथमश्रावण वीर सं. २४४६ के जैनमित्रमें मैने प्रसिद्ध किये हैं उसमेंसे १८ वे प्रश्नोत्तर इस प्रकार है– "१८ प्रश्न–आशाधरके अनगारधर्मामृतमें शासनदेवताओंको कुदेव ऐसा कहा है। इससे बृहद्द्रव्यसंग्रहकी टीकासे उनको सम्यग्दर्शन नहीं होना चाहिये इस संबंधमें आपका कहना क्या है?"

"१८ उत्तर– कुदेवताओंको सम्यग्दर्शन नहीं होता ऐसा अर्थ नहीं है। कुदेव माने वीतरागसे उलट।

इसमें पं. वंशीधरजीने शासनदेवताको कुदेव कहना कबूल किया है. इस अनगारधर्मामृतके संपादक– न्यायतीर्थ पं. वंशीधरजी है और संशोधक– पं. मनोहरलालजी शास्त्री है।

दुसरं—अनगारधर्मामृतमें इस बाबतके श्लोकमें **पितरौ, गुरू राजापि, कुलिंगिनः, कुदेवाः** ऐसे कहाहै और आशाधरने अपने स्वोपज्ञ टीकामें इन शब्दोंका खुलासा किया है सो इस प्रकार—"मा-ताच पिताच **पितरौ** । गुरुश्च गुरुश्च **गुरू** । दीक्षागुरुः शिक्षागुरुः । **राजापि** किंपुनरमात्यादिरित्यपिशब्दार्थः । **कुलिंगिन** स्तापसादयः पार्श्वस्थादयश्च । **कुदेवा** रुद्रादयः शासनदेवतादयश्च । "

यदि इसमें पं० वासुदेवशास्त्री शासनदेवताको कुदेव ऐसा न कहकर केवल रुद्रादिककोही कुदेव कहेंगे तो टीकाकारने जो इसकेही तापसादिके साथ पार्श्वस्थको (जैन भ्रष्ट साधुको) भी कुलिंगी कहाहै यहभी नहीं मानना पडेगा.

इससे स्पष्ट सिद्ध होताहै कि पं० वासुदेवजीका—शासनदेवताको कुदेव कहना वस्तुतः सिद्ध होता नहीं यह कहना फिजूल है.

जैनबोधकके जून १९२२ के अंकमें लिखाहै कि, पार्श्वस्थ सम्यग्दृष्टी होनेसे कुलिंगीके भेदमें नहीं आताः वैसेही शासनदेवता कुदेवके भेदमें नहीं आतेहै सो अब पार्श्वस्थ कैसे होते है सो देखिए. भगवति आराधनामें और मूलाचार ग्रंथमें पार्श्वस्थका वर्णन दिया है. सो नीचे मुजब है—

केई गहिदा इंदिय चोरेहिं कसायसावदेहिं वा ।।
पंथं छंडिय णिज्जंति साधुसत्थस्स पासम्मि ॥१९॥

अर्थः—कितनेक मुनि इंद्रियरूप चोरनिकरि तथा कषायरूप दुष्ट तिर्यंचानिकरि ग्रहण किये हुये रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गकूं त्याग करिकै अर बाह्य भेषकरि साधुसारिखा रहे हैं—जगतकूं ... दीखे है अर साधु नहीं भेष मात्र है. तातै इनकूं साधुसंघके पार्श्ववर्तीपणातैं पार्श्वस्थ कहिये हैं ॥ भगवती आराधना पत्र ३९७

अब मूलाचार सटीक—पृ० ४४९, अधिकार ७, गाथा ९६–९७

पासत्थोय कुसीलो संसत्तोसण्ण मिगचरित्तोय ॥
दंसणणाणचरित्ते अणिउत्ता मंद संवेगा ॥९६॥

टीकाः--" एते पंच पार्श्वस्था दर्शनज्ञानचारित्रेषु अनियुक्ताः "

दंसणणाण चरित्ते तवविणएणिचकाळ पासत्था ॥
एदेअवंदणिज्जा छिद्दप्पेही गुणधराण ॥९७॥

टीकाः-- " दर्शनज्ञानचारित्रतपोविनयेभ्यो नित्यकालं पार्श्वस्था दूरीभूताः "

इन गाथाका पं० मनोहरलालशास्त्री पाढम निवासीने हिंदी भाषामें अर्थ लिखाहै सो इस मुजब--

अर्थ--संयमीके निकट रहनेवाला, क्रोधादिसे मलीन, लोभसे राजादिकी सेवा करनेवाला, जिनवचनको नहीं जाननेवाला तप और आत्मज्ञानसे रहित जिनसूत्रमें दोष देनेवाला ये पांच पार्श्वस्थ आदि साधु दर्शनज्ञानचारित्रमें युक्त नहीं हैं और धर्मादिमें हर्ष रहित हैं इसलिये वन्दने योग्य नहीं है। ५९३

अर्थ--दर्शन ज्ञान चारित्र तप विनयोंसे सदाकाल दूर रहनेवाले और गुणी संयमीयोंके सदा दोषोंके देखनेवाले पार्श्वस्थ आदि हैं इस लिये नमस्कार करने योग्य नहीं हैं ॥ ५९४ ॥

ऐसेही भावप्राभृतमें भव्यसेन मुनीके कथनमें इनका भ्रष्टाचार देखकर एक क्षुल्लकने उनको उद्देशकर कहाहै कि--" ततस्तं मिथ्यादृष्टिं द्रव्यलिंगिनं ज्ञात्वा भव्यसेनस्याभव्यसेनोऽयमिति नामान्तरं चकार।"

इस वाक्यमें--द्रव्यलिंगीको मिथ्यादृष्टि कहाहै. द्रव्यलिंगी और कुलिंगी एकही अर्थके शब्द है. 'कुलिंगिनस्तापसादयः पार्श्वस्थादयश्च' ऐसा वाक्य अनगारधर्मामृतके टीकामें है. इसका अर्थ करनेमें जैनबोधकके संपादक जून १९२२ के अंकमें लिखते हैं किं कुलिंगी तापसादिक तो मिथ्यादृष्टि हैं और पार्श्वस्थादिक सम्यग्दृष्टि है. किंतु टीकाकारने ऐसा कुछ भेद लिखा नहीं है. पार्श्वस्थादिक सम्यग्दृष्टि होनेके लिये जैनबोधकमें प्रमाण कुछ दिया नहींहैं. भगवतिआराधनामें और मूलाचारमें पार्श्वस्थकूं रत्नत्रय रहित माने दर्शनज्ञानचारित्ररहित

ऐसा बनाया है. तो फिर पार्श्वस्थकूं सम्यग्दृष्टि कैसा कहसकते हैं? यदि पार्श्वस्थ दर्शनज्ञानचारित्र रहित है ऐसा सिद्ध हुवा तो फिर उनको कुलिंगीहि कहना पडेगा. और यदि उनकों कुलिंगीके भेदमें पं० आशाधरजीने लिया है तो फिर उसमेंसे उसकूं कैसा निकाल सकतेहै ? यदि कुलिंगीके दो भेद पं० आशाधरने करके उसमें एक तापसादि और दूसरा पार्श्वस्थादि बतादिया तो वैसाही कुदेवाः शब्दके दो भेद ' रुद्रादयः ' और ' शासनदेवतादयः ' ऐसे जो पं. आशाधरजीने किये है उसमेंभी कोई शंका रहती नहीं. जैनबोधकके संपादक शासनदेवतादयः इस शब्दकूं ' कुदेवाः इस शब्दके भेदमेंसे निकालना चाहते हैं; और उसका सबब ऐसा बताते हैं कि पं० आशाधरको मूल श्लोकमें शासनदेवतादयः यह शब्द अलग देनेको जगा नहीं थी जिससे उनोंने टीकामें दिया है. और यदि शासनदेवताकूं कुदेव कहना होता तो वे ' रुद्रशासनदेवतादयश्च ' ऐसा शब्द एकही वखत आदि शब्द देकर कह देते थे.

यह संपादकका तर्क ऊपरका कुलिंगिनः शब्दके भेदमें पार्श्वस्थादयः यह अलग शब्द दिया है सो देखनेसे उड जाता है. उनको शासनदेवतादयः यह शब्द श्लोकमें डालनेकूं जगा नहीं थी यह कहना भी व्यर्थ है सबब कि श्लोक अनुष्टुपही डालना चाहिये ऐसा कुछ ग्रंथकारने गुन्हा लिया नहीं था. अनुष्टुपके जगे शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा आदि अधिक अक्षरोंका श्लोक दे सकते थे. कदाचित अनुष्टुपही देनेकी इच्छा हो तोभी एक अधिक श्लोक अनुष्टुपका दे सकते थे. यदि श्लोकमें न देकर टीकामें ही देना उनको उचित लगा हो तोभी टीकामें पहलेही ' शासनदेवतादयः ' ऐसा देकर फिर ' पित्रादयः ' इत्यादि शब्द देसकते थे. परंतु वैसा न करके ' पितरौ ' शब्दके दो भेद, ' गुरू ' शब्दके दो भेद, ' राजाऽपि ' शब्दके दो भेद, ' कुलिंगिनः ' शब्दके दो भेद ऐसे श्लोकमेंके सभी शब्दके दो दो भेद टीकामें करते

आये उसी मुजब ' कुदेवाः ' शब्दके भी दो भेद ' रुद्रादयः शासन-देवतादयश्च ' ऐसे करदिये. इस मुजब कुदेवके भेदमेंही शासनदेवता-दिकोंको उनोंने जो रखा है सो ऊपरके वाक्योंके अनुसार ही है. इस सटीक अनगारधर्मामृतका संपादन न्या. पं. बंसीधरजीने किया है. और संशोधन पं. मनोहरलाल शास्त्रीने किया है सो मूळ श्लोकमेके शब्द पितरौ, गुरू, राजापि, कुलिंगिनः, कुदेवाः ये शब्द बडे टाईपमें देकर उनके भेद माताच पिताच । गुरुश्च गुरुश्च । दीक्षागुरुः शिक्षागुरुः । किंपुनः अमात्यादि । तापसादयः पार्श्वस्थादयश्च । रुद्रादयः शासनदेव-तादयश्च । ये शब्द छोटे टाईपमें दिये हैं.इससे स्पष्ट होता है कि, मूळ श्लोकमेंके शब्दोंकेही ये भेद है. फिर भी वाक्यपूर्तताकी निशाणी खडी रेषा जो किई है सो तापसादयः पार्श्वस्थादयश्च इनके आगे और रुद्रा-दयः शासनदेवतादयश्च इन शब्दोंके आगे किई है.इससे तो अधिक स्पष्ट होता है कि, कुलिंगिनः शब्दके दो भेद और कुदेवाः शब्दके दो भेद किये है. यदि उनके दिलमें पार्श्वस्थादयः यह शब्द कुलिंगिनः के भेदमें और शासनदेवतादयः यह शब्द कुदेवाः शब्दके भेदमें नहीं होना चाहिये ऐसा रहता था तो तापसादयः के आखिरमें और रुद्रादयः के आखिरमें वाक्यपूर्तिकी खडी रेषा देदेते थे. परंतु उन्होने ऐसा यदि नहीं किया है तो पार्श्वस्थादयश्च यह शब्द कुलिंगिनः के भेदमें, और शासनदेवतादयश्च यह शब्द कुदेवाः के भेदमें ही समझना चाहिये ऐसा निश्चय होता है.

बृहद्द्रव्यसंग्रहटीकामें क्षेत्रपाल चंडिकाको मिथ्यादेवता कहाहै उसको संपादक जैनबोधक लिखते हैं कि, वे क्षेत्रपाल चंडिका शासनदे-वता नहीं है कोई अलग है. परंतु जब उस टीकामें रावण, कौरव, कंस इनोंने विद्या साध्य किई जिसका संबंध इन ही क्षेत्रपाल चांडिकाको लगाया है, और रावण, कौरव, कंस ये सब यदि जैनधर्मी थे तो उन्होने जो विद्या साध्य करनेके वास्ते देवताओंका आराधन किया सो जिनशा-

सनदेवता ही होनी चाहिये. अन्यमती देवताका आराधन वहां संभवता नहीं. देखो टीकाकारके वाक्य इस मुजब हैं–

" रागद्वेषोपहतार्तरौद्रपरिणतक्षेत्रपालचण्डिकादिमिथ्यादेवानां यदाराधनं करोति जीवस्तद्देवतामूढत्वं भण्यते । नच ते देवाः किमपि फलं प्रयच्छन्ति । कथमितिचेत्? रावणेन रामस्वामिलक्ष्मीधर विनाशार्थं बहुरूपिणीविद्यासाधिता, कौरवैस्तु पाण्डवनिर्मूलनार्थंकात्यायनीविद्यासाधिता, कंसेन च नारायणविनाशार्थं बव्ह्योपि विद्याः समाराधितास्ताभिः कृतं न किमपि रामस्वामिपाण्डवनारायणानाम् । तैस्तु यद्यपि मिथ्यादेवतानानुकूलितास्तथापि निर्मलसम्यक्त्वोपार्जितेन पूर्वकृतपुण्येन सर्वं निर्विघ्नं जातमिति । "

अर्थात्—" जो राग तथा द्वेषसे युक्त और आर्त्त तथा रौद्रध्यानरूप परिणामोंके धारक क्षेत्रपाल चण्डिकाआदि मिथ्यादृष्टी देवोंका आराधन करता है उसको देवमूढ कहते हैं । और ये क्षेत्रपाल, चंडिका आदि देव कुछभी फल नहीं देते हैं । फल कैसे नहीं देते हैं? यदि ऐसा पूछोतो उत्तर यह है कि– रावणने श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीके विनाशके लिये बहुरूपिणी विद्या सिद्धकी, और कौरवोंने पांडवोंका मूलसे नाश करनेके अर्थ कात्यायनी विद्या सिद्ध कीथी, तथा कंसने श्रीकृष्ण नारायणके नाशके लिये बहुतसी विद्याओंकी आराधना कीथी । परंतु उन विद्याओंने श्रीरामचंद्रजी, पाण्डव और श्रीकृष्णनारायणका कुछभी अनिष्ट नहीं किया । और रामचंद्रजी आदिने इन मिथ्यादृष्टि देवोंको अनुकूल नहीं किया, अर्थात् नहीं आराधे तोभी निर्मल सम्यग्दर्शनसे उपार्जित जो पूर्वभवका पुण्यहै उससे उनके सब विघ्न दूर होगये. । "

जैनमित्रके उसही अंकमें बृहद्द्रव्यसंग्रहके टीकामें क्षेत्रपालादि शासनदेवताको मिथ्यादृष्टि कहाहै उसबारेमें जो प्रश्नोत्तर हुये हैं वे इस प्रकार–" १७ प्रश्न–शासनदेवताओंको बृहद्द्रव्यसंग्रहमें मिथ्यादृष्टि कहा है वह आपने बांचा है क्या? "

" १७ उत्तर-' **मिथ्यादेवानाम्** ' इसका मिथ्यादृष्टी ऐसा अर्थ होता नहीं, वीतरागसे उलट ऐसा होता है। "

यहांभी क्षेत्रपालादि शासनदेवताको टीकाकारने ' मिथ्यादेव ' ऐसा जो विशेषण दिया है वह पं. न्या. बनसीधरजीने कबूल किया है. और इस संस्कृत टीकाके हिंदीअनुवादक पं. जवाहरलालजी शास्त्री जयपुरवाले हैं; उन्होंने टीकामें " मिथ्यादेवानाम " इसका अर्थ— " मिथ्यादृष्टी देवोंका " ऐसा किया है.

तथा आपने वैशाख सुदी ५ के " खंडेलवालहितेच्छु " में पांच विद्वानोंके अभिप्राय प्रसिद्ध किये हैं उसमेंसे पं० ए. शांतराजय्या-शास्त्री म्हैसूरवाले अपने अभिप्रायमें कहते हैं कि—" सुरेंद्रमंत्रमें सत्य-जाताय स्वाहा, अर्हज्जातायस्वाहा, इत्यादि जितने मंत्र हैं वे सब सुरेंद्र (देवोंकास्वामी) वाचक मंत्र है। अतः पं० कलप्पा निटवेका—**ने-मिनाथायस्वाहा**—नेमिनाथ भगवानके लिये समर्पण; **परमार्ह-तायस्वाहा**—परमअर्हतके लिये समर्पण यह अर्थ बिलकुल गलत है." व " सारांश यह है कि सुरेंद्रमंत्रांतर्गत जितनें मंत्र हैं वे सब देव-राज वाचकही है. " लेकिन पं. लालारामजीने भी अपने हिंदीसार्थ महापुराणमें **नेमिनाथायस्वाहाका** अर्थ— " धर्मरूपचक्रकी धूरीके स्वामी ऐसे **जिनराज**के लिये मैं समर्पण करताहूं. " (महा-पुराणसार्थ हिंदी पर्व ४०। पृ० १४३२) ऐसा लिखाहै. वे उस अ-पने महापुराणके अर्थ बाबत खंडेलवालके उसही अंकमें कहते हैं कि— " मैंने जो आदिपुराणका अर्थ लिखाहै वह संस्कृत टीका, संस्कृत टिप्पणी, पुरानी हिंदी टीका और कलप्पाजीकी मराठी टीकापरसे लि-खाहै संस्कृत टिप्पणीपर मेरा पूरा भरोसा था सो जानना. " तो फिर पं० लालारामजीने— **नेमिनाथाय स्वाहा**का अर्थ जो **जिनराज**के तरफ किया वह उनकी क्या गलती है ? यदि गलती है तो पं. लाला-रामजीने उस अपने अभिप्रायमें वह अपनी गलती कबूल क्यों नहीं

किई ? और यदि पं० लालारामजीने लिखाहुवा 'नेमिनाथायस्वाहा' का यह अर्थ अपने विश्वासनीय संस्कृत टिप्पणीके आधारसे लिखाहै तो आप उस अर्थको अमान्य करनेका कारण आपके प्रतिकूल है ऐसा मालूम होताहै. और पं. दौलतरामजीने अपने पुरानी हिंदी टीका (महापुराण) में सुरेंद्र मंत्रमेंसे—" सत्यजाताय स्वाहा " " अर्हज्जाताय स्वाहा " और " नेमिनाथाय स्वाहा " इन वाक्योंका अर्थ केवल अर्हतके तरफही किया है. देखो हस्त लिखित प्रत पृ. ४३२

श्रीमान पंडित पन्नालाल गोधाजी अपने पत्रोंमें लिखते हैं—

लि० इंदोरसे पन्नालाल गोधाका धर्मस्नेह उभयत्र शम् कार्ड आपका आया। पंडित माणिकचंदजीने आपके लेखकी प्रशंसाकी है पर सुरेंद्रमंत्रोंपर अपना मत प्रगट नहीं किया सो ऐसाही वैशाख सुदी ५ वीरसं० २४४८ के " खण्डलवाल जैनहितेच्छु " में उनोंने शासनदेव पूजाका सिद्धसा मान गृहस्थको करना प्रतिष्ठापाठके आधारपर सिद्ध किया है और गृहविरक्त उदासीन श्रावकको निषेधभी लिखाहै. और रावजी सखारामके लेखकी प्रशंसाभी की है. सो दुतरफा पीठ ठोकना सरीखी है। हितेच्छुने अनुकूल लेख छापे प्रतिकूल नहीं छापे. सो यह भी स्वाभाविक बात है. परंतु आप प्रयत्न करते रहिये अखीरपर सत्य ही की विजय होयगी

पं० लालारामजीने अपने सार्थ हिंदी महापुराणके सुरेंद्रमंत्रोंमें " नेमिनाथाय स्वाहा " का अर्थ २२ वे तीर्थंकरके तरफ लगाया है और उन्होंने संस्कृत टिप्पणीके आधारसे अपनी महापुराणकी बचनिका बनाई है. सो इससे पं. लोकनाथजी और शांतराजय्या शास्त्री मैसूरके—" स्वाहा " और 'नमः' का भेदरूप लेखका खण्डन होता है. क्योंकि उक्त मंत्रमें 'नमः' शब्द नहीं है और २२ वे भगवानको 'स्वाहा' शब्दकर आहुति दी है. सं. १९७९ ज्ये. कृ १.

श्री सोलापुर शुभस्थान श्रीमान् पंडित शंकरजी पंढरीनाथ रणदिवे योग्य.

इंदोर तुकोगंजसे पन्नानाल गोधाका श्रीधर्मस्नेह् वाचना उभयत्र शम् पत्र आपका आया.

तथा जो पं० माणिकचंदजीने लिखा है उसका उत्तर मेरी बुद्धि अनुसार यह है कि अपने अभिप्रायमें वे कहते हैं कि– " विशेष शास्त्र देखनेपर निर्णय करूंगा. सभी मैंने क्रियाकांडके शास्त्र नहीं देखे है " इस वास्ते उनकी सम्मति उनके लिखनेसे ही पूरी मान्य नहीं होती.

दूसरे उन्होंनें प्रतिष्ठापाठोंका प्रमाण दिया है सो एक तो यह है कि—यह चर्चा प्रतिष्ठापाठके विषयमें नहीं चलरही किंतु नित्यपूजनके विषयमें है. प्रतिष्ठामें कदाचित् कोई कमश्रद्धानी विघ्ननिवारणके वास्ते बुलावे तो बात अलग है किंतु नित्यपूजनमें कोई विघ्नोंकी शंका नहीं.

फिर वह लिखते हैं कि– " गृहविरत उदासीनश्रावकको उक्त कृतियां आवश्यक नहीं प्रतीत होती. " सो यह भी उनोंका लिखना ठीक नहीं है. क्यौं कि मिथ्यात्वकी अपेक्षा उदासीनश्रावक ये क्रियायें नहीं करें तो क्या साधारणगृहस्थ मिथ्यात्व क्रियाको करसकता है? कदापि नहीं. और जो यह कहा जाय कि उदासीन श्रावक आरंभका त्यागी ये क्रियायें नहीं करें सो भी ठीक नहीं. क्यौं कि जो आरंभका त्यागी होगा वह तो प्रतिष्ठाही नहीं करेगा न करावेगा. फिर एक शासनदेवकोही पूजनेका निषेध क्यौं ?

और भी उनोंने लिखा है कि– शास्त्रोंमें तथा महापुराणमें भी शासनदेवोंकी पूजाका विधान है. सो कौनसे प्रामाणिक शास्त्रमें विधान है उसका प्रमाण देना चाहिये. इसही तरहसे आदिपुराणमें भी जिस विषयमें विवाद चल रहाहै उसके अतिरिक्त आदिपुराणमें स्पष्टतासे शासनदेवोंका पूजन कहां लिखा है ? उसका भी प्रमाण देना था.

अर्थात् जो संवत् १००० एकहजारसे पहलेके शास्त्र दिगम्बराचार्योंकर बने हैं उनमें कदाचित् भी ऐसी बातें मैं जानताहूं कि कभीभी नहीं लिखी होगी यह निश्चय जानना चाहिये.

पं० लोकनाथजी मूडबिद्रीवालोंने जो हेतु इंद्रायस्वाहामें दिया है उनका खण्डन तो पूर्व पं० बनारसीदास आदिके लेखोंसे होही गया है और जो प्रतिष्ठापाठोंका प्रमाण दिया उसके विषयमें मैं ऊपर लिखही चुका. तीसरे उन्होंने लिखाहै कि—देवशास्त्रगुरुके समर्पणमें तो स्वाहाके साथमें नमः शब्द होता है और इंद्रादि देवोंके साथमें केवल स्वाहा शब्दकाही प्रयोग होताहै. सो यह हेतु उनोंका ठीक नहीं है. अर्थात् अर्हतादिकोंके समर्पणमें भी बहुतसी जगह स्वाहा शब्दका प्रयोग है और कोई कोई स्थानमें अन्य देवोंके साथमें 'नमः' शब्दकाभी प्रयोग है इस वास्ते उनका हेतु प्रमाण नहीं है.

त्रेपन क्रियाके मंत्रोंमें प्रतिपक्षी कहते हैं कि—परमेष्ठी वाचक मंत्रोंमें तो "नमः स्वाहा" लगाया जाता है और अन्य देवादिकके मंत्रोंमें केवल "स्वाहा" शब्दका प्रयोग होताहै. "नमः" शब्दका नहीं होता. जिसका उत्तर यह है कि— वह कहीं कहीं होता है सर्वथा नहीं किंतु कहीं कहीं इसके विपरीत भी होता है अर्थात अन्यदेवादि वाचक मंत्रोंमें 'नमः' और परमेष्ठीवाचकोंमें केवल "स्वाहा" होता है सोही दिखाते हैं.

आदिपुराणमें सात प्रकारके मंत्र कहे हैं उन सातोंमेंही दो दो मंत्र देखिये पीठिकामंत्रमें—सत्यजातायनमः ॥१॥ अर्हज्जातायनमः॥२॥ जातिमंत्र— सत्यजन्मशरणं प्रपद्यामि ॥१॥ अर्हज्जन्मनः शरणं प्रपद्यामि ॥२॥ निस्तारकमंत्र—सत्यजातायस्वाहा ॥१॥ अर्हज्जातायस्वाहा ॥२॥ ऋषिमंत्र—सत्यजाताय नमः ॥१॥ अर्हज्जातायनमः ॥२॥ परमराजमंत्र-सत्यजातायस्वाहा ॥१॥ अर्हज्जातायस्वाह ॥२॥ सुरेंद्रमंत्र—सत्यजाताय-स्वाहा ॥१॥ अर्हज्जातायस्वाहा ॥२॥ परमेष्ठी मंत्र ॥७॥—सत्यजाता-

यनेमः ॥१॥ अर्हज्जातायनमः ॥२॥ इस प्रकार सत्यजात और अर्हज्जात ये दो मंत्रोंमें सातोही जातके मंत्रोंमें कहीं ' नमः ' कहीं खाली ' स्वाहा ' का प्रयोग है और मंत्र वेके वेही; इस वास्ते उनका हेतु व्यभिचारी है.

तथा दूसरे पत्रमें औरभी बहुतसे मंत्र हैं उन्में कोई कोईमें ' नमः ' शब्द है कोई कोईमें नहीं है किंतु अन्यदेवोंके मंत्रोंमेंभी नमः शब्द है सो देखलीजो। तथा परमराजमंत्रमें " नेमिनाथाय स्वाहा " और " नेमिविजय स्वाहा " तथा सुरेंद्रमंत्रमेंभी " नेमिनाथाय स्वाहा " है सो जब वे ' इंद्र ' शब्दमें तो खास देवोंके इंद्रका अर्थ करते हैं जो कि इंद्र शब्द जिनभगवानके नामपर (जिनेंद्र) प्रसिद्ध है और नेमिनाथ तो सिवाय नेमिनाथ भगवानके और किसीका ऐसा प्रसिद्ध है नहीं सो इस नेमिनाथ तीर्थंकरको छोडकर वे अन्य अर्थ क्यों करते है ? क्या अपने मतलब आवे तब तो इधर ढुलकजाय ? सो यह उनका पक्षपात है आप प्रयत्न अच्छा कर रहे हैं मै धन्यवाद आपको देताहौं आप प्रयत्नमें लगे रहिये कभीना कभी सत्यकी विजय होगी.

तथा आशाधर प्रतिष्ठापाठमें अध्याय दूसरा तीर्थोदक दानविधानमें—

ॐ ऱ्हीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणे अनंतानंतज्ञान शक्तये इदं जलं गंधमक्षतान् पुष्पाणि चरुं दीपं धूपं फलं पुष्पांजलिंच निर्वपामीति स्वाहा॥

तथा ॐ ऱ्हीं श्री पृभृति देवताभ्य इदं जलं गंधमक्षतान् पुष्पाणि चरुं दीपं धूपं फलं पुष्पांजलिंच निर्वपामीति स्वाहा ॥

इसी तरह गंगादि देवी ॥ सीताविद्धमहाहृद देव ॥ सीतोदा मागधादितीर्थदेवी ॥ संख्यातीतसमुद्र देव ॥ लोकाभिमततीर्थ देव ॥

इसमें अर्हतको और अन्यदेवादिकोंको एकही मंत्रसे केवल स्वाहा शब्दसे पूजे है और अर्हतके लिये यहां ' नमः ' शब्दका प्रयोग नहीं किया है.

तथा सकलीकरण विधान में—पंचपरमेष्ठीवाचक मंत्रोंमें ' नमः '

शब्द नहीं है केवल ' स्वाहा ' है. । तैसेही जिनसहस्र नाम विधान- मेंभी-" ॐ ब्रह्मणे जलं निर्वपामि स्वाहा, ॐ न्हीं शिवाय जलं नि- र्वपामि स्वाहा ॐ न्हीं जिनाय जलंनिर्वपामि स्वाहा " इत्यादि कहाहैं.

इस तरह आशाधर कृत सारे प्रतिष्ठापाठमें कोई दो चारको छोडकर संपूर्ण मंत्र पंचपरमेष्ठीवाचक तथा देवदेवीवाचक सबोंमें ' स्वाहा ' एक सारिखे बराबरीसे करे है हीनाधिकता बिलकुल नहीं जिन वाक्योंसे परमेष्ठीयोंका आराधन उनी वाक्योंसे सब देवी देवोंका आराधन किया है.

अब ' नमः ' शब्दकाभी देवदेवियोंमें कियाहै सो देखिये सर- स्वति प्रतिष्ठामें-ॐ वाग्वादिन्यैनमः ।। भगवत्यैनमः ।। सरस्वत्यैनमः ।। श्रुतदेव्यैनमः ।। इत्यादि.

इसही समाम अन्यदेवियोंको देखिये. ॐ नन्दायैनमः ।। स्तं- भिन्यै नमः ।। इत्यादि ।।

फिर ॐ रोहिण्यै नमः तथा मयूरवाहिन्यै इत्यादि परमेष्ठी और देवदेवी सबोंका बराबर पदसे (विनयसे) आराधन कियाहै, तथा औरभी कर्णपिशाचिनी आदि मंत्रोंमें ' नमः ' शब्द है. देखिये- श्रीँ न्हीँ क्लीँ कर्णपिशाचिनि नमः (प्रतिष्ठा सारोद्धार)

इसही भान्त वसुनंदि प्रतिष्ठापाठमें-ॐणमो अरहंताणं स्वाहा ।। ॐ अर्हत्सिद्धसयोगकेवलिभ्यः स्वाहा ।। ॐ नंद्यावर्तवलयाय स्वाहा ।। सकली करणार्थ ।। ॐ णमो अर्हताणं आदि पश्चात्णमो आगासगामिणं ।। णमो विज्जाहराणं इत्यादि अन्य देवीयोंमें ' नमः ' शब्द परमेष्ठियोंके साथमें बराबरसे दिया है इससे कहीं तो परमेष्ठियोंको ' नमः ' शब्द न होकर केवल ' स्वाहा ' शब्दसे आराधन किया है सो ऐसेभी मंत्र बहुत है. तथा ' नमः ' शब्दसे कहीं कहीं अन्य देवोंका भी आराधन किया है इससे सिद्ध हुवा कि जो हेतु परमेष्ठी और अन्यदेवोंकी पूजामें दिया जाता है कि परमेष्ठीको ' नमः ' और अन्य देवोंको केवल ' स्वाहा '

होता है ' नमः ' नहीं होता सो पं० लोकनाथजी, पं० ए. शांतराजय्या हैसूरवाले, श्री० रावजी सखारामजी इनका वह हेतु असत्य ठहरा.

तथा पं० वासुदेव नेमिनाथजी बारामतीवालेने पं० आशाधरजी बाबत आपपर आक्षेप किया है उसका उत्तर इतनाही है कि–अन्यमति हिंदुमुसलमान जो यज्ञादि तथा मसाजिद आदिमें जीवघात करके धर्म मानते हैं उन्हीको उन्हींके शास्त्र कुरानसे दिखायाजाय कि–हिंसा निषेध है. तो क्या उनके शास्त्र जैनियोंको सर्वेही प्रमाण हो सक्ता है ?

पं० आशाधरने–पाक्षिकको सप्तव्यसनमें वेश्या व परस्त्रीका त्याग कराया और प्रथम प्रतिमामें सातव्यसनके अतिचारोंमें वेश्याका आवागमन भी छुडाया और दूसरी प्रतिमामें वेश्या सेवनको अतीचारमें कहा और वह अतीचार पहली प्रतिमा व पाक्षिकमें लगाना सिद्ध किया सो स्थापन और निषेध एकस्थान दोनों विरोधरूप; और इसही तरहसे शासनदेवोंको अपने मनमें भी न लावें और फिर प्रतिष्ठापाठादिमें पूज्य बतावें जो दूसरी प्रतिमावालाभी मुख्यतासे पूजनप्रतिष्ठा करता है. यह पूर्वापर विरुद्ध वचन होते सो प्रामाणिक कैसे हो सक्ता है ? परंतु आपसारिखे जो प्रमाण मानते हैं जिससे आपकोही समझानेको आशाधरका प्रमाण दिया है.

और भी वे अपने लेखमें लिखते हैं कि–शं. पं० आधुनिक पंडितके वाक्य जो अपने मतकी पुष्टीके होते है सो तो ले लेते हैं और विरुद्धोंको नहीं लेते. इत्यादि.

सो यह तो शास्त्रोंकी आज्ञाही है कि–जो पूर्वाचार्योंके अनुसार वाक्य हो वह चाहे जिसके हो निःशंक ग्रहण करना. किंतु जो विरुद्ध होवे चाहे बडेभारी पंडितकेभी वचन होंवें त्याज्य है । दूसरे प्रसिद्धभी है कि–आचार्य, पण्डित तथा वर्तमान के उपदेशक आदि ख्रिश्चियनोंके मुसलमानोंके कुराण, इंजिल आदि पुस्तकोंके तथा व्याख्यानोंके वाक्योंसे जैनधर्मके तत्वोंको पुष्ट करते हैं. तो क्या उनको ख्रिश्चियनधर्म

वा मुसिलामीन धर्मके श्रद्धानी कहे जाते हैं? कदापि नहीं. तैसेही आपने पं. कल्लपा, पं० फत्तेलालजी, पं. आशाधर आदिके वाक्य प्रमाणमें दिये वे उतनेही प्रमाण है; जो जैनऋषिवाक्योंके अनुकूल हैं. ।

अतएव आशाधरका प्रमाण देनेको आपके ऊपर आक्षेप किया है सो उलटा है. जैसे जिस बातको वादी माने और वह प्रतिवादीके पक्षको पुष्ट करती होवे तो प्रतिवादीको योग्य है कि– अन्य पुरावा न देकर उसीका पुरावा देवें, तो इकवाली डिगरी हो जाती है. इसही तरहसे जो आशाधर खुद शासनदेवोंको माननेवालाही निषेध करे तब इसके सिवाय जबरदस्त और दूसरा पुरावा क्या हो सकताहै? ।

और पं० शान्तराजय्याजीने आपको खं० हितेच्छुमें जो सीख दीहै वह सीख उनीहींको लेना चाहिये । वेही अन्यथा अर्थ कररहे हैं. "अर्हज्जाताय" "परमार्हताय" "नेमिनाथाय" का अर्थ पं० कल्लप्पा भरमप्पाने अर्हन्त और नेमिनाथ भगवानको अर्पण; ऐसा जो किया है उसके बाबत वे लिखते हैं कि– यह अर्थ गलत कियाहै. सो यही उनका पक्षपात है आप जो 'इंद्रायस्वाहा' का अर्थ तो इंद्रोंके लिये माने, और अर्हतका अर्थ अर्हतकेलिये न माने? कितनी बडी-भारी पक्षपात है? इंद्रनाम तो भगवानका प्रसिद्धही है. परंतु अर्हत् नाम किसी इंद्रका प्रसिद्ध नहीं है.

तथा आशाधरने सागारधर्मामृतके दर्शनप्रतिमाके अधिकारमें स्पष्ट लिखाहै कि–प्रथम प्रतिमाधारी शासनदेवको मनमेंभी न लगावें. तब बताइये प्रथम प्रतिमासे भी उंचा दरजेका दुसरी प्रतिमाधारीही के पूजन प्रतिष्ठाकी मुख्यता है तो वह कैसे शासनदेवको पूजे?

सं० १९७९ ज्ये० कृ. ५

श्रीमान् पं० धर्मभूषण ब्रह्मचारीजी शीतलप्रसादजी, संपादक 'जैनमित्र' अपने ज्येष्ठ वदी २ वीरसं. २४४८ (ता० १८ मे १९२२) के साप्ताह्निक पत्रमें मेरे लेखपर अपने नोटमें अपना अभिप्राय इस मुजब प्रगट करते हैं—

" नोट—सिद्धार्चनमें व अर्हत पूजनमें व स्तोत्रोंमें बहुधा विद्वान् कवि अन्यमतियोंके मानेहुए देवोंके नाम लेकर स्तुति करते हैं जिससे उनका प्रयोजन यही दिखानेका होताहै कि सच्चा आप्तपना अर्हत व सिद्धमें है—**जो स्वरूप अरहंतका है उसमें तो उन शब्दोंका यथार्थ अर्थ लगसक्ताहै परंतु जिस स्वरूपको अजैन मानते हैं उनमें ठीक भाव नहींआता**—इसी बातको दिखाते हुये भी पूज्यपाद स्वामीने समाधिशतकमें यह श्लोक कहा है—

जयंति यस्यावदतोऽपि भारतिविभूतयः तीर्थकृतोऽप्यनीहृतुः ॥
शिवाय धात्रे सुगताय विष्णवे । जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः ॥२॥
इसमें शिव, ब्रह्मा, सुगत, विष्णुका नाम आनेपरभी उनके कार्यक्रमके आनंदरूप, धर्ममार्ग विधाता, सर्वज्ञ, ज्ञानापेक्षया सर्वव्यापी करने होंगे। यदि कोई इनके अर्थ अजैनोंके मानेहुए शिव, ब्रह्मा, विष्णु व बुद्ध करने लगे तो सर्वथा असंगतहै। **कविगण अपनी चतुराईसे मनसे आकर्षित करनेवाले शब्द रखकर ठीकठीक भाव दर्शातेहैं।** सिद्धचक्रपूजाविधान संस्कृतमें कई नामोंमें अजैनका नाम आया है परंतु वे सर्वनाम सिद्धभगवानकेही वाचक हैं।

संपादक—'जैनसिद्धांत'को उचितहै कि, सिद्धान्त की आम्नायके अनुसार यथार्थ अर्थ जैनजनताको बतावें। कुछकाकुछ अर्थ करके जनताको भ्रममें न डालें। संपादक."

पं० अजितकुमारजी शास्त्रीने अषाढ वदी ५ वीर सं० २४४८ के खंडेल० जैनहितेच्छुमें लिखाहै कि—" हमको केवल इतना कहना है कि आधुनिक पूजन पुस्तकोंमें जो कृत्याकृत्रिमादि श्लोक है उसका अर्थ

वही है जो कि पं० बनसीधरजीने कियाथा. यह यदि आप न जान-सकें तो किसी संस्कृतज्ञ अजैन विद्वानकोही दिखा लीजिए. ”

चैत्यभक्तीके “ कृत्याकृत्रिम. ” इस श्लोकके—“ वंदे भावनव्यंत-रान् द्युतिवरान् कल्पामरान् सर्वगान् ” इस चरणके बारेमें पं. ब्र. शी-तलप्रसादजी, पं. बनवारीलालजी और पं. बनारसीदासजी आदि संस्कृ-तज्ञ जैनविद्वानोंने जो कहा है उसको आप मानते नहीं तो फिर अजैन विद्वानोंने कहाहुवा आपको कैसा श्रद्धेय होगा ? हां यदी उनका कहना आपके प्रतिकूल न हो तब न ? और कदाचित् अनुकूल न हो तो उनका कहना आप मान्य करेंगे क्या ? नहीं. या ऊपर कहे हुवे ये जैनविद्वान् क्या संस्कृतज्ञ नहीं हैं ? तो फिर इससे ऐसा सिद्ध होता है कि—जिसका कहना अपने अनुकूल हो वह आप श्रद्धेय मानोगे; चाहे वह विद्वान् जैन हो या अजैन ! अस्तु फिर भी इस विषयमें और एक जैनविद्वानका मत देताहूं लेकिन् वह मानना या न मानना आ-पके मर्जी ऊपर है. मैने इसबारेमें पं० न्यायाचार्य माणिकचंद्रजीको पुछाथा उनोंने अपने चैत्र सुदी ५ सं० १९७९ के पत्रमें लिखा है कि— “ कृत्याकृत्रिम ” श्लोकका अर्थ तत्रस्थचैत्यालय है. पूर्वापर संदर्भ और मत्वर्थीय अच् प्रत्यय करनेसे तथा विरुद्ध सामानाधिकरण्य दोष न होजाय अतः चैत्यालय अर्थही उपयुक्त है । “ गंगायांघोषः ” का अर्थ लक्षणावृत्तिसे गंगातीरही किया जाता है । “दुष्कर्मणांशान्तये ” के समभिव्याहारसे नवदेवताहीं लिये जा सक्ते हैं । सामानाधिकरण्य-न्यायसे मत्वर्थीय प्रत्यय होता है । “ भावनव्यंतरान् ” का अर्थ— भावनस्थ व्यंतरस्थ हो जाता है । ”

भवदीय,

माणिकचंद मोरेना. (ग्वालियर.)

और भी पं. अजितकुमार शास्त्रीजी कहते हैं कि–" **अनुचर** " शब्दका अर्थ **दास नोकर** है. व '**ग्रामपति**' शब्दका अर्थ साफ तौरसे गांवका स्वामी 'राजा' है." इसपर हमारा कहना यह है कि–

सुरेंद्रमंत्रमें– 'अनुचर' शब्दसे इंद्रको आहुतियां देते समयही उनके दासको ही देनी होगी. और निस्तारक मंत्रमें– 'ग्रामपति' जो राजा, या चौधरी पटेल. तथा 'निधिपति' 'वैश्रवण' इन शब्दोंसे कुबेर इनकोही गृहस्थाचार्यके साथ साथ आहुति देनी पडेगी. व ऋषि-मंत्रमेंभी– 'भूपति' 'नगरपति' इन शब्दोंसे राजा; और 'कालश्र-मण' इस नामसे कालश्रमण यक्षकोहि (जो कि पं. लालारामजीने अपने महापुराणमें कहा है) सर्व संगपरित्यागी परममुनिराजके साथ ही आहुति देनी पडेगी. इसपर विचार करना चाहिये कि– इन विषम पदवीके धारकोंकोही उन सुरेंद्र और निस्तारक मंत्रोंसे आहुतियां देना यह कितना विसंगत दीखता है !

और भी यहां विचार करनेकी मुख्य बात यह है कि–इन सप्तपर-मस्थान मंत्रोंमेंसे प्रत्येक परमस्थानमंत्रके अन्तिम इस सेवाफलका मोबदला इस मुबज मांगा है कि—

सेवाफलं– षट्परमस्थानं भवतु । अपमृत्युविनाशनं भवतु । समाधिमरणं भवतु ॥

इस प्रकार प्रार्थना करनेवाला गृहस्थ इन– इंद्र, इंद्रकादास, गृहस्थाचार्य, राजा या पटेल, कुबेर, **यक्ष** और चक्रवर्ती इन सबको आहुतियां देकर अंतमें याचना करता हैं कि– इस सेवा फलसे मोकूं षट्परमस्थानोंकी प्राप्ति होवें. अपमृत्यु न होवें और समाधिमरण भी साधे.

इसपर ऐसी शंका होती है कि– इन षट्परमस्थानोंमें–**परमार्ह-त्य, परमनिर्वाण** ये भी सर्वोत्कृष्ट दर्जेके स्थान हैं तो इनकी प्राप्ति इंद्र, गृहस्थाचार्य, कुबेर, दास, यक्ष, राजा, चक्री इनको आहुतियां देकर

याचना करनेसे कैसी होगी ? और अपमृत्यु भी नहीं टलेगा, तथा समाधिमरण भी नहीं साधेगा.

वास्तविक इन सबकी प्राप्ति सिद्ध भगवान् या सत्यार्थ देवगुरुशास्त्र या नवदेवता इनकी भक्ति पूजन (आहुतियां) करनेसेही होगी. कारण- " **स्वयं प्रमादैर्निपतन्भवांबुधौ कथं स भक्तानपितारयिष्यति** ॥ " इस नीतिके अनुसार जिसके पास जिस वस्तुकी याचना करनी है वहां वह दाता वह वस्तु देनेकी योग्यता रखता है या नहीं (अधिकारी या अनधिकारी)इसका भी पहले विचार करनाही चाहिये.

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि- जिस समय आहुति देना होता है उस समय उन मंत्रोंका अर्थ अर्हंतसिद्धके तरफ लगानाही योग्य है. और जहां आशीर्वाद दिया गया है वहां इंद्र, चक्री, अर्हंत आदि अर्थ करना बराबर है. कारण यहां आशीर्वाद है और वहां पुजा करना है.

उदाहरणार्थ- जो कि पं० लालारामजीने भी अपने सार्थमहापुराणमें सुरेंद्रमंत्रमेंसे-" **नेमिनाथाय स्वाहा।** " और निस्तारक मंत्रमेंसे- " **स्नातकाय स्वाहा** " व " **अनुपमाय स्वाहा** " इन मंत्रोंका अर्थ आहुति देते समय अर्हंतके तरफही लगाया है.

यहांपर हम यह भी सूचित करते हैं कि-इंद्रादि ऐश्वर्यके इच्छासे भगवंतकी भक्ति करना (आहुति देना) यह भी ठीक नहीं है जिससे **निःकांक्षितांग** न पाला जानेसे सम्यक्त्वमें दूषण लगता है इसही हेतुसे इन सुरेंद्रादि स्थानोंकी प्राप्ति शुद्धसम्यक्त्वसेही याचे विना स्वयं हो सक्ती है, अन्य उपायसे नहीं होगी. ऐसे श्रीवीरनंदि सैद्धान्तिक अपने आचारसारमेंसे सम्यक्त्वके निःकांक्षितांगकथनमें इस तरह फर्माते हैं देखिये—

देवेंद्रादिश्रियो यस्मिन्सत्यायांति स्वयं सताम् ॥
सम्यक्त्वेऽनुपमे तस्मिन् किं तया परचिंतया ॥५६॥

और इसमें कोई ऐसी भी शंका उठावें कि- इन मंत्रोंके अन्तमें-

षट्परमस्थान प्राप्त होवें, अपमृत्यु नाश होवें और समाधिमरण भी साधें; ऐसा कहा गया है. तो फिर इस प्रकार भगवानके सेवाफलकी इच्छा रखना यह भी ठीक नहीं; यह तो **निदान** कहा जावेगा.

इसका उत्तर यह है कि– यह भक्ति **रागपूर्वक** है निदान नहीं है. क्योंकि, **संसारके कारणीभूत इच्छाको निदान कहते हैं.** यहां संसारके कारणका अभाव है. जिसको पारमार्थिक फलेच्छा कहते हैं. जैसे– " वंदे तद्गुणलब्धये " इसका विशेष स्पष्टीकरण मूलाचारमें इस प्रकार किया है—

टीका— एवं विशिष्टास्ते जिनवरेंद्रा मह्यमारोग्यं जातिमरणाभावं बोधिलाभं च जिनसूत्रश्रद्धानं दीक्षाभिमुखीकरणं वा समाधिं च मरणकाले सम्यक्परिणामं ददतु प्रयच्छन्तु, किं पुनरिदं निदानं न भवति न भवत्येव कस्माद्विभाषात्रविकल्पोत्रकर्तव्यो यस्मादिति ॥ ६९ ॥ तेषां-जिनवरादीनामभिमुखतया भक्त्या चार्था वांच्छितेष्ट सिद्धयः सिद्धयंति हस्तग्राह्या भवंति यस्मात्तस्माद्भक्तीरागपूर्वकमेददुच्यते न हि निदानं संसारकारणाभावादिति ॥ ७५ ॥ (मूलाचार सटीक पृ० ४३४)

इसका अर्थ पं० मनोहरलाल शास्त्रीने ऐसा दिया है– " अर्थ– ऐसे पूर्वोक्त विशेषणोंसहित जिनेंद्र देव मुझे जन्ममरणरूप रोगसे रहितकरें तथा भेद ज्ञानकी प्राप्ति और समाधि मरण दें। क्या यह निदान है यहां विकल्पसे समझना ॥ ५६६ ॥ अर्थ– उन जिनवरोंके सन्मुख होनेसे तथा उनकी भक्तीसे वांछित कार्य सिद्ध होते है इसलिये यह भक्ति रागपूर्वक है निदान नहीं है क्योंकि संसारके कारणको निदान कहते हैं यहां संसारके कारणका अभाव है ॥ ॥५७२ ॥ "

शब्दोंके अनेक अर्थ होसकते हैं. जैसा अज शब्दका अर्थ बकरा भी होता है और पुराना धान भी होता है. सैंधव शब्दका अर्थ घोडा भी होता है और लूण भी होता है. जैसा जहां प्रकरण होगा वैसा वहां अर्थ लेना चाहिये यह बात पंडित पन्नालालजी सोनी आदि सभी

पंडितलोक मान्य करते हैं. अब विचारनेकी बात है कि आदिपुराणमें सुरेंद्रमंत्र आदि जो पीठिकामंत्र हैं सो भरतचक्रीनें श्रावकोंको बताये हैं. यदि ये शासनदेवके पूजन अथवा आदरसत्कारके वास्ते कहेनेका उनका इरादा होता तो आप भरतचक्री आदिभगवानके समवसरणमें गये वहां उनको शासनदेवताका मिलाप प्रत्यक्ष हुवा था, लेकिन उन्होंने उनका पूजन, आहुति अथवा आदरसत्कार क्यों नहीं किया ? समवसरणमेंके मानस्तंभोंका, धर्मचक्रका, ध्वजाओंका और केवली भगवानका पूजन भरतचक्रीने किया ऐसा लिखा है. परंतु शासनदेवता प्रत्यक्ष मिलनेपर भी उनका पूजन,आहुति,सत्कार अर्घ्यदेना कुछ किया नहीं. इतनाही नहीं किंतु इससे उलट– भरतचक्री समवसरणमें आते समय द्वारपालशासनदेवताओंने उनका **बडे आदर सत्कारसे** भीतर प्रवेश कराया ऐसाहि प्रमाण मिलता है देखो—

ततो दौवारिकैर्देवैः संभ्राम्यद्भिः प्रवेशितः ॥
श्रीमंडपस्य वैदग्धीं सोऽपश्यत्स्वर्गजित्वरीम् ॥ १८ ॥

(महापुराण पर्व. ॥ २४ ॥)

इसपरसे अनुमान होता है कि, भरतचक्री शासनदेवताका पूजन, आहुति, आदरसत्कार अथवा अर्घ्यदेना यह कहेंगे नहीं. इतना सिद्ध हुवा तो फिर सुरेंद्रमंत्रोंका अर्थ शासनदेवोंके पूजनपर न लगाकर अर्हंतसिद्ध आदिपरमेष्ठीके पूजनपर लगानाही प्रकरणसंगत होगा.

सोलापूर,
ता. ११।७।१९२२.

आपका नम्र,
शंकर पंढरीनाथ रणदिवे.